ISSN 2454-6879

देसहरियाणा

साहित्यिक-सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का मंच

अंक-15-16
जनवरी-अप्रैल, 2018

सम्पादक

सुभाष चंद्र

सम्पादन सहयोग

जयपाल, कृष्ण कुमार, अमन वाशिष्ठ, अरुण कैहरबा, अविनाश सैनी

सलाहकार

प्रो. टी. आर. कुंडू , ओमप्रकाश करुणेश, परमानंद शास्त्री, सुरेन्द्रपाल सिंह, सत्यवीर नाहड़िया

प्रबंध एवं प्रसार

विपुला, सुनील, इकबाल, विकास साल्याण, ब्रजपाल, राजेश कुमार, किशु गुप्ता

कानूनी सलाहकार

राजविन्द्र चन्दी

सहयोग राशि

व्यक्तिगत: एक वर्ष 200 रुपए तीन वर्ष 500 रुपए
संस्था : एक वर्ष 400 रुपए, तीन वर्ष 1 हजार रुपए
आजीवन : पांच हजार रुपए संरक्षक : दस हजार रुपए

ऑनलाईन भुगतान के लिए

बैंक खाता : देस हरियाणा, इलाहाबाद बैंक कुरुक्षेत्र
खाता संख्या : 50297128780, IFS Code: ALLA0211940

ई-मेल : haryanades@gmail.com

ISSN 2454-6879

प्रकाशित रचनाओं में प्रस्तुत विचार एवं दृष्टिकोण से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं।
सम्पादक एवं संचालन अव्यवसायिक एवं अवैतनिक। समस्त कानूनी विवादों का न्याय-क्षेत्र कुरुक्षेत्र न्यायालय होगा।

देस हरियाणा

912, सैक्टर-13, कुरुक्षेत्र, (हरियाणा)-136118

संपर्क: व्यवस्था - 99913-78352 संपादकीय - 94164-82156

स्वामी-प्रकाशक-सम्पादक-मुद्रक सुभाष चंद्र द्वारा 912, सैक्टर-13, कुरुक्षेत्र हरियाणा से प्रकाशित

इस बार

सम्पादकीय			3
कहानी	एस.आर. हरनोट	आग	8
	हरभगवान चावला	ले परधान बीड़ी जला	14
	विपिन चौधरी	माई डीयर डैडी	19
आलेख	कृष्णा सोबती	देश का चेहरा धर्मनिरपेक्ष रहना चाहिए	5
	ज्ञान प्रकाश विवेक	तरक्कीपसंद शायर आबिद आलमी की ग़ज़लगोई	48
	आदित्य आंगिरस	गोदान के होरी का समसामयिक संदर्भ	59
	राजेद्र चौधरी	कुछ समाचार, एक सवाल	80
वक्तव्य	उर्मिलेश	पत्रकारिता की मौजूदा चुनौतियां	75
जज़्बे की पाठशाला	अरुण कुमार कैहरबा	राजकीय प्राथमिक पाठशाला नन्हेड़ा	26
विरासत	हजारी प्रसाद द्विवेदी	जन गण मन अधिनायक जय हे	6
साहित्य चिंतन	बजरंग बिहारी तिवारी	साहित्य का स्व-भाव और राजसत्ता	22
शख़्सियत	महेन्द्र प्रताप चांद	ज़ोहरा बाई अम्बाला वाली (अम्बाला)	29
बीच बहस में	दीपंचद्र निर्मोही	मनु ने बोए आरक्षण के बीज	30
	डा. सुभाष चंद्र	आरक्षण: पृष्ठभूमि और विवाद	33
	सदभावना मंच	इतिहास व कानूनी पक्ष : जाट आरक्षण आंदोलन	40
	योगेन्द्र यादव	हीरयाणा के मुख्यमंत्री को पत्र	43
ख़ास रचनाकार	आबिद आलमी	गजलें	46
संस्मरण	शिव वर्मा	और जब मौत नहीं आयी	21
	महावीर शर्मा	कुछ यादें 'आबिद आलमी' की	54
	शशिकांत श्रीवास्तव	चसवाल साहेब सिद्धांत के आदमी थे	56
परख	ओमप्रकाश ग्रेवाल व दिनेश दधीचि	बौद्धिक साहस ... तीव्रता का स्वर	51
इतिहास	सुरेन्द्रपाल सिंह	हरियाणा के इतिहास में राजनीतिक अराजकता	57
सिनेमा	पवन कुमार शर्मा	सिनेमा का बदलता स्वरूप	61
इन दिनों जो मैंने पढ़ा	अंकित नरवाल	स्त्री-चिंतन 'गूंगे इतिहासों की सरहदों पर'	62
मीडिया	अनिल कुमार पाण्डेय	न्यू मीडिया से बदलती समाचारी दुनिया	66
सात समंदर पार से	अंतोन चेखव अनु. राजेन्द्र सिंह	कसूरवार	67
कविताएं	दयाल सिंह जास्ट-7, अमृत लाल मदान-25, उदय ठाकुर-28, सुशांत सुप्रिय-80, दिव्य भसीन कोचर-80		
लोकधारा/रागनी	- मंगतराम शस्त्री, 69, खान मनजीत भावड़िया-70	**लोक कथा** -गादड़ का चौंतरा	70
हलचल	प्रदीप मानव वशिष्ठ	चुप्पी और आवाजें	71
	अरुण कैहरबा	देस हरियाणा सृजनशाला	72
	विरेन्द्र भाटिया	'छत्रपति सम्मान समारोह'	73
पाठक पाति	विकास शर्मा- 82,	हरपाल शर्मा -83,	अफराज-83
आवरण चित्र	स्वीपराज		

मानवता की खेती सृजनशीलता की जमीन पर उपजती है

सबसे खतरनाक वह चांद होता है
जो हर कत्लकाण्ड के बाद
वीरान हुए आंगनों में चढ़ता है
लेकिन तुम्हारी आंखों में
मिर्चों की तरह नहीं लड़ता है

-पाश

भारत के आधुनिक शहर व तकनीकी-केद्र बंगलुरु में उच्च-शिक्षा, ऊंचे वेतन और प्रोफेसर जैसे सम्मानित पद पर कार्यरत व्यक्ति ने अपनी बीमार-बेबस-लाचार मां की घर के छज्जे से नीचे फेंक कर हत्या कर दी।

राजस्थान में एक प्रवासी मजदूर को काम देने के बहाने से बुलाकर बर्बरतापूर्ण तरीके से हत्या की वीडियो बनाकर सार्वजनिक करके अपने इस कृत्य का जश्न मनाया।

भारत के एक और तकनीकी-केद्र व आधुनिक शहर गुरुग्राम के अति प्रतिष्ठित स्कूल के एक छात्र ने छोटी कक्षा के छात्र की गला रेतकर हत्या कर दी ताकि परीक्षा स्थगित हो जाए।

हरियाणा के यमुनानगर शहर के प्रतिष्ठित स्कूल की प्राचार्या की इसलिए गोली मारकर हत्या कर दी कि उसकी अनुशासनहीनता और पढ़ाई के बारे में उसके माता-पिता को शिकायत करने की आशंका थी।

छोटी बच्चियों-लड़कियों से सामूहिक बलात्कार, हत्या और उनके यौन अंगों में नुकीली चीजें व पत्थर घुसेड़कर मानव शरीर के अपमान की अनेक घटनाएं घट रही हैं।

हमारे समाज में इस समय इस तरह की अनेक अमानवीय घटनायें घट रही हैं। चिंता की बात ये है कि इनमें पेशेवर अपराधी नहीं, बल्कि साधारण लोग शामिल हैं। पहली नज़र में ये घटनाएं सेक्सजनित उत्तेजना और आनंद के क्षणिक उत्तेजनाओं का प्रतिफल लग सकती है, लेकिन इनकी जड़ें कहीं न कहीं समाजीकरण में हैं।

घर-परिवारों, स्कूल-कालेजों में सामाजिक व्यवहार और क्रिया-कलापों पर संवाद एकदम औपचारिक हैं और खुली बातचीत का बेहद तौड़ा है। घर-परिवार, शिक्षण-संस्थाओं में पसरे मौन के कारण ठठ के ठठ नौजवान 'झूठ की फैक्टरी' में निर्मित भड़काऊ विडियो व भ्रामक नारों-विचारों के शिकार होकर आरक्षण और साम्प्रदायिकता की हिंसक कतारों में शामिल हो रहे है। जात-धर्म के नाम पर मानवता की खेती उजाड़ी जा रही है।

गौर करने की बात ये है कि समूचे तंत्र की तमाम संस्थाएं अपनी पूरी शक्ति के साथ अंधविश्वास-पाखण्ड-अतार्किकता-विवेकशून्यता को बढ़ावा देकर मानवीय मूल्यों व संवेदनशीलता का क्षरण करने की परियोजना पर कार्यरत हैं। संवेदनहीनता का परिदृश्य सृजनशील मानस को भीतर तक उद्वेलित करता है। समाज के प्रति जवाबदेह सृजन के राही इनकी अनदेखी नहीं कर सकते। समाज की बुनावट की गहरी तहों की पड़ताल करके ही सृजनकर्मी इसकी प्रभावी अभिव्यक्ति कर सकते हैं।

यदि जमीन में बीज न डाले जाएं तो वहां झाड़-झंखाड़ ही उगते हैं। फसल उगाने के लिए जमीन को बाह-संवारकर बीज डालना ही काफी नहीं होता, बल्कि पौधों में खाद-पानी, निराई-गुड़ाई से उसका पोषण करना पड़ता है और उसमें उगा खर-पतवार निकालना पड़ता है और उसे नुक्सान पहुंचा रहे आवारा

पशुओं से उसकी रक्षा भी करनी पड़ती है।

मानवता की खेती सृजनशीलता की जमीन पर उपजती है। सृजनकर्मी मानवता की खेती करने वाले किसान ही हैं। मानवता की खेती के लिए जमीन तैयार करना, सृजन के बीज डालना, उसे खाद-पानी देकर पोषित करना, उसकी खर-पतवार निकालना और मानवता को नुक्सान पहुंचाने वाले मनु-पशुओं से उसकी रक्षा करने का दायित्व निभाकर ही मानवीय-सृजन की वांछित फसल प्राप्त की जा सकती है।

यह अंक 'हरियाणा सृजन उत्सव' के वक्त पर आ रहा है। देस हरियाणा की समस्त टीम 23-24-25 को कुरुक्षेत्र में अपने आयोजन 'हरियाणा सृजन-उत्सव' को कामयाब करने में व्यस्त है। पिछले साल के कार्यक्रम के सकारात्मक प्रभाव से उत्साहित होकर इस कार्यक्रम की रूपरेखा बनी है। सृजनकर्मियों की अपेक्षाओं व उनसे मिल रहे सहयोग के आधार पर यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी कि हरियाणा सृजन उत्सव हरियाणा के साहित्यिक-सांस्कृतिक माहौल में गेमचेंजर साबित होगा।

हरियाणा सृजन उत्सव का संकल्प

हरियाणा राज्य आर्थिक समृद्धि में अग्रणी है, लेकिन साहित्य-संस्कृति व कला के क्षेत्र में पिछड़ा माना जाता है जिसमें कुछ आंशिक सत्य तो है, लेकिन सूरदास, गरीबदास, हाली पानीपती, बालमुकुन्द गुप्त जैसे कालजयी रचनाकार हरियाणा से हुए हैं।

साहित्य-संस्कृति व कला का संबंध मनुष्य व समाज की आत्मा से है। साहित्य-कला जनजीवन के सौंदर्य और तकलीफों-पीड़ाओं को अभिव्यक्त करती है। संघर्षरत लोगों में जिजीविषा व मूल्यों की स्थापना करती हैं। आज उपभोक्तावाद प्रसूत अपसंस्कृति व स्वार्थ संलिप्त सत्ताएं मानवता के तमाम मूल्यों व स्वस्थ परंपराओं को लील रही है। आज समाज जातिगत हिंसा, साम्प्रदायिक वैमनस्य व सामाजिक-पूर्वाग्रह मानवीय संवेदना व भाईचारे को समाप्त कर रहे हैं। साहित्य व स्वस्थ सांस्कृतिक कर्म जीवन में भरोसा व उत्साह का संचार करने पैदा करता है। सामाजिक-सद्भाव,लैंगिक-संवेदनशीलता, धार्मिक-सहिष्णुता, साझी-विरासत से अनुराग, सत्य-न्याय के प्रति निष्ठा-समर्पण तथा नागरिक दायित्व बोध पैदा करने की क्षमता सामाजिक प्रतिबद्धता से अनुप्रेरित साहित्य-कला के मौलिक सृजन में होती है। यह भी सत्य है कि मौलिक सृजनशीलता उसी समाज में पनपती है, जो अपने साहित्यिक-सांस्कृतिक सृजनकर्म को पोषित करता है।

वर्तमान में हरियाणा के हर शहर-कस्बे में अनेक साहित्यकार, रंगकर्मी, कलाकार हैं साहित्य-सभाएं व नाटक मंडलियां हैं निरंतर उनकी गोष्ठियां व सांस्कृतिक कार्यक्रम भी होते हैं। लेकिन साहित्य-कला के अनुकूल माहौल नहीं बना। साहित्य-संस्कृति व कला के क्षेत्र में अपार संभावनाएं हैं। हरियाणा के सृजन कर्म की उपलब्धियों को रेखांकित करते हुए उसकी दशा-दिशा, चुनौतियों व संभावनाओं पर गंभीर मंथन करना वक्त की जरूरत है। वर्तमान सामाजिक संबंधों की जटिलताओं को समझने व उनकी अभिव्यक्ति की तकनीकों पर विमर्श करके ही सृजनात्मकता के पथ पर बढ़ा जा सकता है।

हरियाणा के स्वर्ण जयंती वर्ष में (25 व 26 फरवरी, 2017) हरियाणा सृजन उत्सव की शुरुआत की थी। जिसमें हरियाणा के साहित्य, संस्कृति, समाज, सिनेमा, रंगमंच, लोक कलाओं व मीडिया के विभिन्न पहलुओं व आयामों पर गंभीर मंथन-विश्लेषण-विमर्श किया था। विभिन्न विधाओं में सृजनरत 500 से अधिक हरियाणा व देश के साहित्यकार -कलाकार-रंगकर्मी-फिल्मकार-संस्कृतिकर्मी इसमें भाग लिया था।

इस अंक में

इस अंक में एस हरनोट, हरभगवान चावला व विपिन चौधरी की कहानियां है। खास रचनाकार में आबिद आलमी की ग़ज़लों के साथ, उनकी रचनाशीलता की शक्ति व विशिष्टता को उद्घाटित करने वाले ज्ञानप्रकाश विवेक और ओमप्रकाश ग्रेवाल व दिनेश दधीचि के लेख व महावीर शर्मा और शशिकांत श्रीवास्तव के संस्मरण हैं।

ज्यों-ज्यों रोजगार के दायरे सिकुड़ते जा रहे हैं त्यों-त्यों आरक्षण का मुद्दा उग्र रूप धारण करता जा रहा है। राजनीतिक उल्लू साधने के लिए कुछ स्वार्थी किस्म के नेता आरक्षण की बहस को विकृत ढंग से प्रस्तुत करके नवयुवकों के दिमागों प्रदूषित कर रहे हैं। जातिगत संकीर्णताएं सामाजिक कलह का कारण बन रही हैं। सामाजिक न्याय की बात कहीं दूर छिटक रही है। आरक्षण के मुद्दे पर 'बीच बहस में' आपके विचार आंमत्रित हैं।

करनाल जिले के इंद्री खंड के गांव नन्हेड़ा की प्राथमिक पाठशाला का कायाकल्प वहां के अध्यापकों के कल्पनाशील जज्बे का परिणाम है। यह प्रयास 'जज्बे की पाठशाला' को प्रोत्साहित करेगा। आपकी नजर में ऐसी संस्था या व्यक्ति हों जो व्यवस्था की सीमाओं को लांघकर समाज के लिए कुछ बेहतर स्थापित कर रहे हों तो यहां सांझा कीजिए ताकि जज्बे के बीज का प्रसार-विस्तार हो।

बजरंग बिहारी तिवारी का साहित्य के स्व-भाव और सत्ता विषय पर खोजपूर्ण लेख साहित्य और सत्ता के संबंधों को खोलता है। 'इन दिनों जो मैने पढ़ा' अंकित नरवाल ने नारी-विमर्श के विविध आयामों को समेटती पुस्तक से परिचय करवाया है।

रवींद्र नाथ टैगोर रचित राष्ट्रगान के संबंध में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का आलेख इस संबंध में फैले भ्रमों को दूर करता है। कृष्णा सोबती व उर्मिलेश का वक्तव्य समकालीन समाज को उद्वेलित करने वाले सवाल समेटे हुए हैं। सुशांत सुप्रिय, दयाल जास्ट, उदय ठाकुर की कविताएं भी आपको पसंद आएंगी।

लोकधारा में नवलेखक खान भावड़िया की रागनी व चेखव की कहानी का राजेन्द्र सिंह द्वारा हरियाणवी में किया अनुवाद व एक लोककथा है।

इसके अलावा इस अंक में बहुत कुछ है। उम्मीद है कि ये अंक आपको पसंद आयेगा।

ओमप्रकाश करुणेश

मैं इकबाल चंद हूं, इंदौर में रहता हूं, भारतीय हूं।
मैं इकबाल महमूद, हैदराबाद में रहता हूं, भारतीय हूं।
मैं जॉन इकबाल हूं, पटना में रहता हूं और भारतीय हूं।
मैं इकबाल पालकीवाला, सूरत में रहता हूं, भारतीय हूं।
मैं इकबाल सिंह हूं, पटियाला में रहता हूं, भारतीय हूं।

देश का चेहरा धर्मनिरपेक्ष रहना चाहिए

□ कृष्णा सोबती

(प्रख्यात कथा लेखिका कृष्णा सोबती को वर्ष 2017 के ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया है। प्रस्तुत है आज की देश की सबसे ज्वलंत समस्या पर उनकी एक बेबाक टिप्पणी)

भारत में विभाजनकारी ताकतों द्वारा आए दिन ताजादम किया जाने वाला सांप्रदायिकता का चेहरा हर भारतीय नागरिक को चुनौती देता एक गंभीर खतरा है। यह खतरा वह नहीं है जो आपकी या यूं कहें हम सबकी हदों से बाहर है। यह वह है जो हम सब को कमोबेश अपने कंटीले जाल में समेटने की कोशिश में है। हमारा देश जिन आंतरिक खतरों और अलगाववादी चुनौतियों से गुजर रहा है, उसकी जिम्मेदारी सिर्फ सत्ता और सरकार पर डालकर हम अपने फर्ज से बरी नहीं हो जाते। भारत का नागरिक होने की हैसियत से अगर मैं अपने होने में सिर्फ हिंदू हूं, मुसलमान हूं, सिख, पारसी या ईसाई हूं तो भी राष्ट्र द्वारा दी गई संज्ञा सभी समूहों-संप्रदायों को, जातियों-धर्मों को एक नाम प्रदान करती है-भारतीय नागरिक।

हम भारत के नागरिक राष्ट्र की विशाल चौखट से उभरे अपने होने में मात्र अपने कुल, वंश, जाति, क्षेत्र, धर्म, समुदाय के प्रतीक नहीं। हम अपने में समाए हैं राष्ट्र के भूगोल और इतिहास को, उसकी सांस्कृतिक विरासत को, जो यहां रहने वाले हर नागरिक की थाती हैं। मैं, मेरा देश, मेरा राष्ट्र पासपोर्ट की एंट्री भर नहीं। वह इस स्वाधीन राष्ट्र में सांस लेने वाले हर नागरिक की अस्मिता का प्रतीक है। हमें यह भी याद कर लेना चाहिए कि यह राष्ट्रीयता सत्ता-व्यवस्था, सरकार और राष्ट्रीय ध्वज में ही नहीं, राष्ट्र के उस नागरिक में भी मूर्त होती है, जो राष्ट्र के इतिहास और भूगोल को जीता है और अपने नागरिक की संज्ञा को अपनी रूह, अपनी आत्मा में महसूस करता है।

यह धर्म-निरपेक्ष राष्ट्र की प्रशस्ति नहीं, उसके मूल्यों का गुणगान है, जिसे हर नागरिक अपनी सामर्थ्य के अनुसार जीता है। आज़ादी के बाद देश की एकता के सम्मुख उठ खड़ी हुई विसंगतियों में एक यह भी है कि अपने होने में मैं हिंदू, मुसलमान, सिख, पारसी के साथ एक भारतीय भी हूं। जबकि जो होना चाहिए था, वह यह कि मैं भारत का नागरिक हूं, इसके साथ मैं अपने निजी धार्मिक विश्वासों में हिंदू, मुसलमान या कोई और हूं। इसे कुछ इस ढंग से प्रस्तुत करना चाहूंगी-

मैं इकबाल चंद हूं, इंदौर में रहता हूं, भारतीय हूं।
मैं इकबाल महमूद, हैदराबाद में रहता हूं, भारतीय हूं।
मैं जॉन इकबाल हूं, पटना में रहता हूं और भारतीय हूं।
मैं इकबाल पालकीवाला, सूरत में रहता हूं, भारतीय हूं।
मैं इकबाल सिंह हूं, पटियाला में रहता हूं, भारतीय हूं।

यह राष्ट्रीय एकता को उभारने वाला कोई विज्ञापन नहीं, एक हकीकत है। आपस में मनमुटाव, शक-सुब्हे और एक-दूसरे पर हथियार उठा लेने से हम उस सांझेपन को कैसे बांट लेंगे जो हमें विरासत में मिला है। राजनीतिक ताकतों के अलग-अलग नाम न लें तो भी इतना तो कहा ही जा सकता है कि सांप्रदायिकता का चेहरा वह नहीं, जिसे हम आए दिन पेश करते हैं। यह वह है जिसे वे अपनी विचारधाराएं बेचने के लिए इस्तेमाल करती हैं। धर्म, जाति, संप्रदायों के तमाम अंतर्विरोधों के बावजूद देश का नागरिक सामाजिक और सांस्कृतिक स्तरों पर अपने अलगाव को संतुलित करने का प्रयास करता रहा है। इसी साधारण जन के नाम पर सांप्रदायिकता की सारी उठापटक होती है और यही इन विघटनकारी शक्तियों का शिकार होता है। जिन नेगेटिव तत्वों को खास प्रयोजन-आयोजन से उभारा-उछाला जाता है, वे भी उसी आम आदमी को घायल करते हैं। लोकतांत्रिक शक्तियों को इकट्ठा होकर इस षड्यंत्र को उघाड़ना होगा।

यहां हम अपने प्रबुद्ध वर्ग की चौकसी की सराहना नहीं, बल्कि उस पर संदेह करेंगे। यह वर्ग राजनीति के

दायरों में अपने-अपने जुगाड़ के मद्देनजर परिस्थितियों और घटनाओं को सही-सही परखने की बजाए उन्हें एक-दूसरे से गड़बड़ा देने की क्षमता रखता है। इस तबके को खास तौर पर अपना आत्मावलोकन करना चाहिए। प्रेस का चरित्र भी किसी से अनदेखा नहीं। इन हालात में सामाजिक परिवर्तनों की पहचान हमें आश्वस्त करती है। जिस तेजी से इनकी जटिल प्रक्रियाओं से देश निकल रहा है, वह बताता है कि साधारण नागरिक का सामाजिक और राजनीतिक अनुभव पहले से कहीं ज्यादा व्यापक हुआ है।

जो ताकतें सांप्रदायिकता को बढ़ावा देती हैं, इसके लिए पैसा खर्च करती हैं, उनका मुकाबला यह नया हिंदुस्तानी कर पाएगा, ऐसी उम्मीद हम करते हैं। आर्थिक चुनौतियों का जवाब क्या हम कर्मकांड से, घंटे-घड़ियाल, अजान-अरदास से पा सकेंगे? नहीं, इसके लिए हमें अपने पुरानेपन से निकलना होगा। नए को अपनाने की ललक सभी समुदायों में होती है। लोकतंत्र में जहां हम अपने धार्मिक विश्वासों को जीने के लिए स्वतंत्र हैं, वहीं राष्ट्र की मुख्यधारा से अपना हिस्सा उठाने के लिए भी। संकीर्ण प्रचार-प्रसार से हम शोषित और शोषण के हालात को नहीं बदल पाएंगे, न ही लड़ पाएंगे, उन ताकतों से जो हर संप्रदाय को उसका चेहरा घायल करके दिखाती हैं।

भारतीय मानस अपने विशिष्ट लचीलेपन से साहित्य और कलाओं के क्षेत्र में बहुत कुछ दे चुका है। हम निराश नहीं हैं, यह जानते हुए कि आज भी हमारे सृजनात्मक साहित्य में भारत की मूलभूत व्यापकता की कमी नहीं। जहां गिरिराज किशोर लिख रहे हैं। वहां अब्दुल बिस्मिल्लाह और मंजूर एहतेशाम भी। एक ओर राजेंद्र यादव थे तो दूसरी ओर शानी भी। यह प्राप्ति बहुत बड़ी न सही, एक बड़े रास्ते की ओर इशारा तो है ही। आखिर में इतना ही कि अपनी सामर्थ्य और आस्था के बल पर हम सांप्रदायिकता को जीतने नहीं देंगे। भारत का चेहरा सदियों से धर्मनिरपेक्ष रहा है। उसे धर्मनिरपेक्ष ही रहना चाहिए।

•

जन गण मन अधिनायक जय हे

□ हजारी प्रसाद द्विवेदी

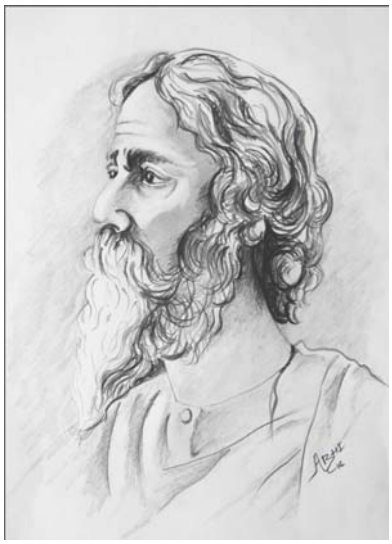

देश का राष्ट्र-गीत 'वन्देमातरम्' गान हो या 'जनगणमन अधिनायक' इस प्रश्न पर आजकल बहुत वाद-विवाद हो रहा है। भारतीय विधानसभा शीघ्र ही इस बात पर विचार करेगी। दोनों गानों के पक्ष और विपक्ष में बहुत कुछ कहा गया है। मुझे इन बातों पर यहां विचार करना अभीष्ट नहीं है। परन्तु इधर हाल में कुछ लोगों ने यह बात उड़ा दी है कि यह 'जनगण' का गान कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने सम्राट पंचमजार्ज की स्तुति में लिखा था और वह पहले-पहल सन् 1912 ई. के दिल्ली दरबार में गाया गया था। इस संबंध में मेरे पास अनेक सज्जनों ने पूछताछ की है। भारत का राष्ट्रगीत चाहे जो भी स्वीकार किया जाए, वह हम लोगों के लिए पूजनीय और वंदनीय होगा, पर किसी असत्य बात का प्रचारित होना अनुचित है। मैंने विश्व भारतीय संसद (गवर्निंग बॉडी) के सदस्य की हैसियत से अन्य अनेक मित्रों के साथ एक वक्तव्य 30 नवम्बर, 1948 को दिया था, जिसमें इस प्रकार की धारणा को सप्रमाण भ्रांति सिद्ध कर दिया था। परन्तु उस वक्तव्य के प्रकाशित होने के बाद भी पत्र आते रहे। इसलिए एक बार फिर मैं साधारण जनता के चित्त से इस भ्रांत धारणा को दूर करने के उद्देश्य से यह वक्तव्य प्रकाशित कर रहा हूं।

कुछ दिन पहले तक इस प्रकार के अपप्रचार का क्षेत्र बंगाल तक ही सीमित रहा है। कवि की जीवितावस्था में ही इस प्रकार की काना-फूसी चलने लगी थी। किसी-किसी ने उनसे पत्र लिखकर यह जानने का प्रयत्न भी किया था कि इस काना-फूसी में कुछ तथ्य है या यह बिल्कुल निराधार है। कवि ने बड़ी व्यथा के साथ श्री सुधारानी देवी को अपने 23 मार्च, 1939 के पत्र में लिखा था कि 'मैंने चतुर्थ या पंचमजार्ज को 'मानव इतिहास के युग-युग धावित पथिकों के रथयात्रा का चिर-सारथी कहा है, इस प्रकार की अपरिमित मूढ़ता का संदेह जो लोग मेरे विषय में कर सकते हैं, उनके प्रश्नों का उत्तर देना आत्मावमानना है।'

रवीन्द्र-साहित्य का साधारण विद्यार्थी भी जानता है कि रवीन्द्रनाथ राजा या राजराजेश्वर किसे कहते हैं कि साधारण जनता जिसे ईश्वर या भगवान कहती है,उसी को रवीन्द्रनाथ ने राजा, राजेंद्र, राजराजेश्वर आदि कहा है। उनके 'राजा', 'डाकघर', 'अरूपरतन' आदि नाटकों में यही राजा अदृश्य पात्र होता है। 'एक शक्ति' कविता में उन्होंने इस 'राजेन्द्र' को सीमाहीन काल का नियंता कहा है। उनके गानों में इस 'राजा' पर भरोसा करने की बात कही गयी है। एक गान में उन्होंने लिखा है कि तेरे स्वामी ने तुझे जो कौड़ी दी है उसे ही तूं हंस कर ले ले, हज़ार-हज़ार खिंचावों में पड़ा मारा-मारा न फिर। ऐसा हो कि तेरा हृदय जाने कि तेरे राजा हृदय में ही

विद्यमान है।

जे कड़ितोर स्वामीर देवा सेइ कड़ि तुइनिस रे हेसे।
लोकेर कथा जिसने काने फिरिसने आट हजारे टाने।
जेन रे तोर हृदय तोर आद्येन राजा।।

जो लोग सरल भाव से विश्वास कर सकते हैं कि रवीन्द्रनाथ ने 'राजेश्वर' कहकर किसी पंचमजार्ज की स्तुति की है। वे यदि गान की कुछ पंक्तियों पर थोड़ा भी विचार करते तो उन्हें अपना भ्रम स्पष्ट हो जाता। कैसे कोई किसी पंचम या षष्ठ जार्ज को–

'विकट पन्थ उत्थन तपन मय युग–युग धावित यात्री
हे चरिसारथि तव रथचक्रे मुखरित पथ दिन रात्री
दारुण विप्लव मांझे, तब शंखध्वनि बाजे
संकट दुख परित्रता' (हिन्दी अनुवाद से)

कह सकता है? फिर कोई पंचम या अंपचम जार्ज को किस प्रकार–

घोर अन्धतम विकल निशा भयमूर्छित देश जनों में
जागृत था तव अविचल मंगल नत अनिमिष नयनों में
दु:स्वप्ने आतंके आश्रय तव मृदु अंके,
स्नेहमयी तुम माता।'

कहकर उसे 'जनगण' संकट त्राटक कह सकता है? और रवीन्द्रनाथ जैसे मनस्वी कवि से जो लोग आशा करते हैं कि किसी नरपति को वह इतना सम्मान देगा कि सम्पूर्ण भारत उसके चरणों में 'नतमाथ' होगा, उसे क्या कहा जाए!

वस्तुत: यह गान दिल्ली दरबार में नहीं, बल्कि सन् 1911 ई. में हुए कांग्रेस के कलकत्ते वाले अधिवेशन में गाया गया था। सन् 1914 ई. में जॉन मुरे ने 'दि हिस्टारिकल रेकार्ड ऑव दि इम्पीरियल विज़िट टु इंडिया, 1911' नाम से दिल्ली दरबार का एक अत्यंत विशद विवरण प्रकाशित किया था। उसमें इस गान की कहीं चर्चा नहीं है। सन् 1914 में रवीन्द्रनाथ की कीर्ति समूचे विश्व में फैल गयी थी। अगर यह गान दिल्ली दरबार में गाया गया होता तो अंग्रेज प्रकाशक ने उसका अवश्य उल्लेख किया होता, क्योंकि इस पुस्तिका का प्रधान उद्देश्य प्रचार ही था।

असल में सन् 1911 ई. में हुए कांग्रेस के माडरेट नेता चाहते थे कि सम्राट दम्पति की विरुदावली कांग्रेस मंच से उच्चारित हो। उन्होंने इस आशय की रवीन्द्रनाथ से प्रार्थना भी की थी, पर उन्होंने अस्वीकार कर दिया था। कांग्रेस का अधिवेशन 'जनगण मन' गान से हुआ और बाद में सम्राट दम्पति के स्वागत का प्रस्ताव पास हुआ। प्रस्ताव पास हो जाने के बाद एक हिन्दी गान बंगाली बालक–बालिकाओं ने गाया था, यही गान सम्राट की स्तुति में था। सन् 1911 ई. के 28 दिसम्बर के 'बंगाली' में कांग्रेस अधिवेशन की रिपोर्ट इस प्रकार छपी थी–

'The proceedings commenced with a patriotic song composed by Babu Rabindranath Tagore, the leading poet of Bengal (Jana gana mana...) of which we give the English translation

(यहां अंग्रेजी में इस गान का अनुवाद दिया गया था।) Then after the passing of the loyalty resolution, a Hindi song paying herfelt homage to their Imperial Majesties was sung by Bengali boys and girls in chorus.'

विदेशी रिपोर्टरों ने दोनों गानों को गलती से रवीन्द्रनाथ लिखित समझ कर उसी तरह की रिपोर्ट छापी थी। इन्हीं रिपोर्टों से आज यह भ्रम चल पड़ा है।

मैं स्पष्ट रूप से बता दूं कि मैं 'वन्देमातरम्' गान का कम भक्त या प्रशंसक नहीं हूं। यह वक्तव्य इस उद्देश्य से दिया गया है कि असत्य बात प्रचारित न हो और इस महान् कवि के सिर व्यर्थ का ऐसा दोषारोप न किया जाए जिसने भारतवर्ष की संस्कृति को सम्पूर्ण जगत् में प्रतिष्ठा दिलवायी। रवीन्द्र मनस्वी कवि थे, वे कभी किसी विदेशी नरपति की स्तुति में इतना मनोहर गान लिख ही नहीं सकते थे।

साभार–विपाशा, जुलाई–अगस्त 2012

नेक सुबह

□ दयाल चंद जास्ट

जो प्रात: प्यार बरसाएगी
सबके तकरार मिटाएगी
दिल में लेकर आएगी खास जगह
उस दिन का है इंतजार मुझे।

जुल्म ज्यादती कंही न होगी
साहूकारे की बही न होगी
आत्महत्या कहीं न होगी किसी तरह
उस दिन का है इंतजार मुझे।

कन्या का जीना हराम न हो
प्रदेश मेरा बदनाम न हो
बुरा कोई पैगाम न हो आये कोई नेक सुबह
उस दिन का है इंतजार मुझे।

मजहब सारे एक रहें
नेकी करें और नेक कहें
न लड़ें न लड़ाई सहे देश की होगी फ़तेह
उस दिन का है इंतजार मुझे।

(2)

कड़ाके की ठंड भै आई सिर पै ना छात
खुले गगन की रजाई,मेरा ठिठरै सै गात
मेरा ठिठरै सै गात,होग्या मौसम भी बैरी
रैन–बसेरा कोन्या,मुस्किल मै जिंदगी ठैरी
कह जासट कविराय,सोवैं मार सड़ाके
जिनके सिर ना छात,भै लिकड़ैंगे कड़ाके

(3)

जहर घोल के एक ओर
खड़े रहैं बदकार
उनके मन मै दया नहीं
बणे फिरैं सरकार
बणे फिरैं सरकार
आप में बांटणिए रै
भले लोगां का भला
बुरयां नै डांटणिए रै
कह दयाल कविराय
सहांगे ना हाम कहर
मिलकै रहो सब साथ
घुल ना पावै जहर

सम्पर्क–9466220146

कहानी

आग

□ एस.आर. हरनोट

शास्त्री वेदराम आज जैसे ही कुर्सी पर बैठने लगे तीसरी कक्षा के एक बच्चे बादिर ने उनसे पूछ लिया,

गुरू जी! गुरू जी! हिन्दू क्या होता है...?

उन्हें एक पल के लिए लगा, कक्षा में बैठे सभी बच्चों ने बर्रों की तरह उन पर आक्रमण कर दिया हो। बच्चों की उपहासयुक्त हंसी और इस प्रश्न से वे भीतर ही भीतर थोड़ा विचलित तो हुए परन्तु अपने को संयत करते हुए कुर्सी पर बैठ गए। मेज पर रखा पानी का गिलास उठाया और एक सांस में गटक गए। दो पलों के लिए आंखे बंद की जैसे भीतर के विचलन को शांत कर रहे हों। धीरे से आंखें खोली तो कक्षा में बैठे प्रश्न पूछने वाले बच्चे पर आंखे टिक गई। वह हल्का-सा सहमा हुआ ऐसे बैठा था मानो कुछ ग़लत पूछ लिया हो। उसके साथ उसी की बिरादरी का एक दूसरा बच्चा भी बैठा था जिसके चेहरे पर भी हल्का सा डर दिखा। शास्त्री जी ने कक्षा के सभी बच्चों पर सरसरी निगाह डाली। वे यह देखकर अचम्भित थे कि उनकी कक्षा में बैठे उच्चवर्ग के बच्चों के ओंठों पर एक व्यंग्यपूर्ण मुस्कान पसरी थी कि बदरू को यह पता भी नहीं कि हिन्दू क्या होता है। इसी बीच स्कूल का चपड़ासी आया और खाली गिलास उठाकर बाहर चला गया।

बादिर जिसे बच्चे बदरू के नाम से भी पुकारते थे वह अभी भी अपनी तख्ती पर आंखें गड़ाए उंगलियों के पोरों से फर्श पर बिछी टाट टूंग रहा था। शास्त्री जी ने बहुत स्नेह से उसे अपने पास बुलाया। मेज की दराज से हाजरी का रजिस्टर निकाल कर उसे पकड़ा दिया कि बच्चों का बारी बारी नाम लेकर हाजरी लगाए। बच्चे के भीतर का डर कम हो गया था पर अपने पूछे प्रश्न को लेकर वह अभी भी आतंकित था जैसे उसने कोई प्रश्न नहीं बल्कि शास्त्री जी से कुछ अनर्गल पूछ लिया हो। उसकी समझ में नहीं आया कि उसके प्रश्न पूछने पर उसके साथी बच्चे क्यों हंसने लगे और गुरूजी ने उत्तर क्यों नहीं दिया...?

■

कई दिनों से शास्त्री जी के मस्तिष्क में कुछ ऐसी घटनाएं घूम रही थी जिनकी तह तक वह जाने का प्रयास कर रहे थे। वे ज्यादातर धार्मिक और इतिहास की पुस्तकें पढ़ा करते थे। इसके अतिरिक्त अंक-शास्त्र और गीता का नियमित अध्ययन और उस पर मनन करते रहना उनकी दिनचर्या के हिस्से थे। यद्यपि वे व्यर्थ के पूजा-पाठ से हमेशा दूरी बनाए रखते फिर भी उन्हें लोग कई बार बड़े आयोजनों में भागवत कथा या चंडी जैसे कठिन पाठों और यज्ञों को करने के लिए ले जाया करते थे। वे जिस वैदिक प्रावधानों के अन्तर्गत वैज्ञानिक तरीके से उन्हें अंजाम देते वे सभी को चकित कर देते थे।

परन्तु कुछ दिनों से उन्होंने कई प्रगतिशील कवियों की कविताओं का अध्ययन शुरू किया था। कबीर से लेकर मुक्तिबोध, नागार्जुन, शमशेर और त्रिलोचन के कविता संग्रहों में से एक दो उनके झोले में जरूर होते और समय निकलते ही वे स्कूल में उन्हें पढ़ना और आंखे बंद करके गहरा चिंतन करना नहीं भूलते। इनमें मुक्तिबोध उनके प्रिय कवि बन गए थे। इसलिए उनका एक कविता संग्रह 'चांद का मुंह टेढ़ा' है' अक्सर अपने पास रखते और बच्चों को पढ़ाने और कोई पाठ याद करने के लिए देने के बाद वे वहीं बैठे-बैठे संग्रह में से कोई कविता पढ़ लिया करते।

एक दिन भी उनके साथ ऐसा ही कुछ हुआ था। बदरू ने उनसे अचानक पूछा था,

'गुरू जी! गुरू जी! चांद का मुंह टेढ़ा कैसे होता है...?'

कक्षा के अन्य बच्चे उसकी बात पर उस रोज भी हंसे थे लेकिन वह हंसी आज की हंसी से बिल्कुल भिन्न थी। शास्त्री जी इस प्रश्न से चौंके जरूर थे पर आज की तरह हतप्रभ नहीं हुए थे। हालांकि वे बहुत अच्छे ढंग से इस प्रश्न का उत्तर दे देते पर उन्हें मालूम था कि तीसरी कक्षा के इस बच्चे की समझ में क्या मुक्तिबोध का प्रगतिशील दर्शन आएगा। वे जानते थे कि उस बच्चे ने उनके हाथ में इस किताब का शीर्षक पढ़ लिया होगा। वैसे भी बदरू उनकी क्लास में सबसे होशियार था और उनसे कुछ न कुछ जरूर पूछ लिया करता। शास्त्री जी को उसकी दक्षता पर कई बार हैरानी भी होती थी। आज उन्होंने बड़े मजाकिया ढंग से कहा था,

'बच्चु! घर जाकर अपने दादा से पूछियो तो।'

बच्चा संतुष्ट हो गया था।

फिर आज ऐसा क्या हो गया कि बदरू के प्रश्न पूछने पर उनका पढ़ाने को भी मन नहीं कर रहा था। आज वैसे भी कल के लिए 15 अगस्त की तैयारियां बच्चों से करवाई जानी थी। क्योंकि सबसे पुराना प्राइमरी स्कूल होने के नाते वह पंचायत के अन्य चार स्कूलों का भी केन्द्र माना जाता था और शास्त्री जी को मुख्याध्यापक का दर्जा पहले से ही हासिल था। इसलिए पंचायत स्तर पर सभी स्कूलों के बच्चों का आयोजन वहीं होना था। उनके साथ दो अध्यापक और थे जो काम कम और बातें ज्यादा करते थे। पर इस आयोजन के लिए उन्हें भी शास्त्री जी ने कई काम सौंप रखे थे।

■

शास्त्री जी इन दिनों स्कूल के पाठ्यक्रम को बदले जाने को लेकर भी चिंतित थे। उन्होंने अभी तक भी अपने स्कूल में बच्चों को नई पुस्तकों की जानकारी नहीं दी थी जबकि शिक्षा बोर्ड से पहली से लेकर पांचवीं तक की कुछ

पुस्तकों के बंडल पहुंच गए थे। इसी बीच उनकी पाठशाला में कई सर्कुलर भी आ गए थे। किसी में सुबह की प्रार्थना के वक्त राष्ट्रगान गाना अनिवार्य कर दिया था तो किसी में राष्ट्रगीत। एक सर्कुलर ऐसा भी था जिसमें प्रत्येक स्कूल के लिए सप्ताह में दो बार ड्रेसकोड शुरू करने के निर्देश थे। इसमें प्रत्येक छात्र को, चाहे वह किसी भी वर्ग का क्यों न हो, एक विशेष रंग के साथ धोती-कुरते को पहनना अनिवार्य कर दिया गया था। तीसरा सर्कुलर प्राइमरी पाठशालाओं से लेकर उच्च माध्यमिक पाठशाला के लिए संयुक्त रूप से जारी किया गया था कि एक लघु पुस्तकालय खोला जाए जिसमें वेद, पुराणों से लेकर, रामायण, महाभारत और गीता की प्रतियां उपलब्ध हों। साथ ही हर प्राईमरी स्कूल को 25 हजार और माध्यमिक स्कूल को 50 हजार का बजट भी एलाट कर दिया गया था। इसमें यह भी हिदायतें थी कि पाठशाला का प्रत्येक बच्चा इन महान ग्रन्थों से परिचित हों जिसके लिए प्रत्येक शनिवार को आधे दिन का समय इन्हीं पर मार्गदर्शन देने के लिए निर्धारित कर लिया गया था। चौथा सर्कुलर नए पाठ्यक्रम के संदर्भ में था जिसमें पहली कक्षा के लिए हिन्दी और अंग्रेजी की वर्णमाला और उनसे बनने वाले शब्द पूरी तरह से बदल दिए गए थे। शिक्षकों को ऐसी गोपनीय मार्गदर्शिका तैयार की गई थी जो उन्हीं के हाथों में रहेगी और उसी के आधार पर वे बच्चों को हिन्दी और अंग्रेजी का ज्ञान दे सकेंगे।

शास्त्री जी पर दवाब बढ़ता जा रहा था कि वे क्यों नहीं नए पाठयक्रम को अपने स्कूल में पढ़ाना शुरू कर रहे हैं। वे यही चाहते थे कि किसी तरह दो-तीन महीने निकल जाए और वे सेवानिवृत्त होकर घर चले जाएं। उसके बाद जिसने जो करना हो या पढ़ाना हो उन्हें उससे क्या मतलब। परन्तु यह सबकुछ उनके रहते ही होना था, ऐसा उन्होंने कभी सोचा भी नहीं था।

■

बदरू ने एक दिन फिर शास्त्री जी से पूछा था,

'गुरू जी! गुरू जी! अब 'अ' से 'अवोधा' क्यों होता है, 'अनार' क्यों नहीं होता ?'

पहले तो उनकी समझ में नहीं आया कि वह क्या पूछ रहा है ? उन्होंने बच्चे से दो तीन बार प्रश्न दोहराने को कहा तो वह 'अवोधा' ही उच्चारित कर रहा था। उन्हें स्मरण हो आया कि नए पाठयक्रम में बहुत से परिवर्तन कर दिए गए हैं। वे एक सैट पाठ्यक्रम की बदली हुई पुस्तकों का घर भी ले गए थे। हालांकि अभी तक ज्यादा अध्ययन नहीं किया था परन्तु बीच-बीच में समय मिलते ही उन्हें उलट-पलट लिया करते और हैरान होते कि इस तरह का पाठयक्रम पहली के बच्चों के लिए तैयार

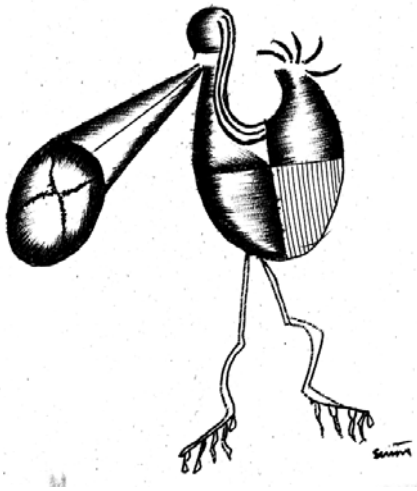

करने का क्या आशय है ?

उनकी समझ में जब 'अवोधा' का सही उच्चारण आया तो माथा ठनका। बच्चा पूछ रहा था कि अब 'अ' से 'अयोध्या' क्यों होता है। शास्त्री जी ने बहुत प्यार से उस बच्चे को पास बुलाया और पूछा कि उसको यह कहां से पता है। बच्चे ने बताया कि पिछले इतवार को उसके मामा का बच्चा घर नई किताब लेकर आया था, उसी में यह लिखा था। शास्त्री जी समझ गए कि अन्य सभी स्कूलों में नया पाठ्यक्रम शुरू कर दिया गया है। उनके पास उस बच्चे के इस प्रश्न का कोई जवाब नहीं था। परन्तु उन्हे पहली की किताब की तकरीबन सारी वर्णमाला याद आ गई जिसे उन्होंने सरसरी तौर पर देखा था। उसमें तकरीबन सभी चीजें बदल दी गई थीं। जैसे 'आ' से 'आम' नहीं था, आतंकवाद हो गया था। 'इ' से इमली नहीं थी, अब 'इस्लाम' कर दिया गया था। 'क' से 'कमल' ही था परन्तु निर्देशिका में उसके अर्थ बदल दिए गए थे। 'ग' से 'गमले' की जगह 'गणेश' ने ले ली थी। उसी तरह 'ह' से न 'हल' था, न ही 'ज' से 'जहाज'। 'ध' से 'धनुष' भी गायब हो गया था। 'म' से 'मछली' भी नहीं थी। 'स' से सपेरे की जगह 'संगठन' का नाम हो गया था। 'ह' से 'हिन्दू और हिन्दुत्व' हो गया था। उसी तरह 'र' से 'रथ' के स्थान पर अब 'राम' अंकित था। वर्णमाला के तकरीबन सभी अक्षरों के पूर्व संकेत परिवर्तित कर के बिल्कुल नए शब्द दे दिए गए थे जिनके अर्थों को उसके साथ अलग मार्गदर्शिका के मुताबिक समझाने के निर्देश थे ताकि बच्चे पहली कक्षा से ही इन चीजों से परिचित हो जाएं। इन्हीं के साथ शास्त्री जी को कुछ और अक्षर स्मरण हो आए जिनके नए अर्थों पर घोर आपत्ति दर्ज हो सकती थी।

शास्त्री जी इन सभी बातों और घटनाओं को अब सीधे-सीधे बदरू और उसके प्रश्न से जोड़ रहे थे। इसलिए असमंजस भी था और कोई अप्रत्याशित भय भीतर ही भीतर उन्हें किसी अनहोनी की तरफ इशारा कर रहा था। उन्हें यह प्रश्न इसलिए भी विचलित कर गया कि वह एक मुस्लिम परिवार के बच्चे ने पूछा था। उनके गांव में अधिकतर परिवार उच्च जाति के ही थे। दलितों के दो तीन और बादिर का केवल एक ही परिवार था।

इस परिवार से शास्त्री जी का बहुत पुराना रिश्ता कई कारणों से जुड़ा था। 1946 में जब बंटवारा हुआ तो हिन्दू-मुस्लिम दंगे गांव-गांव तक फैल चुके थे। उनके दादा ने एक मुस्लिम परिवार जिसमें पति पत्नी और एक बच्चा था, को उपद्रवियों से बचाया था जो अचानक एक रात कहीं से छिपता-छिपाता हुआ उनके दरवाजे पहुंच गया था। उस परिवार को उस समय तक सुरक्षा मिली जब तक माहौल ठीक नहीं हो गया। उसके बाद दादा ने अपनी जमीन का एक टुकड़ा उन्हें दे दिया और एक अस्थायी मकान बनाकर वह परिवार उसी गांव में रहने लगा। वहीं उनके बच्चे हुए और शादियां भी। परिवार के मर्द इधर उधर जाकर मेहनत मजदूरी

भी करते और अपनी औरतों के साथ शास्त्री की जमीन का काम भी देखा करते। उन्होंने कई पहाड़ी गायें और बकरियां भी पाली थीं जिसका दूध गांव में कई जगह जाता था। उस गांव, परगने और पंचायत में कभी यह लगा ही नहीं कि वह एक मुस्लिम परिवार है। सभी उनसे अपनों की तरह ही स्नेह किया करते थे।

परन्तु कुछ सालों से उस परिवार के प्रति जो वैमनस्य बहुत से लोगों में पनपने लगा था उसकी भनक शास्त्री जी को पहले से ही थी। कई बार उनके बच्चों को कई कुछ उल्टा सीधा बोला जाता। उनकी लड़कियों और औरतों को तंग करने की भी छुट-पुट घटनाएं सामने आई थी परन्तु शास्त्री जी का जो सम्मान और प्रतिष्ठा पंचायत और परगने से लेकर दूर-दूर तक थी, वही हर बार कहीं न कहीं उस परिवार का कवच बन जाया करती थीं। कुछ ऊसरमति लोगों ने एक दो बार शास्त्री जी को चेता भी दिया था कि इस तरह गांव में मुस्लिम परिवार का रहना अच्छा नहीं है... अब पहले की तरह ज़माना तो नहीं रहा... देश में इतनी घटनाएं हो रही है... शास्त्री को समय रहते कुछ कर देना चाहिए ? वे इन बातों को अनसुना कर देते थे। परन्तु एक डर अवश्य ही उनके भीतर घर कर गया था जिससे वे हमेशा परेशान रहने लगे थे।

■

शास्त्री जी इस प्रश्न को देश में घटी कई घटनाओं से जोड़कर भी देख रहे थे। कुछ दिनों से जिस तरह कई जगह सांप्रदायिक घटनाएं, भेदभाव और कुछ हत्याओं के समाचार आ रहे थे वे उन्हें विचलित करने लगे थे। उनके मन से अभी तक दाभोलकर, पंसारे और प्रो. कलबुर्गी की हत्याओं के प्रतिबिंब नहीं गए थे कि गाय की तस्करी के आरोप में जैसे पहलू खान और कई अन्य निम्नवर्ग के लोगों को मारा गया और गौरक्षकों ने कई वारदातों को अंजाम दिया, वे घटनाएं उन्हें भीतर ही भीतर कचोट रही थी। गौरक्षा के नाम पर जो कुछ भी देश के कोने-कोने में होने लगा था वह उनके लिए आश्चर्य से कम नहीं था। वे इन घटनाओं को देशहित में नहीं देख रहे थे। वह चाहे असहिष्णुता के नाम पर बुद्धिजीवियों का पुरस्कार लौटाना हो, गाय के नाम पर मार-पिटाई या हत्याएं हों, धर्म और जाति के नाम पर राजनीति या पहले से ज्यादा बढ़ता आतंकवाद। या फिर देश पर सुधार और विकास के नाम पर जबरदस्ती थोंपे गए अनर्गल निर्णय।

परन्तु उनकी समझ में यह नहीं आ रहा था कि उनके गांव का छोटा सा बच्चा क्यों इस तरह का प्रश्न पूछ रहा है...? उन्होंने यही सोचा था कि पन्द्रह अगस्त का समय इसका उत्तर देने के लिए उपयुक्त रहेगा क्योंकि उस दिन पंचायत के प्रधान

और सदस्यों से लेकर स्कूल के बच्चों और मास्टरों सहित दूर-दूर से लोग भी आएंगे और बच्चों के परिवार वाले भी।

शास्त्री वेदराम हिन्दू शब्द के मूल में जाना चाहते थे। जहां तक उन्हें याद है या जो शिक्षा उन्होंने अपने प्रख्यात विद्वान गुरू आचार्य शिवज्योति से प्राप्त की थी उन्होंने भी हिन्दू को कभी किसी जाति, पंथ या मत से नहीं जोड़ा था। उनकी कुछ पुरानी पुस्तकें उनके पास सुरक्षित थीं। शास्त्री जी का अपना पुस्तकालय भी बहुत समृद्ध था जहां कई बार दूर-दूर से विद्वान और शोध छात्र अध्ययन के लिए आते रहते थे। आज उनका पूजा करने का मन भी नहीं हुआ। उन्होंने झटपट घर के छोटे-मोटे काम निपटाए और अपने पुस्तकालय में चले गए। उस दिन उनका एक शोधछात्र भी अध्ययन के लिए वहां आया हुआ था। शास्त्री जी एक-दो दिनों से इसी बारे में उससे चर्चा भी करते रहते थे। वे पहले अपनी कुर्सी पर बैठे आंखें बंद करके काफी देर कुछ चिंतन करते रहे। फिर पुस्तकों की एक अलमारी खोल कर उसके समक्ष खड़े हो गए। उनकी याद्दाश्त इतनी तीव्र थी कि पुस्तक देखते ही उन्हें विषय या संदर्भ का पृष्ठों की संख्या सहित स्मरण हो जाया करता था।

उन्होंने पुस्तकों के मध्य से ऋग्वेद को निकाला और उसके पृष्ठ पलटने लगे। उन्हें 8, 24 और 27 ऋचाएं याद आईं। इन्हें निकाल कर दोबारा पढ़ना शुरू किया। इनमें सप्तसिंधव: शब्द देश के अर्थ में प्रयुक्त हुआ था जबकि अन्यत्र सभी जगह इसका आशय सात नदियों से था। उन्हें इसी के साथ मैक्समूलर याद आए जिन्होंने इस शब्द से पंजाब की पांच नदियों के साथ सिन्धु और सरस्वती की उत्पत्ति को भी जोड़ा। उन्होंने ऋग्वेद को अपने स्थान पर रखा और अपने गुरू की भेंट की एक पुरानी पुस्तक निकाल ली। उसके एक अध्याय को पढ़ा जिसमें ईरान देश की सुपुरातन भाषा अवेस्ता में सिन्धु देश 'हिन्दु' के रूप में वर्णित था। उसमें द में छोटे उ की मात्रा थी बड़े ऊ की नहीं। वहां इसका अर्थ भारत था। उन्हें अचानक मुंशी नवलकिशोर प्रैस की एक पुस्तक- मसनवी मौलवी मानवी का पृष्ठ 167ए याद आ गया जिसका जिक्र उन्होंने पिछले दिनों अपने शोधछात्र से किया था। पुस्तक इतनी पुरानी थी कि उसके पृष्ठ हल्की सी हवा से भी बिखर जाएं। उसे निकाल कर वे कुर्सी पर बैठ गए और उसके पृष्ठों को देखने लगे। एक पर उन्हें यह पंक्ति मिलीं- 'चार हिंदू दर यके मस्जिद शुदंद, बहरे ताअत रा के ओ साजिद शुदंद।' जिसका आशय है कि चार हिन्दू यानी हिन्दुस्तानी मुसलमान एक मस्जिद में गए और इबादत के निमित्त सिजदा करने लगे। शास्त्री जी इन पंक्तियों को बार-बार दोहराते रहे, पढ़ते रहे और अन्य विवरणों के साथ अपनी डायरी में नोट करते चले गए। फिर सोचने लगे कि क्या सप्तसिन्धु क्षेत्र के समस्त लोग प्राचीन काल में हिन्दू कहलाते थे जिसमें मुस्लमान भी शामिल थे...?

शास्त्री जी विचार करने लगे कि फिर यह कैसे हो गया कि बहुत बाद इस्लाम धर्म की तुलना में भारतीय धर्म हिन्दू धर्म के नाम से संबोधित होने लगा जबकि हिन्दू नाम से कहीं भी किसी जाति का उल्लेख नहीं मिलता। प्राचीन ग्रन्थों में तो केवल ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आदि जातियां ही थीं। वे आश्चर्य में पड़ गए देखा कि पारसियों ने जब मुस्लिम धर्म स्वीकार किया तो अचानक हिन्दू शब्द उनके लिए काफिर, काला, लुटेरा और गुलाम कैसे हो गया...? शायद इसलिए ही प्राचीन भारतवासियों ने अपने को कभी हिन्दू न कह कर वैष्णव, शैव, शाक्त और सिख आदि से सम्बोधित किया होगा...?

उन्होंने उस पुस्तक को बहुत संभाल कर अपनी जगह रख दिया और पुन: अलमारी के समक्ष खड़े हो गए जहां कई पुराण और उपनिषद् थे, गीता, महाभारत, रामायण थीं, गुरू ग्रन्थ साहब, बाइबल और कुरान रखे थे। उन्हें कहीं भी कुछ ऐसा याद नहीं आया जहां हिन्दू धर्म और किसी 'हिन्दुत्व' शब्द की व्याख्या की गई हो। साथ-साथ वह उस शोधछात्र से भी बतियाते रहे जो संस्कृत साहित्य में पीएचडी कर रहा था। शास्त्री जी ने गीता को स्मरण किया जिसमें उन्हें जीवन का सार मिला जो मनुष्य को बेहतर जीवन जीने की प्रेरणा देता है। कुरान का सीधा अर्थ सकारात्मक था जिसमें नकारात्मक सोच या किसी कार्य को तवज्जो नहीं दी जाती। वहां कुर्बानी का अर्थ दान से लिया गया था यानी अपनी मेहनत की कमाई का कुछ हिस्सा गरीब को देने से जिसका तात्पर्य था। अल्लाह के नाम पर किसी तरह की जिहाद वहां नहीं थी। इसी मध्य उस शोधछात्र ने उनके विचारों को और पुष्ट करते हुए जोड़ा कि कुरान में जीव हत्या, व्यर्थ आघात पहुंचाना, जल और पेड़ों को क्षति पहुंचाना पाप माना गया है। वहां स्नेह के लिए बड़ा स्थान है आतंक के लिए नहीं। उसने शास्त्री जी को अब बाइबल निकाल कर दे दी थी और वे उसके पन्ने पलटने लगे थे। उन्हें हर पन्ने से अथाह प्रेम की सुगन्ध आती महसूस हुई। भलाई की गंध आती मिलीं। भाईचारे के संदेश और एक दूसरे के प्रति आदर और स्नेह की आवाजें सुनाई देने लगी। उन्होंने किताब को उसी स्नेह से वापिस उसकी जगह रख दिया।

उनकी नजर अब गुरू ग्रन्थ साहिब पर टिक गई थीं। उसमें लिखे उपदेश याद आने लगे थे। कई हिन्दू संत और अलग-अलग धर्मों के मुस्लिम भक्तों की वाणियां स्मरण होने लगी थीं। कबीर, रविदास, नामदेव, सैण जी, सघना जी, छीवाजी, धन्ना की वाणियां कितनी बार उन्होंने कायक्रमों में गाईं है। और वे हैरान थे जब उन्हें पांचों वक्त नमाज पढ़ने वाले शेख फरीद के श्लोक भी गुरू ग्रंथ साहिब में दर्ज मिलने का स्मरण हो आया था। वे

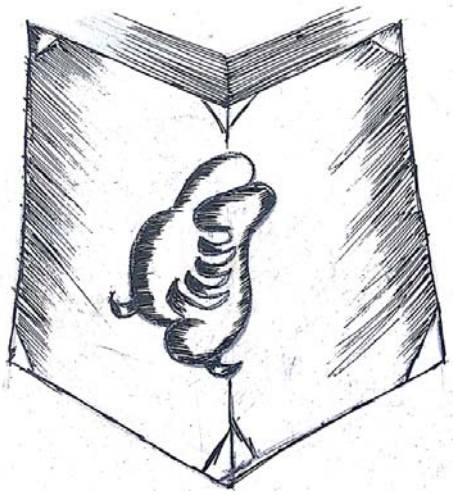

पुन: कुर्सी पर आसीन हो गए और आंखें बंद करके मनन करते रहे कि फिर हम से कहां चूक हो गई कि आज हर धर्म में कट्टरता पसर गई है। नफरत घुस गई है। स्वार्थ जहां सर्वोपरि हो गया है। इंसानियत नाम की कोई चीज नहीं रही है। वे तकरीबन आधे-पौने घण्टे तक इन्हीं विचारों में खोए रहे थे। उन्हें वह मुस्लिम परिवार और उनका बच्चा बदरू बार-बार याद आते रहे और कुछ लोगों की हिदायतें मन में उछालें मारने लगीं कि 'शास्त्री जी गांव में मुस्लिम परिवार का इस तरह रखना संगत नहीं..... जमाना पहले जैसा नहीं है।' वे यह सोचते झटके से उठे और मेल पर पड़ा पानी का गिलास खड़े-खड़े गटक गए।

उनकी पत्नी काफी देर से दरवाजा खटखटा रही थी कि देर बहुत हो गई है, अब खाना खा लें। शास्त्री जी अपनी अलमारी खुली छोड़ कर पत्नी के साथ रसोईघर में चले गए थे। साथ उनका शोधछात्र भी था। पत्नी को उनके चेहरे पर चिंताओं की रेखाएं दिख रही थी। उन्होंने जब पूछा कि तबीयत तो ठीक है, शास्त्री जी ने सर हिला कर ही अच्छी होने का संकेत दिया था। आज उनका खाना खाने का मन नहीं था। फिर भी जैसे-कैसे उन्होंने थोड़ा सा भोजन किया और अपने कमरे में लौट आए। इसी बीच उस शोधछात्र ने उन्हें अलमारी से निकाल कर कबीर की एक पुस्तक थमा दी थी। उनका ध्यान अब कबीर के दोहों और उनके समय पर केन्द्रित होने लगा था। उन्हें एकाएक स्मरण हो आया कि कबीर के समय में हिन्दू-मुसलमान का आपसी विरोध चरम पर था। इंसानियत का धर्म त्याग व भूल कर दोनों वर्ग बनावटी विभेदों द्वारा उतेजित होकर अधर्म करने लगे थे। कबीर ने दोनों को आपस में मिलकर रहने के लिए सर्वधर्म की भूमिका निभाई। शास्त्री जी को उनके श्लोक/दोहे याद आने लगे.....

कह हिंदू मोहि राम पियारा, तुरूक कहै रहिमाना।

आपस में दोउ लरि मूए, मरम न काहू जाना।

उन्हें लगा जैसे कबीर बिल्कुल आज ही की बात कर रहे हो। उन्होंने अपने कालखण्ड में भी धर्मों और संप्रदायों के अंतर्विरोधों, हिंदू वर्ण व्यवस्था और मत-मतांतरों की विकृतियों को पुरजोर ढंग से उजागर किया था। उन्हें फिर एक दोहा स्मरण हो आया था,

एक बूंद एक मल मूतर, एक चाम एक गूदा।

एक जोत थैं सब उतपन, कौन ब्राह्मण कौन सूदा।

शास्त्री जी की नजर कबीर के बाद सावरकर, पंडित दीन दयाल उपाध्याय, महात्मा गांधी, नेहरू और जिन्ना से सम्बन्धित कुछ पुस्तकों और उनकी जीवनियों पर गईं। बहुत सी चीजें स्मरण हो आईं। उन्होंने कुछ देर के लिए फिर अपनी आंखें बंद कर लीं। विकट अंधेरे में भारत विभाजन के समय में चले गए जब काफी बड़ा नरसंहार हुआ। फिर उन्हें

महात्मा गांधी की हत्या की याद आई और वे चुपचाप कुर्सी पर बैठ गए। कमरे में उन्हें भारी उमस और घुटन महसूस हुई तो उन्होंने आर-पार की दोनों खिड़कियां खोल दीं। मेज पर रखे पानी के जग से तकरीबन दो-तीन गिलास खड़े खड़े गटक लिए और दिमाग में चल रही असंख्य घटनाओं को शिथिल करने का प्रयास करते रहे। तभी एक जुगनू ने भीतर प्रवेश किया और वे उसे बहुत देर तक देखते रहे। उसी जुगनू ने उन्हें 1947 की याद दिला दी जब देश आजाद हुआ था। कल वे उसी आजादी की 70वीं वर्षगांठ मनाएंगे और उस बच्चे की बातों का भी उत्तर देंगे जिसने उनसे पूछा था कि हिन्दू क्या होता है।

जैसे ही वह जुगनू बाहर गया, उनके आसपास का अंधेरा फिर गहराता चला गया। उन्हें पहले 1951 का वर्ष और श्यामा प्रसाद मुखर्जी याद आए और बाद में अचानक 1992 का वह महीना और तारीख स्मरण हुई जब अयोध्या में बाबरी मस्जिद को हजारों लोगों की भीड़ ने ढाह दिया था। फिर अनेक घटनाएं शास्त्री जी के मस्तिष्क में कौंधती रही और वे सीधे 2014 में सोहलवीं लोक सभा में पहुंच कर 26 मई, 2014 के दिन में चले गए जब भारत को 15वां प्रधान मंत्री मिला था। शास्त्री जी धीरे-धीरे उठे। घड़ी पर नजर गई तो साढ़े बारह बजे का समय हो रहा था। तमाम घटनाओं को अपने भीतर संजोए उन्होंने सोने का प्रयास किया और बहुत देर बाद उनकी आंख लग गई।

■

झंडा फहराने के लिए जहां लोहे की पाइप लगाई गई थी उसके आसपास फूलों की पंखुरियां सजाते कुछ बच्चों के साथ जैसे ही शास्त्री वेदराम की नजर स्कूल के गेट पर गई तो उन्होंने देखा कि वहां दो बच्चे सहमे हुए सिसक रहे थे। उनके सिर मुंडे हुए थे और बीच में चोटियां बना दी गई थी। इस कारण उन्हें पहचान पाना कठिन था। उनकी सिसकियों ने शास्त्री जी को भीतर तक आहत कर दिया। वे काम छोड़ कर उनके पास जैसे ही गए तो स्तब्ध रह गए। बच्चे उनकी कक्षा के बदरू और आलम थे। शास्त्री जी को देख कर दोनों फूट-फूट कर रो दिए। उन्होंने दोनों को बड़े दुलार से अपनी छाती से भींच लिया और कमरे में ले आए। मैदान में और बच्चे और कुछ पंचायत के लोग भी मौजूद थे जो इस दृश्य को देखकर स्तब्ध रह गए। किसी की समझ में कुछ नहीं आ रहा था कि माजरा क्या है ?

शास्त्री जी ने उन दोनों को पानी पिलाया और बहुत प्यार से अपने पास बिठा लिया ताकि उनका डर कम हो सके। बच्चे अभी भी ऐसे कांप रहे थे मानों बाहर माघ बरस रहा हो। शास्त्री जी ने उन्हें सारी घटना बताने के लिए कहा।

पहले तो डर के मारे बच्चे कुछ नहीं बोल पाए परन्तु उनके प्यार और आश्वासनों ने उनके भीतर का डर थोड़ी देर में निकाल दिया था। बच्चों ने बताया कि जैसे ही वे गांव के चौराहे पर आए, अनु और बधीर भैया ने उनको पकड़ लिया और एक गौशाला में ले गए। वहां गांव का टेकराम हाथ में उस्तरा लिए बैठा था। उन्होंने डरा-धमका कर हमारे बाल काट दिए और डराया कि यदि हम उनका नाम लेंगे तो वे उसी उस्तरे से हमारे गले काट देंगे। उन्होंने हमारे गले में ये रंगीन पट्टियां भी बांध दी और कहा कि अब वे हिन्दू हो गए हैं और सीधे स्कूल चले जाएं।

शास्त्री जी यह सुन कर हक्के-बक्के रह गए। अनु और बधीर दोनों उन्हीं के परिवार के थे। एक पल के लिए वे उन दोनों लड़कों के अतीत और वर्तमान में चले गए। अनु जिसका पूरा नाम अनुरथ पंडित था, पिछले साल ही समाजशास्त्र में पीएच.डी. की थी और बधीर पाठक ने एम.बी.ए. की डिग्री ली थी। लेकिन जब से वे दोनों गांव में आए थे, राजनीति में उनकी रूचि बढ़ने लगी थी और वर्तमान सरकार के कई नेताओं से उनके अच्छे सम्बन्ध भी बन गए थे। पिछले एक साल से यानी जब से प्रदेश में सत्ता परिवर्तन हुआ था, शास्त्री जी को उनके रंग-ढंग बदले-बदले से लगे थे। कहां तो उन्हें अच्छी नौकरी के लिए प्रयास करने चाहिए थे और कहां वे राजनीति के दलदल में फंसते चले जा रहे थे। शास्त्री जी ने कई बार उन्हें समझाया भी था परन्तु दोनों उनकी बातें कानों के पीछे डाल देते थे। लेकिन किसी ने सोचा भी नहीं था कि वे गांव में कोई इस तरह की घिनौनी और असंस्कारित हरकत भी कर सकते हैं।

शास्त्री जी इस घटना से आग-बबूला हो गए थे। इस बीच पंचायत प्रधान, अन्य स्कूलों के अध्यापक और बच्चे तथा गांव के कई सेवानिवृत्त और प्रतिष्ठित लोग भी पहुंच गए थे। शास्त्री ने समारोह रोक दिया था। जैसे-जैसे लोगों को इस घटना की भनक लगी, धीरे-धीरे अन्य लोग भी स्कूल में इकट्ठे होते चले गए। बदरू और आलम के परिवार को भी इस घटना की सूचना पहुंच गई थी और वे भी बदहवास से पहुंच गए थे। इससे पहले कि उन बच्चों के परिवार वाले विरोध में कोई प्रतिक्रिया देते, शास्त्री जी ने स्वयं ही यह ऐलान कर दिया था कि इस कृत्य की सजा उन दोनों लड़कों को आज ही इसी मैदान में दी जाएगी ताकि दोबारा कोई इस तरह की हरकतें गांव में न करे। उन्होंने दोनों लड़कों का पता कर लिया था कि वे कहां गए हैं। बधीर के पास गाड़ी थी जिसमें वे दोनों निकल गए थे। इसलिए शास्त्री जी ने उनके रास्ते की पुलिस चौकी को इस घटना की सूचना दे दी थी जिससे पुलिस वालों ने नाका डाल कर उन दोनों को दबोच लिया

था और पकड़ कर स्कूल ले आए थे। सिर मूंडने वाले टेकराम को भी कुछ लोगों ने स्कूल पहुंचा दिया था।

अनु और बधीर को पूरा विश्वास था कि अल्पसंख्यक बच्चों के साथ हुए इस कृत्य को उनकी बिरादरी बहादुरी का काम मानेगी लेकिन उन्होंने सोचा भी नहीं था कि उनके अपने ही घर के शास्त्री जी खुद उन्हें पुलिस से पकड़वा देंगे। वे दोनों जैसे ही शास्त्री जी के सामने आए, उन्होंने बिना कुछ पूछे उनकी धुनाई शुरू कर दी। लातों-घूंसों से तो पिटाई हुई ही, उनके हाथ एक डंडा भी लगा जिससे उन्होंने उनको इतना मारा कि वे अधमरे से हो गए। शास्त्री जी को इस तरह आक्रामक और गुस्से में किसी ने कभी भी नहीं देखा था। वे गांव, पंचायत, परगने और स्कूलों में विनम्रता की एक मिसाल समझे जाते थे। यद्यपि ब्राह्मणों और ठाकुरों के लिए यह कोई बड़ी घटना नहीं थी जिन्होंनें इसे महज एक शरारत के रूप में ही लिया था परन्तु शास्त्री जी इसे देश के पूरे परिदृश्य में मजहबी वैमनस्य और धर्मांतर के नजरिए से देख रहे थे।

जिसने उन दोनों लड़कों के बाल काटे थे उससे उस्तरा बरामद कर लिया था और शास्त्री ने पुलिसवालों के सामने ही दो-चार उसे भी धर दिए थे। बाकि की कसर बच्चों के माता-पिता ने पूरी कर ली थी। प्रधान और शास्त्री के परिवार के लोग इस बात को अब यहीं समाप्त करना चाहते थे लेकिन शास्त्री जी इस हक में कतई नहीं थे और उन्होंने स्वयं इसके खिलाफ शिकायत पत्र लिखकर पुलिस वालों को दे दिया था। गांव की बात गांव तक रहे इसी के दृष्टिगत पंचायत प्रधान और अन्य प्रतिष्ठित लोगों ने शास्त्री जी को इस बात पर मना लिया था कि दोनों लड़के और बाल काटने वाले से लिखित माफी पुलिस और प्रधान की मौजूदगी में ले ली जाए। तीनों से माफीनामे ले लिए गए जिसकी तीन प्रतियां बनी और एक-एक प्रति स्कूल, पंचायत तथा पुलिस के पास रखी गई ताकि भविष्य में ऐसी किसी घटना की पुनरावृत्ति न हो सके। शास्त्री जी का यह कहना भी था कि इसके लिए दोनों लड़कों के परिवार बच्चों को बतौर दंड कुछ राशि भी दें जिसे बच्चों के माता-पिता ने लेने से मना कर दिया था। शास्त्री जी ने आज के दिन को एक गांव के काले दिन के रूप में परिभाषित किया था और झंडा लहराने से साफ मना कर दिया था। लोगों ने इसका भी विरोध किया था परन्तु उन्होंने साफ कर दिया कि इस घटना को देखते हुए स्कूल में कोई भी कार्यक्रम नहीं होगा। यदि पंचायत या लोग चाहते हैं तो वे किसी दूसरे स्कूल या जगह पर आयोजित कर सकते हैं। इस निर्णय के आगे किसी का कोई वश नहीं चला था।

धीरे-धीरे स्कूल प्रांगण से लोग जाने लगे थे। बच्चे भी बिना आजादी का जश्न मनाए खाली हाथ घर लौट आए। इस घटना ने जैसे स्कूल और पूरे गांव में मातम का जैसा माहौल बना दिया था। तरह-तरह की बातें और अलग-अलग प्रतिक्रियाएं करते-देते लोग अपने-अपने घरों को निकल लिए थे। किसी का भी मन नहीं था कि किसी पाठशाला में अब पन्द्रह अगस्त का कोई आयोजन हो। ...परन्तु कुछ लोग इस मुद्दे को जानबूझकर भड़काने और राजनीतिक लाभ अर्जित करने की फिराक में थे।

■

स्कूल में अब शास्त्री और बच्चों के परिवार वाले शेष रह गए थे। हालांकि सबकुछ शांतिपूर्वक निपट गया था परन्तु शास्त्री जी का गुस्सा अभी भी शांत नहीं हुआ था। स्कूल से अन्य मास्टर भी निकल लिए थे। केवल चपड़ासी ही रूका हुआ था जो हमेशा उनके बाद स्कूल बंद करके जाता था। शास्त्री जी को पता नहीं क्या सूझा। उन्होंने चपड़ासी को पुकारा और अपने कमरे की ओर इशारा करते हुए कहा कि नई किताबों के जो बंडल पड़े हैं उन्हें बाहर ले आए। ये किताबें बदले हुए पाठ्यक्रमों की थी। उसकी समझ में कुछ नहीं आया। आदेशों का पालन करते हुए वह उन्हें बाहर ले आया। शास्त्री जी ने उन्हें बीच मैदान में रखने को कहा और उसने वैसा ही किया। शास्त्री जी के दराज में नए सर्कुलरों की एक फाइल भी थी जिसे भी उन्होंने मंगवा कर उसी ढेर के ऊपर रखने को कहा। इसके बाद चपड़ासी से मिट्टी के तेल की गेलन मंगवाई। इस तेल का प्रयोग रसोईया दिन के भोजन के लिए आग जलाने में किया करता था।

किसी की कुछ समझ नहीं आ रहा था कि शास्त्री जी क्या कर रहे हैं ? शास्त्री जी जैसे ही गेलन उठाकर किताबों के बंडलों की ओर बढ़े, दोनों बच्चे बदरू और आलम उनके पीछे-पीछे हो लिए। चपड़ासी और बच्चों के परिवार वाले दूर से इस दृश्य को देख रहे थे। शास्त्री जी ने मिट्टी के तेल की पूरी गेलन बंडलों पर छिड़का कर उसे भी वहीं फैंक दिया। फिर चपड़ासी को आवाज लगाकर माचिस मांगी। उसने जैसे ही माचिस दी शास्त्री ने तिल्ली निकाल कर जलानी चाही तो नजर दोनों बच्चों के मुंडे सिर और चोटी पर ठहर गई। बच्चे एकटक शास्त्री को देख रहे थे और उनकी आंखों में आज भी वही अनुतरित प्रश्न कौंध रहा था जिसे केवल व केवल शास्त्री वेदराम सुन सकते थे।

उन्होंने माचिस की तिल्ली जलाई और किताबों के ढेर पर फैंक दी। आग का भभका काले धुंए के साथ आसमान की ओर ऐसे उठा मानो उसे जला कर भस्म कर देगा। फिर फुर्ती से मुड़े और अपने कमरे से अपना झोला उठा कर जाने लगे। चपड़ासी और बच्चों के परिवार ने जब उनकी तरफ देखा तो लगा कि मैदान से ज्यादा आग तो उनकी आंखों में जल रही है। बच्चे अभी भी उसी प्रश्न के साथ एक किनारे खड़े थे।

'शास्त्री के कानों में फिर वही प्रश्न गूंजा,

गुरूजी! गुरू जी! हिन्दू क्या होता है...?'

उनके पावं रूक गए। पीछे मुड़े तो देखा बदरू और आलम खड़े थे। एक मन किया कि कमरे से शीशा मंगवा कर उन दोनों को उनकी ही शक्लें दिखाएं और कहें कि ये होता है पर उन्होंने अपने को संयत कर लिया। एक नजर आग की लपटों की ओर दी और सीधी उंगली उस पर तान दी, जैसे कह रहे हो कि यही होता है ... और चुपचाप गेट से बाहर निकल लिए।

दोनों बच्चे, उनका परिवार और चपड़ासी स्तब्ध खड़े एकटक भभकती आग को देख रहे थे।

सम्पर्क-ओम भवन, मोरले बैंक इस्टेट, निगम विहार, शिमला-171002 हि.प्र., मो. 98165 66611

●

कहानी

ले परधान बीड़ी जला

□ हरभगवान चावला

गांव के लगभग मध्य में बने मकान के सामने वाले चबूतरे पर चीकट तहमद-कमीज धारण किए 'परधान' अक्सर बैठा रहता। उसके पैरों की जूती कभी साबुत नहीं होती थी, एड़ी को ढकने वाला पीछे का हिस्सा तल्ले के ऊपरी हिस्से के साथ यूं चिपका रहता जैसे किसी ट्रक के नीचे कुचले जाने वाले कुत्ते के लोथड़े सड़क से चिपक जाते हैं। मुख्य गली थी, लोगों का आवागमन लगातार बना रहता था। परधान हर आने-जाने वाले से 'राम-राम' बोलता और जवाब मिलते ही कहता, 'हिक बीड़ी ता पिला...।' कोई उसे बीड़ी देता, कोई नहीं देता। लोग जानते थे कि उसका राम-राम बोलना बीड़ी मांगने की भूमिका ही है। इसलिए कुछ लोग उसकी राम-राम का जवाब देने की बजाय सीधे ही बंडल से बीड़ी निकालने लगते, कुछ ऐसे भी होते जो बिना जवाब दिए और बिना उसे देखे अपनी राह चले जाते। जब ऐसा होता तो वह पीछे से आवाज़ लगाता,'ओए, राम-राम वी नईं बोलदा, वाह भई वाह...!' अपनी राह जाता आदमी पीछे देखे बिना ही कह देता,'आज बीड़ी नहीं है परधान।'

गांव के पंद्रह-बीस आदमी उसे बीड़ी के लिए बहुत परेशान करते थे। वे जेब से बीड़ी निकालते, उसकी तरफ बढ़ाते, पकड़ने लगता तो हाथ खींच लेते। कभी बीड़ी में पटाखे का बारूद भर देते, बारूद तड़-तड़कर जलता तो तालियां पीटकर हँसते। कभी उसे बीड़ी दिखाते हुए कुछ दूर तक ऐसे ले जाते जैसे रोटी का टुकड़ा दिखाते हुए कुत्ते को ले जाया जाता है। परधान दीन हो आता,'दे यार, ना तंग कर।' उन्हें दया आ जाती तो बीड़ी दे देते, नहीं तो परधान के उचककर पकड़ने से ठीक पहले बीड़ी तोड़ डालते। वह गुस्से में गालियां बकने लगता,'मसखरी करेंदा हे भनत्तरीचोद...।' अक्सर लोग हंसते रहते पर दो-चार बार ऐसा भी हुआ कि सामने वाले ने हाथ छोड़ दिया। जिस दिन ऐसा होता, परधान सारा दिन गालियां बकता रहता और उसकी घरवाली अपने हाथ को लानत की मुद्रा में तानकर उसे ही 'पलूते' निकालती रहती,''वे मोया, मर क्यूँ नी वैंदा, लोकां दियां गालियां खाने, मार खाने, तैकू शरम नईं आंदी, ओ रब हा...कडण ए मरसी ते कडण सोने दा सेझ उभरसी।'' (मर क्यों नहीं जाता, लोगों की गालियां सुनता है, मार खाता है, तुझे शर्म नहीं आती, हे भगवान, कब ये मरेगा, कब सुनहरी सुबह उगेगी)। फिर परधान की गालियों की बंदूक का रुख़ उसकी तरफ़ हो जाता। वह अपनी पत्नी को पीटता जाता और ईश्वर से जल्दी ही सोने में मढ़ा दिन उगाने की गुहार लगाता, जिसे जाहिर है उसकी पत्नी की मृत्यु पर ही उगना था। भद्दी गालियों और एक दूसरे को दिए जाने वाले शापों में पूरा दिन बीत जाता। अगले दिन से परधान की पुरानी दिनचर्या शुरू हो जाती।

परधान शराब का भी शौकीन था पर शराब पर भी वह जेब से पैसे खर्च नहीं कर सकता था। बीड़ी या शराब के लिए उसे कोई कहीं भी ले जाए, वह तैयार रहता था। असल में वह गांव-भर के लिए मनोरंजन का सामान था और मनोरंजन के लिए दो-चार बीड़ियां या थोड़ी शराब कोई ज़्यादा कीमत नहीं थी। गांव का पूर्व सरपंच जो तबीयत से घुमक्कड़ था, कई बार उसे अपने साथ घुमाने ले गया था। वे दिन परधान के लिए बड़े अच्छे दिन होते थे। पूर्व सरपंच स्वभाव से दयालु था, उसके लिए परधान मनोरंजन का साधन मात्र नहीं था; बल्कि वह उसके प्रति एक आत्मीयतापूर्ण लगाव भी महसूस करता था। उसकी संगति में परधान को कभी बीड़ी-शराब की कमी नहीं आई। उम्र और घर की जिम्मेदारियां बढ़ने के कारण अब उसने घूमना लगभग बंद कर दिया था, फिर भी गली से गुजरते हुए वह परधान को बिना तंग किए बीड़ी जरूर पिलाकर जाया करता था। एक और आदमी था सेवाराम जो अब अपने बच्चों के साथ शहर में रहता था। जमीन की देखभाल के लिए महीने-बीस दिन में एकाध बार गांव आता था। वह जब भी आता, परधान को दो-चार पैग शराब मिलती और बहुत सारी बीड़ियां। गांव के ये दो आदमी ऐसे थे, जिन्हें परधान बहुत पसंद करता था।

परधान सारा दिन चबूतरे पर ही नहीं बैठा रहता था। वह अपनी जूती चटखाता हुआ गांव में निकल जाता और जब लौटता तो रस्सियों के टुकड़े, टूटी-फूटी ईंटें, गत्ते के डिब्बे यानी वह सारा सामान गलियों से चुन लाता जो लोगों के लिए बेकार होता था। सत्तर-पचहत्तर साल का परधान गरीब नहीं था। उसके परिवार के पास पचास एकड़ ज़मीन थी; पर लोग कहते हैं, हर आदमी की किस्मत में सुख भोगना नहीं लिखा होता, परधान की किस्मत में भी नहीं लिखा है। उसका बेटा जयकिशन इस समय गांव का पंच था। थोड़ी दूरी पर उसकी शानदार कोठी थी, आने-जाने के लिए उसने जीप रखी हुई थी। उसे अपने बाप की हरकतों से सख्त चिढ़ थी और वह अपने बाप को कलंक की तरह ढो रहा था। पंच बनने के बाद उसने एक ट्रॉली ईंटों के टुकड़े परधान के घर से उठवाकर निर्माणाधीन पशु अस्पताल की नींव में डलवाए थे। कितनी ही बार वह अपने बाप को बीड़ियों के बंडलों के पुड़े, अंग्रेजी शराब की बोतलें, नए कपड़े, नई जुतियां लाकर दे चुका था पर वह हमेशा उन्हें वापस कर देता। पैसा खर्च होते देख उसका दिल कटता था। पंच बेटे के लिए परधान शर्मिंदगी का कारण था। वह कितनी बार लोगों से प्रार्थना कर चुका था कि इसे बीड़ी मत दो, इससे बात मत करो, पर लोग इतने सस्ते मनोरंजन को छोड़ देने के लिए तैयार नहीं थे।

...गर्मियों के दिन थे, शाम का समय। परधान बाहर चबूतरे पर बैठा था। उसके

घर के सामने साहबराम का घर था। साहबराम के बेटे ऊंटगाड़ी में खलिहान से सरसों भर कर लाए थे। गली में खड़ी गाड़ी में जुता ऊंट सामने रखे 'नीरे' में मुँह मार रहा था। साहबराम के परिवार के लोग तसलों और बाल्टियों से सरसों घर में ढो रहे थे। गाड़ी के पहियों के आगे एक-एक साबुत ईंट रखी हुई थी कि गाड़ी खिसके नहीं। थोड़ी देर पहले पूर्व सरपंच परधान को बीड़ी जलाकर दे गया था। परधान बीड़ी को दो उंगलियों के बीच दबाकर, मुट्ठी बंद किए कश पर कश ले रहा था, पर धुएं को भेदती उसकी आंखें उन साबुत ईंटों पर टिकी थीं। जब बीड़ी उंगलियों में दबाने लायक नहीं रही तो उसने बीड़ी फेंक दी। पल भर कुछ सोचता बैठा रहा, फिर उठा और गाड़ी के टायर के सामने लगी ईंट खींच ली। वहां ज़मीन नीची थी, ईंट खिसकते ही गाड़ी फिसल गई। बेखबर ऊंट गाड़ी का झटका संभाल नहीं पाया और गिरकर टूट गया, सरसों गली की मिट्टी में बिखर गई। देखते ही देखते साहबराम के बेटों ने परधान को लाठियों से मार-मारकर लहूलुहान कर दिया। लाठियों का वार रोकने की कोशिश में उसके एक हाथ की उंगली टूट गई। आक्रमण जब रुका तो परधान ने पाया कि एकत्र हो गए लोगों की भीड़ में उसका पंच बेटा भी है। उसके तेवर देखकर परधान को लगा कि वह भी उसे मारेगा। उसका संदेह सही साबित हुआ। उसके बेटे ने साहबराम के बेटे से लाठी छीनी और अपने बाप की पीठ पर दे मारी। परधान रोया नहीं, बल्कि एक अपराधबोध से भर गया। लोगों ने पंच के हाथ से लाठी छीन ली। परधान ने अपने बेटे की आंखों में आंसू देखे तो सिसकने लगा। उसी समय परधान के पंच बेटे ने सरसों और ऊंट के नुक्सान के बदले पचास हजार रुपये देने की हामी भरी। चार दिन तक परधान को शहर के अस्पताल में रहना पड़ा। दो महीने तक उसकी बीवी उसके जख्मों पर मरहम लगाती रही और उसके मरने की दुआ मांगती रही। जख्मों के ठीक होने के बाद भी परधान पहले की तरह हर वक्त चबूतरे पर बैठा नहीं दिखता। जहां पहले उसके बारह-चौदह घंटे चबूतरे पर कटते थे, अब बमुश्किल घंटा-दो घंटे वह चबूतरे पर आता। गली में अब एक खालीपन था जो लोगों को खलने लगा था। लोग अब अक्सर उसे घर से बुला लेते। कई बार वह घर से बाहर आता तो कई बार उसकी बीवी की गालियां। परधान अब आते ही लोगों से बीड़ी नहीं मांगता था बल्कि वह लोगों को पहले बैठने के लिए कहता और उम्मीद करता कि जब सामने वाला खुद बीड़ी पिएगा तो उसे भी पिलाएगा, अक्सर यही होता भी। गांव की गलियों से रस्सियां, ईंटें आदि बटोरना उसने छोड़ दिया था।

...फागुन का महीना था। एक रात आठ-साढ़े आठ बजे दो आदमी परधान

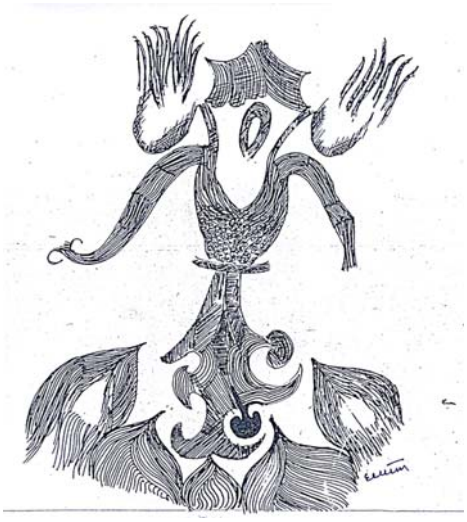

को सँभाले हुए पंच की कोठी में लाए। उसके माथे पर खून छलक रहा था और वह कुछ बड़बड़ा रहा था। उन लोगों ने पंच को बताया कि परधान उनकी गली में गिरा पड़ा था, किसी ईंट से ठोकर खा गया होगा। आज सेवाराम गांव में आया हुआ है, शायद उसी के पास पैग-वैग लेने गया होगा। सुनते ही बेटा तैश में आ गया और बाप को कंधों से पकड़ झिंझोड़ता हुआ चिल्लाया, 'शरम आंदी हे तैकू अब्बा...! रात दे टैम शराब वास्ते मरण टोर पियें। अखां तू दिसदा नईं ता जरूरी हे घरू निकलणां...मैं तैकू मना कीता हाई ना घरू निकलण वास्ते, वत क्यूं गियों तू?' (शर्म आती है तुझे अब्बा ! रात के समय शराब के लिए मरने निकल पड़ा तू, आंखों से दिखता नहीं तो घर से निकलना ज़रूरी है क्या...मैंने तुझे घर से निकलने के लिए मना किया था, फिर क्यों गया तू?) यह इल्ज़ाम सुनकर परधान तिलमिला गया। चोट का दर्द भूल करुण स्वर में बोला,'ओ भलेमाणसा, मैं शराब पीवण कोयना गिया हामी ... मैकू ता सेवाराम दे आए दा पता ही कैनी...मैं ता श्रीचंद दे घर वैंदा पिया हामी...भिरा हूंदा ओमी जो मर गिये शोदा, जुआन मौत हे, मैडा फर्ज नी बणदा वंजण दा ?' (ओ भलेमानस, मैं शराब पीने नहीं गया था...मुझे तो सेवाराम के आने का पता ही नहीं... मैं तो श्रीचंद के घर जा रहा था...उसका भाई ओमी जो मर गया है बेचारा, जवान मौत है, मेरा फर्ज नहीं बनता क्या जाने का ?)

'मैं आपे निभा लैसां फर्ज। चल घर, होण जे तू घरू निकला ना ता चंगा कोयना होसी।' (फर्ज मैं अपने आप निभा लूंगा, घर चल, अब जो तू घर से निकला तो ठीक नहीं होगा) बेटा उसे लगभग धकेलता हुआ उसके घर छोड़ आया।

अब परधान घर में कैद था। कोई बुलाता तो भी बाहर नहीं जाता। मन करता तो कुछ मिनटों के लिए चबूतरे पर आता, इधर-उधर देखता, फिर घर लौट जाता। बीड़ी की अब उसे तलब ही नहीं होती थी। कभी-कभी हुक्का भर लेता तो कभी पत्नी से लड़ लेता। पति-पत्नी एक-दूसरे से व्यर्थ में ही खीझे रहते। पत्नी जब कभी बेटे के घर चली जाती तो उसके लौटने पर परधान के मुंह से गालियां चिंगारियों की तरह फूटने लगतीं। वह घर के कच्चे आंगन में लगातार थूकता जाता और दांत पीसता जाता। दोनों ही एक-दूसरे को कोसते और सोने की सुबह के उगने की दुआ मांगते...और फिर एक दिन वह सुबह उगी। परधान की पत्नी परलोक सिधार गई। जिस सोने की सुबह की कामना परधान हमेशा करता रहा था, उस सुबह ने उसकी जिंदगी में ऐसा अंधेरा भर दिया कि अब उसे कोई रास्ता दिखाई नहीं देता था। वह चारपाई पर अकेला पड़ा रहता। उसे बार-बार और जगह-जगह अपनी लड़ाकी पत्नी दिखती, उसे उसके 'पलूते' याद आते। कोई साठ बरस का उनका साथ रहा था। परधान का जन्म तत्कालीन पाकिस्तान के

मुल्तान जिले के दुनियापुर गांव में हुआ था। उसके बाप के पास पचास एकड़ बहुत उपजाऊ जमीन थी। उर्दू की दो जमातें दीवानचंद (परधान का यही असली नाम था) पढ़ा था, फिर खेती के काम में ही लग गया था। उसके खेत के साथ अकरम के खेत लगते थे। उनके पास सात एकड़ जमीन थी, उसके बाप ने खेत में ही घर बना रखा था। दीवानचंद अक्सर अकरम के घर चला जाता। अकरम उसका हमउम्र था। वह और उसका बाप दोनों हिन्दू देवी-देवताओं की मूर्तियां बनाते और बेचते थे। उनके घर का आंगन मूर्तियों से भरा रहता। बहुत बार वह भी इस काम में अकरम का हाथ बंटाता। उसे इस काम में बहुत मजा आता। वह चाहता था कि वह भी मूर्तियां बनाकर बेचे पर उसके पिता ने उसकी इस इच्छा पर उसे बहुत डांट पिलाई थी। पिता इलाके के प्रतिष्ठित व्यक्ति थे और यह काम उनकी प्रतिष्ठा के अनुकूल नहीं था। अपनी इच्छा तो वह पूरी नहीं कर पाया पर अकरम उसका बहुत गहरा दोस्त बन गया। दीवानचंद चौदह का था जब उसकी बारात भोभतपुर में गई थी। अकरम भी बारात में गया था...परधान को अपनी पत्नी के साथ अकरम भी बेतरह याद आया। जब मुल्क बँटा, परधान सत्रह बरस का था। सब तरफ मारकाट शुरू हो गई थी। आसपास के गांवों से रोज 'हमले' की खबरें आतीं। हिंदुओं के घरों से माल-असबाब, ढोर-डंगर आदि सरेआम लूटे जा रहे थे। असली आफत तो औरतों पर टूटी थी। जगह-जगह औरतें इज्जत बचाने के लिए नदियों में कूद रही थीं या अपने आप को आग के हवाले कर रही थीं। परधान के गांव के सारे हिन्दू मियां इलाहीबख्श की हवेली में रहने के लिए आ गए थे। इलाहीबख्श ने उनके साथ वादा किया था कि उसके जिंदा रहते हिंदुओं का कोई कुछ नहीं बिगाड़ पाएगा। इलाहीबख्श इलाके का बड़ा ज़मींदार था। उसके चार बंदूकधारी कारिंदे हर वक्त पहरे पर तैनात रहते, पर वे लोग फिर भी ख़ौफज़दा रहते। उन्हें लगता, हमलावर दस्ते किसी दिन मियां इलाही बख्श को भी मार डालेंगे। हवेली के जिस हिस्से में औरतों का बसेरा था, वहां बड़ी मात्रा में मिट्टी का तेल रखा हुआ था ताकि अगर नौबत औरतों की इज्ज़त पर हाथ डालने तक आ पहुंचे तो तुरंत ही इज्ज़त बचाई जा सके। दिन में कई बार कई जत्थे 'अल्लाहो अकबर' के नारे लगाते हुए हवेली के पास से गुजरते। जब भी ऐसा होता, दहशत पसर जाती, औरतें मिट्टी के तेल के गैलन संभालने लगतीं, मर्द लाठियां। ख़बरें पहुंचतीं कि गोरखा और सिख मिलिट्री के संरक्षण में हिंदुओं के बहुत से काफिले हिंदुस्तान के लिए रवाना हो चुके हैं। उस गांव के लोगों को भी मिलिट्री का इंतजार था।

...और फिर एक दिन उनके गांव के लोगों का काफिला भी हिंदुस्तान के लिए निकला। काफिला चार बंदूकधारी सिक्ख फौजियों के संरक्षण में था। उस काफिले को मैलसी पहुंचना था और वहां से लोगों को रेलगाड़ियों में लदकर हिंदुस्तान जाना था। काफिले में शामिल सब लोग लुटे-पिटे भिखारियों जैसे लग रहे थे, जमीन, धन-दौलत, दोस्त सब पीछे छूट रहे थे...पर अब दोस्त कहां बचे थे...जिन मुसलमान दोस्तों पर लोगों को नाज था, वही कत्लोगारत और लूटपाट का कोहराम मचाने वाले दस्तों में शामिल हो गए थे। पता नहीं कभी लौट पाना संभव होगा कि नहीं...दीवान सोचता था और आंखें मसलता था। रास्ता अकरम के खेत के पास से होकर जाता था। काफिला वहां से गुजर रहा था कि दीवान के साथ सबने एक चीखती आवाज सुनी-'हाय ओए दीवान आं....तैडे बिना कीवें जीसां...मैकू छोड़ के ना वंज ओए...'-अकरम दौड़ता हुआ आकर दीवान के गले लग गया। फौजियों ने उसे झट से उससे अलग किया। काफिला चलता रहा ... अकरम की हूक भरी रुलाई की डोर पीछे मुड़-मुड़कर देखतीं दीवान की आंखों की पतंग को कंपाती रही।

...अकरम की वह हूक सदा के लिए परधान के दिल से चिपक गई है। अब वह अकेला है तो उसे सब याद आते हैं। मैलसी के रास्ते पर काफिले पर हुए हमले में ज़्यादातर लोग मारे गए थे, परधान के दो चाचा, दो बुआएं, मां-बाप तथा और भी कितने लोग...रास्ते में यह भी सुना कि मियां इलाहीबख्श को भी हिंदुओं को शरण देने के गुनाह के बदले हमलावर दस्तों ने आग में जिंदा जला डाला है... पर किसी के पास किसी के लिए रो लेने तक का अवकाश नहीं था। सब अपनी जान बचाने के लिए भाग रहे थे।

यहां हिंदुस्तान में आकर परधान ने और सब लोगों की तरह कितने सालों तक मजदूरी की। अकरम का सिखाया हुनर भी उसके काम आया। मूर्ति बनाकर बेचने का काम जिस बाप की प्रतिष्ठा के लिए कलंक था, वह बाप तो रहा नहीं और भूखे पेट के सामने प्रतिष्ठा की कोई बिसात नहीं है। परधान ने दिल्ली शहर में मूर्तियां बनाकर बेचनी शुरू की। आठ-नौ साल बाद परधान को जमीन के बदले जमीन अलॉट हुई, वो भी एक ऐसे इलाके के गांव में जिसके बारे में कहा जाता था-जमीन एकसार नहीं, पेड़ फलदार नहीं। सारी जमीन झाड़ियों से भरी पड़ी थी, कदम-कदम पर सांप-गोह का खतरा था। शरणार्थी शब्द का प्रयोग उनके लिए स्थानीय लोग गाली की तरह करते थे। परधान को लगता कि उन लोगों का जन्म उजड़ने के लिए ही हुआ है और वे बार-बार उजड़ते ही रहेंगे। हर समय मुंह बाए खड़ी भूख और भविष्य में फिर से उजड़ जाने की आशंका ने उसे इस हास्यास्पद हद तक कंजूस बना दिया। अब उसके पास सब कुछ है। खेतों में फसल अच्छी होती है, बेटा पंच हो गया है, वह ख़ुद दो बार को-ऑपरेटिव सोसायटी का प्रधान रह चुका है (इसी कारण से वह परधान के नाम से जाना जाता है, नई पीढ़ी तो उसका असली नाम तक नहीं जानती) पर वह अब भी स्वयं को असुरक्षित महसूस करता है। उन लोगों को आज भी जिस नजर से देखा जाता है, वह नजर उसमें भय पैदा करती है।

...परधान आंगन में चारपाई पर लेटा हुआ था। उसे लगा आधी रात हो गई है पर नींद अब भी उसकी आंखों से घबराकर कहीं छुपी बैठी है। अभी-अभी वह अपनी यादों में जिंदगी के साठ बरस जी आया है ... पत्नी की मौत के बाद बेटे ने उसे कोठी में आकर रहने के लिए कहा था पर उसी ने इन्कार कर दिया, आजकल पोता उसके लिए खाना दे जाता है। आज रात का खाना कमरे में ज्यों का त्यों रखा है, हर रोज खाने को अब मन ही नहीं होता,

बीड़ी पिए तो अरसा हो गया ... और किसी से बात किए ... परधान का मन भर आया...। उसने आंगन की दीवार को देखा ... दो छिपकलियों के अलावा कुछ नजर नहीं आया। उसे लगा, दुनिया में अब सिर्फ दीवारें और उनपर रेंगती छिपकलियां ही रह गई हैं, इन्सान कहीं नहीं बचे हैं। उसे अपने इन्सान होने पर भी शक होने लगा...वह इन्सान होता तो क्या उसे इतना भी मालूम न होता कि गांव में क्या हो रहा है... अनायास ही उसकी रुलाई फूट पड़ी...चादर में मुंह छुपाकर हिचकियां लेता रहा ... कभी-कभी पड़ोस के मकान में रहने वाला रोशन हुक्का लेकर उसके पास आ बैठता था, गांव की खैर-खबर मिल जाती थी; पर वो भी अब कई दिन से नहीं आया। परधान अधीर हो उठा। उसका मन किसी से बात करने को तरस रहा था पर अब इस वक्त किससे बात करे? आधी रात हो गई होगी ...पर मन नहीं माना ...। वह उठा, धीरे से दरवाजा खोला और रोशन के घर में घुस गया। रोशन के घर में किवाड़ नहीं थे, बस कच्ची दीवार में एक द्वार बना हुआ था। द्वार लांघते ही आंगन था, उस आंगन में बिछी चारपाई पर रोशन सोया हुआ था। वह चारपाई के पायताने बैठ गया और धीरे से पुकारा, ''रोशन...रोशन !'' उसका मन संभावित बातचीत के रस में विभोर था पर रोशन उठ ही नहीं रहा था। परधान बेचैन हो उठा। दो-तीन बार और पुकारा, जब वह नहीं उठा तो उसकी टांगें पकड़कर झिंझोड़ दिया और फिर तो जैसे क़यामत ही आ गई। असल में उस चारपाई पर रोशन नहीं, उसकी पत्नी सोई हुई थी। रोशन तीन दिन से गांव में नहीं था, चारपाई पर आजकल उसकी पत्नी सो रही थी। रोशन की पत्नी ने शोर मचाया तो पड़ोसी जाग गए और फिर लानत, मलानत, गालियों, तानों के बाद अपमानित, प्रताड़ित परधान सिर झुकाए अपना दरवाजा खोलकर भीतर गया और चारपाई पर औंधा होकर रोने लगा।

रोशन के आने के बाद दूसरे दिन शाम को पंचायत भवन में पंचायत जुड़ गई। लगभग पूरा गांव ही वहां मौजूद था। फैसला सरपंच, पंचों और गांव के बुजुर्गों को करना था। रोशन पूरे गुस्से में था। परधान बार-बार पहले अपनी बात सुने जाने की गुहार लगा रहा था और बेटा बार-बार उसे डांटकर चुप रहने का आदेश दे रहा था। सरपंच परधान के बेटे से मुखातिब हुआ,'बोलो मेम्बर साहब, आपके बाप की इस करतूत पर आप क्या कहते हो ?'

'मैं क्या कहूं ...मुझे तो शर्म आती है कि मैं इस आदमी की औलाद हूं ...पंचायत जो फैसला करे, मुझे मंजूर है।'

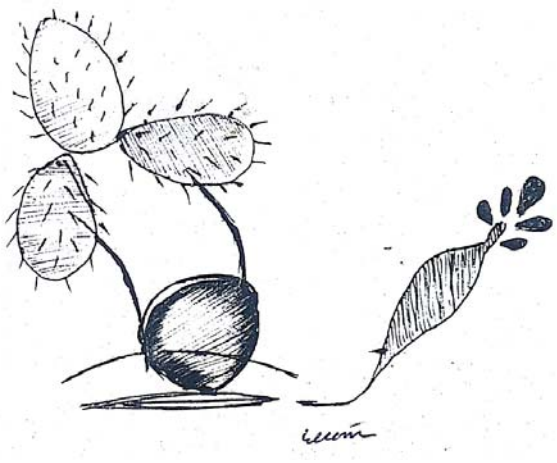

उसका चेहरा अपमान से लाल हो गया था। तभी परधान उठा और अपने हमउम्र बुजुर्गों के पैरों में सिर रख रोने लगा। एकबारगी वहां मौजूद सारे लोग दहल गए। परधान रोते-रोते उठा, सारे लोगों के सामने हाथ जोड़कर बोला, 'हिक वारी मैडी गल सुणो...ओए मैं बुड्ढा ठेरा, इहो जिहा इल्जाम ता ना लाओ, भावें मैडी जान कढ लओ। मैं कल्हा पिया-पिया अक गिया हामी ... मैडा जी कीता मैं रोशन नाल गल करां...मैं हीं वास्ते हूंदे कोल गिया हामी कि भई मैडे नाल गल कर, नईं ता मैं मर वैसां। रोशन उस्से मंजी दे रोज समदा हे। मैकू किहां पता हाई जो अज ऐ कैनी सुत्ता पिया। मैं जूठ नीं बुलेंदा पिया...मैकू मैडे पोत्र दी सौंह...'(एक बार मेरी बात सुनो, ओए मैं बूढ़ा, ऐसा इल्जाम तो न लगाओ, चाहे मेरी जान ले लो। मैं अकेला पड़ा-पड़ा ऊब गया था। मेरा मन किया कि मैं रोशन से बात करूं... इसी कारण मैं उसके पास गया था कि मेरे साथ बात कर, नहीं तो मैं मर जाऊंगा। रोशन उसी चारपाई पर रोज सोता है। मुझे क्या पता कि आज वह नहीं सोया हुआ। मैं झूठ नहीं बोल रहा हूँ, मुझे मेरे बेटे की कसम...) उसने बेटे के सिर पर हाथ रख दिया। तभी उत्तेजित रोशन चिल्लाकर बोला, 'देखो गांव वालो परधान का सांग! तीन-चार साल पहले ये जंगल-पाणी गया तो श्योपत की छोरी के पास सरसों में जा बैठा। तब तो पंचायत ने सोचा कि चलो दीद कमजोर है, नहीं दिखी होगी छोरी, पर तुम सोचो, गर्मियों के दिन ... कौन कपड़ा ओढ़ता है ... इसको यह भी पता नहीं चला कि खाट पर आदमी सो रहा है कि लुगाई... और फिर यह तो बताओ, कौन आधी रात को बात करने के लिए किसी पराए घर में घुसता है ?'

परधान चिल्ला-चिल्लाकर अपने बेकसूर होने की दुहाई देता रहा। उसकी चीख- पुकार के बीच रोशन ने अपना फैसला सुना दिया,'पंचायत जो चाहे फैसला करे, मैं तो परधान को जूतियों का हार पहनाऊंगा। अगर परधान या उसका पंच बेटा इस फैसले से सहमत न हों तो मैं थाने में रपट लिखाऊंगा और परधान को जेल की चक्की पिसवाऊंगा।' पंचायत में हलचल मच गई। सरपंच ने रोशन को इस फैसले पर फिर से सोचने को कहा, परधान के बुढ़ापे का वास्ता दिया, पर रोशन टस से मस न हुआ। पंचायत में मौजूद सब लोग समझ रहे थे कि रोशन जूतियों का हार पहनाने पर क्यों अड़ा है। असल में रोशन का भतीजा अनिल तीन साल पहले एक लड़की के साथ जबरदस्ती के जुर्म में यही सजा भुगत चुका था। तब रोशन ने लड़की के बाप के पैरों में अपनी पगड़ी रख दी थी पर वह उसकी बात नहीं माना था और आज रोशन किसी की बात नहीं मान रहा है, बेशक उस मामले से परधान या उसके बेटे जयकिशन का कोई लेना-देना नहीं था पर लड़की इन्हीं की बिरादरी की थी। झूठा या सच्चा, आज जातीय अपमान

चुकाने का मौका हाथ लग गया है तो वह उसे क्यों छोड़े ?

...जूतियों का हार पहने अपने बाप की कल्पना करके जयकिशन पसीने से नहा गया। उसे लगा वह पत्थर का होता जा रहा है, शरीर का सारा सत निचुड़ रहा है। उसने ठीक अपनी मां की तरह अपने दाएं हाथ की हथेली लानत की मुद्रा में अपने बाप के मुंह पर दे मारी और रोते हुए बोला,'तैं मैकू सारी जिंदगी दी जिल्लत दे दिती हे अब्बा... ! मैं जींदे जी मर गिया हां...।' फिर उसी झटके में अपनी जूती निकालकर रोशन की तरफ बढ़ा दी,'मेरे सिर में मार चाचा, जब तक तेरा गुस्सा ठंडा न हो जाए।' पर रोशन नहीं माना। तब जयकिशन एक झटके से उठा और अपने घर की तरफ दौड़ता चला गया। दो मिनट बाद ही लोगों ने देखा कि वह अपनी बेटी का हाथ पकड़े लगभग घसीटता हुआ पंचायत में पहुंचा और उसे रोशन की तरफ धकेलता हुआ बोला, 'तू इसको ले जा और रात भर अपने पास रख...।' कुछ लोगों की सिसकियां निकल गई, विरोध में एक शोर हवा में तैरने लगा। तभी परधान गरजा-जैसे किसी भारी-भरकम बाज़ ने डैने फड़फड़ाए हों,'तू वंज छोरी घर, सुण रोशन! तू थाणे वैंदा हें ता वंज...आया हे वडा लाटसाब।' (तू जा लड़की घर, सुन रोशन! तुझे थाने जाना है तो जा, आया है बड़ा लाटसाब)।

पंचायत के उखड़ने की संभावना बन गई। उधर, जयकिशन एक पल में सारे भविष्य का नक्शा देख गया। जूतियों की माला का प्रकरण तो पांच मिनट में निपट जाएगा, फिर गांव भर की सहानुभूति भी दिखाई पड़ रही है, शायद मौके पर रोशन का मन बदल जाए पर आज अगर यह थाने चला गया तो मामला पूरी तरह हाथ से निकल जाएगा, इस बुढ़ापे में बाप जेल में रहेगा कैसे? उसने अपने बाप को डांटकर चुप करवा दिया और रोशन से बोला,'तू बोल चाचा, क्या कहता है?' रोशन ने जयकिशन की ओर तर्जनी तान दी,'यह बात ठीक नहीं, तेरी-मेरी छोरी में क्या फर्क है', उसने लड़की को, जो अब तक पत्थर की तरह जड़ हुई खड़ी थी, घर जाने का इशारा करते हुए कहा,'कसूर परधान का है, उसको कल बारह बजे मैं जूतियों का हार पहनाकर बस-अड्डे तक लेकर जाऊंगा।' उसके अड़ियल रवैये को देख जयकिशन ने सर झुका लिया, मानो फैसले को मौन स्वीकृति दी हो। पंचायत उखड़ने लगी, लोग घरों को जाने लगे। ज़्यादातर लोगों की सहानुभूति परधान के साथ थी, पर हालात ऐसे बन गए थे कि कोई भी रोशन को कुछ कह पाने की स्थिति में नहीं था। परधान उठा और बांहों को ऐसे झटकाता हुआ चला जैसे वे बांहें नहीं, जलती लकड़ियां हों, जिनसे वह सारे गांव को आग लगाने जा रहा हो। जयकिशन कोठी में लौट आया। वह भयानक अन्तर्द्वन्द्व में था। क्या उसका बाप सचमुच ऐसा है...पर जिस प्रखरता से वह अपने ऊपर लगे आरोपों को नकार रहा था, उससे तो ऐसा नहीं लगता। कहीं पंच ने अपनी छवि को उज्ज्वल रखने के लिए बाप को बलि तो नहीं चढ़ा दिया...जयकिशन को कुछ समझ में नहीं आ रहा था...उसका दिल कहता था उसके बाप के साथ ज्यादती होने जा रही है, पर वह करे तो क्या करे। जयकिशन की आंखों के सामने कल का संभावित दृश्य आ रहा था। उसकी आंखें बह रही थीं। इस परेशानी में भी कब खाट पर पड़े-पड़े नींद आ गई, उसे पता ही नहीं चला। रात भर सपने में जूतियों की माला पहने रोता बाप ठहरा रहा। सुबह वह उठा तो मन बहुत भारी था। बाप जैसा भी है, है तो बाप ही। आज से पहले कभी बाप के लिए इतनी तड़प नहीं जागी, आज उसका मन बाप से मिलने को कर रहा है। उसने पत्नी को रोटी बनाने के लिए कहा। आज बेटे की बजाय वह खुद बाप को रोटी देने जाना चाहता था। अभी वह सब सोच ही रहा था कि सेवाराम ने आवाज लगाई और बिना उत्तर का इंतजार किए बैठक में घुस आया। जयकिशन ने उसके पांव छूते हुए पूछा,'आप कब आए चाचा ?'

'तू मेरी छोड़, पहली बस आठ बजे आ जाती है, अब आठ पैंतीस हो रहे हैं। मैं ये सुन क्या रहा हूं? तू पंच बन गया तो क्या भगवान हो गया। बाप तो वो तेरा है, पर मैं उसको तेरे से ज्यादा जानता हूं। वो कंजूस व लालची चाहे जितना हो, इतना कमीना नहीं है। मुझे तो हैरानी है कि तूने इस फैसले को मान कैसे लिया। रोशन थाने जाता है तो हज़ार बार जाए पर ये सब...नहीं...नहीं...' सेवाराम का सिर जोर-जोर से 'न' में हिल रहा था। जयकिशन हल्का हो आया, लगा जैसे टीसता फोड़ा फूट गया हो।

थोड़ी देर बाद सेवाराम और जयकिशन ने परधान के मकान में प्रवेश किया। दरवाजा अंदर से खुला ही था। सामने आंगन में चारपाई थी-खाली। जयकिशन ने सोचा शायद बाप शौच आदि के लिए कुई में गया हो पर सामने कुई का दरवाजा खुला पड़ा था और उसमें कोई नहीं था। जयकिशन ने बैठक में देखा, वहां भी कोई नहीं था। उसका मन हिचकोले खाने लगा...कहीं उसका बाप रात को कहीं भाग तो नहीं गया है। तभी सेवाराम ने उसका ध्यान एक तरफ खुदे हुए आंगन की ओर खींचा। उसने देखा-आंगन खुदने से वहां एक गड्ढा हो गया है पर उस गड्ढे की मिट्टी...। दोनों एक साथ लगभग दौड़ते हुए भीतर के कमरे में घुसे। उन्होंने देखा-परधान फर्श पर चित्त पड़ा है ...उसके पास मिट्टी की तीन गीली मूर्तियां बनी रखी हैं। इनमें से एक मूर्ति एक औरत की थी जिसकी शक्ल जयकिशन की मां से मिलती थी। परधान का कलाई के पास से मुड़ा दायां हाथ जैसे उसे घेरे में लिए हुए था। दो मूर्तियां पुरुषों की थीं। इन दोनों मूर्तियों के गले में एक-एक जूती का हार डला हुआ था। ये वही जीर्ण-शीर्ण जूतियां थीं जो परधान पहना करता था। इनमें से एक मूर्ति तो निश्चय ही रोशन की होगी-जयकिशन ने सोचा...और दूसरी...उसकी है या...उसने सोचा और कांप गया।

'अब्बा...!' जयकिशन ने पुकारा और परधान की बांह पकड़कर उठाने लगा। बांह वापस जमीन पर जा लुढ़की। उसकी चीख निकल गई। उधर सेवाराम ने एक बीड़ी निकालकर परधान के मरे हुए होठों के बीच फंसा दी। माचिस से तीली जलाई। तीली की लौ तथा सेवाराम के हाथ कांपते हुए बीड़ी तक पहुंचे। उसने लौ बीड़ी के पास ले जाते हुए कहा, 'ले परधान बीड़ी जला...!'

- 406, सेक्टर-20, हुडा, सिरसा-125055 (हरियाणा)

मो. 09354545440

माई डीयर डैडी

□ विपिन चौधरी

बचपन पूरे जीवन का माई-बाप होता है। बचपन के बाद अपना कद निकालता हुआ जीवन इसी बचपन की जुबान से ही बोलता-बतियाता है। इसके बावजूद इस नटखट बचपन का कोई भरोसा भी नहीं कि कब वह कोई खुराफ़ात कर डाले और कब सिर चढ़ कर बोलने लगे। बुजुर्ग इंसान भी अपने भीतर अपने बचपन को कंगारू के बच्चे की तरह ही समेटे रहता है और बचपन झट उसकी गोद से निकलकर उन्हीं गलियों में लौट जाता है जहां वह अपने दोस्तों के साथ खेल में सारी दुनिया को भुलाए बैठा रहता था और घर-वापसी की आवाज लगाती हुई मां की आवाज उसे किसी दूसरे लोक से आती हुई अजनबी सी आवाज़ लगती थी जिसे वह हर हाल में अनसुना कर देता था मगर घर तो उसे लौटना ही होता था।

मेरा बचपन घुन्ना बचपन था। चुप्पी मुझे मां से विरासत में मिली, वे बेहद कम बोलती और पिता? पिता के बोलों से मेरा कभी परिचय ही नहीं हो पाया, मेरे लिए वे सदा अजनबी पिता ही रहे, घर को भी उनकी आदत नहीं पड़ी थी यही कारण था कि घर को उनके रहने या न रहने से कभी कोई फर्क नहीं पड़ा, वह पिता के बिना भी खुश था। घर को मेरे और मां के नाज़-नखरों से ही आबाद रहने की लत लगी हुई थी। बहुत बचपन में मेरे घर के चारों कोनों में जब चुप्पी गूंजने लगती कई बार तो इतनी अधिक की उस गूंज से पीछा छुड़ाने के लिए मैं भाग कर मां के आंचल की पनाह ले लेता था। मां अक्सर गुनगुनाया करती थी मगर हैरानी की यह बात थी उनकी गुनगुनाहट का एक भी लय मुझ तक नहीं पहुँच पाती थी। मुझे लगता था शो विंडो की गुंगी गुडिया की तरह मां के सिर्फ होठ ही हिलते दिखते हैं कोई आवाज नहीं आती फिर भी पता नहीं क्यों मुझे अक्सर लगता था कि मां का मन बहुत बातूनी है जो भीतर ही भीतर खूब बातें करता है।

तब मैं बहुत छोटा था, इतना छोटा कि मां जो बताए वो ही जीवन, दोस्त जो कहें वही सच और टीचर जो दिखाए वही

दुनिया।

उस बचपन के कई हिस्से थे और लगभग सभी हिस्सों में मां की चहलकदमी मौजूद रहा करती थी। रात को मैं मां से कहानी की जिद करता, मां का ठहर-ठहर कर बोलना परियों का बोलना लगता, मां मेरे सिर को सहलाती जाती और धीरे-धीरे कहानी सुनाती जाती और मैं उनके कहे को देर तक अपने भीतर लपेटता रहता।

स्कूल में जब मेरे सहपाठी अपने-अपने पिताओं की हिम्मत भरे किस्से सुनाते, जिनमें उन शोहदों का जिक्र भी होता जिनको मां अपनी स्कूटी रोक कर झाड लगाती और फिर जब मां स्कूटी स्टार्ट करती तो उनसे लिपटा हुआ मैं आनंद से भर जाता। कभी फयूज उड़ जाने पर मां एक पतला सा तार मीटर में लगा देती और झट से बिजली आ जाती। ऐसे ही ढेरों किस्से मेरी जुबान पर धरे रहते। मां के किस्से सुना कर सबको लाजवाब कर देना मुझे खूब सुहाता और अंत में एक जोश के साथ यह वाक्य जोड़ना न भूलता,

मेरी मम्मी का मुक्का लगा नाज्

जाहिर है तब मेरी मां ही मेरी सुपर हीरो थी। स्कूल इंटरवेल में एक बड़ा सा घेरा बना कर खड़े मेरे दोस्त मेरे चेहरे की तरफ मुहं बाए एकटक देखते रहते क्योंकि उनकी मम्मियों का शौर्य तो कभी का पिता की फुंकार के नीचे कहीं दम तोड़ चुका होता।

आज मैं तीस बरस का हो चला हूं। मां आज भी मेरे लिए एक स्केल हैं जिसके मैं हर घटना को मापने की कोशिश करता हूं, और इसी तरह से मां के जरिए मैंने अपने जीवन और दुनिया को मापा-परखा है। जब मैं बच्चा था तो उसकी गोदी से एक पल को भी उतरना नहीं चाहता था। मां के बिना मेरा जीना जैसे मुहाल था, सुबह जब वह कालेज जाने को होती तो मैं उसके पांवों से बुरी तरह से लिपट जाया करता।

उन्हीं दिनों के आसपास मां और पिता के बीच अलगाव हो गया था और हम ने पिता के घर को छोड़ कर मामा के घर आ गए थे। फिर किराए का छोटा सा घर लेकर मामा के पड़ोस में ही रहने लगे थे।

मां की दुनिया ने एक बड़ी सी करवट ली थी। अब अकेले ही उसे दुनिया से दो-दो हाथ करने थे। मैं भी बड़ा हो रहा था। मैंने देखा कि समाज के पास किसी

विधवा के दुख के लिए तो कान थे मगर तलाकशुदा स्त्री के नाम पर उसकी जीभ लपलपाने लगती थी। विवाह संस्था पर सिलवटें देख कर समाज झट स्त्री को मुजरिम मानकर उसे कटघरे में खड़ा कर देता था। मेरी मां का बलिदान किसी को दिखाई नहीं दिया। समाज को बच्चों के लिए पिता का नाम चाहिए था, दो पांवों वाला वह पुरुष जिसके मस्तक पर पिता लिखा होता। लेकिन हम पिता के बिना ही अपने पांव जमीन पर जमाते गए और दुनिया हमारे लिए बड़ी होती गई और दुनिया के लिए हम। बावजूद इसके मां और मैंने दुनिया को अपने निजी दायरे में नहीं आने दिया। हम दुनिया की चहलकदमी को दूर से देखते और आनंद लेते कभी खीजते पर उससे कभी हाथ नहीं मिलाते। हम दोनों की दुनिया अपनी अलग राह पर चलती रही।

मां के बगल में मुझे देखकर लोग कहते, बेटा ही बड़ा होकर तुम्हारा सहारा बनेगा, तब मैं जल्दी ही बड़े होने की कामना किया करता। एक बार तो अपने दोस्त के कहने से मैं एक टॉनिक ले आया और चुपके से हर रोज सुबह उसे पीने लगा। मेरे दोस्त के अनुसार उसे हर रोज पीने से बच्चे जल्दी बड़े हो जाते थे।

मैं टीनएज के दौर में प्रवेश कर चुका था। मेरे जीवन का रंग अब गुलाबी होने लगा था। उन दिनों मैं अक्सर सोचता था साहिर लुधियानवी की तरह मैं भी मां के साथ उम्र भर रहूंगा और किसी को हम दोनों के बीच नहीं आने दूंगा। लेकिन वह जीवन ही क्या जो करवट न ले। मेरे जीवन में सुदीप्ति चली आई और मेरी टीनएज वाली सोच पर पलीता लग गया। सच में मुझे लगने लगा कि लोग ठीक ही कहा करते हैं 'मोहब्बत जो न करवाए वहां बेहतर'।

परसों मेरा विवाह है, मेरी शादी में कई अड़चनें आ रही हैं, पहली मेरा सरकारी नौकरी में ना होना, दूसरी सुदीप्ति और मेरे प्रदेश में लंबी दूरी और मां तीसरी पिता का साया मेरे सर पर ना होना। पहली दो चीजों का हल करना मेरे बूते से बाहर की बात है पर तीसरी अड़चन को लेकर कुछ सोचा जा सकता था।

तभी मेरे दिमाग में एक विचार उभरा कुछ सोच कर पिताजी को फोन लगाया। बरसों पहले नोट किया गया उनका फोन नंबर बदल चुका था, तब ध्यान आया अपने बचपन के दोस्त करण को जो डैडी के पड़ोस में ही रहता है। करण से डैडी का फोन नंबर पता करवाया।

पिता शब्द की चाबी ने मेरे भीतर जैसे स्मृतियों का ताला खोल दिया है, अजनबी डैडी की रिश्ते से कई यादें सामने तैरने लगी हैं। कुछ वर्ष पहले जब मैं आठवी कक्षा में था तब डैडी सामने आए थे। उन दिनों हमारी कक्षा के एक धन्ना सेठ के बेटे रमण शेट्टी के दिमाग में कुछ सरसरहाट हुई उसने मुझे और मेरे दोस्त

विनोद पराशर से कहा

'यार मेरे पिताजी का सारा ध्यान पैसा कमाने में हैं वे मुझे बिलकुल प्यार नहीं करते, कुछ ऐसा करो कि वे मेरा ख्याल रखने लगें।'

तीसरे दिन विनोद पराशर अपना धांसू आइडिया लेकर प्रस्तुत था। क्यों न रमण शेट्टी को कहीं छुपा दिया जाये और उसके अपहरण की अफवाह फैला दी जाए। आइडिया सचमुच शानदार था। मैं एक बार तो खुशी से उछला मगर जल्दी ही ठंडा पड़ गया।

'यार आईडिया तो अच्छा है लेकिन रिस्की है'

मगर इसमें काफी एडवैंचर है, यह सोच कर हमने स्कूल से रफूचक्कर होने की योजना बनाई। इस बीच रमण शेट्टी के पिता एक महीने के बिजनेस टूर पर चले गए और हमारी योजना धरी की धरी रह गई। इस बीच एक दिन विनोद को एक खूबसूरत सी जीप चलाने का मन हुआ और उसकी बातों में मैं भी आ गया और हम दोनों ने क्रिकेट-टूर से वापिस आते हुए किसी की पार्क की हुई नई जीप पांच-सात किलोमीटर तक चला कर छोड़ दी, फिर तो हमें ऐसा करने का चस्का लग गया। हम दोनों ने ऐसा कई बार किया। तभी स्कूल के एक बड़े लड़के को हमारी कारगुजारियों की भनक लग गई तब हमें जेल की हवा खानी पड़ी।

फिर जो होना था वह हुआ स्कूल से निकाल दिए गए हम दोनों और पुलिस घर तक पहुंची।

मां ने साफ कह दिया, 'गलती की है तो सजा भी भुगतनी होगी'

मुझे मां के स्वभाव का पता था इस हालात में वह मेरी नहीं हो सकेगी। हमारा पुलिस केस बन गया था। तब मेरी छोटी बहन ने कुछ सोचा और वह डैडी के दफ्तर गई और सारी स्थितियां समझाई। डैडी जेल में आए, वे थोड़े मुलायम दिख रहे थे और मैं उनके सामने शर्मिंदा खड़ा था, उन्होंने मुझसे कुछ नहीं पूछा शायद बचपन की नादानियों के बारे में उन्हें पता था। इस बीच तीन दिन की छुट्टी पड़ गई और हमें जेल में ही रहना पड़ा। पिताजी तीन दिनों तक सौतली मां के हाथों से बना खाना लेकर आते रहे और मैं सिर झुकाए उनसे मिलता रहा।

जेल से निकलने पर वे मुझे घर पहुंचा गए। मां उनके सामने नहीं आई। बहन के बहुत कहने के बाद भी। उसके बाद फिर पिता अपनी दुनिया में लोप हो गए और मैं अपनी।

आज मेरी शादी का दिन है, घर में पंद्रह-बीस रिश्तेदार जमा है। पिता को लेने उनके घर जा रहा हूं। बरसों बाद उन्हें देखकर मैं एकबारगी ठिठक गया हूं। उनके मुहं के सारे दांत निकल गए हैं.पोपले मुहं से वे मुझसे सोफे पर बैठने को कह रहे हैं पर मैं हूं कि उन्हें घूरे ही चला जा रहा हूं।

'नकली दांत परेशान करते हैं इसलिए नहीं लगवाए'। मुझे घूरता देख वे खुद ही बोल पड़ते हैं।

गाड़ी में उन्होंने बताया कि मैंने यही सोचा की तुम अपनी मां की मर्जी के खिलाफ विवाह कर रहे हो इसलिए शायद मेरी मदद की जरूरत है।

मैंने कहा, 'नहीं ऐसा कुछ नहीं है'।

पिताजी ने बैंक की नौकरी से रिटायर होकर सफेद कुर्ता पाजामा पहनना शुरू कर दिया था , वे काफी कमजोर और बीमार से दिख रहे थे।

अपने बेटे-बेटी और पत्नी के बारे में खुद ब खुद बताते जा रहे थे और मैं हां, हूं कर चुपचाप सुनता रहा।

सोचता रहा डैडी मेरे ही शहर में रहते हैं और मेरे लिए वे आज भी वैसे ही अजनबी हैं जैसे बचपन में थे लेकिन आज भी एक दूर का रिश्ता बना हुआ जो मृतप्राय होकर भी उखड़ी-उखड़ी सांसें लेकर उठ खड़ा हो जाता है, जैसे आज यह रिश्ता अपनी पूरी सांस ले कर मेरे बगल में बैठा हुआ है।

अचानक मुझे उड़ता-उड़ता हुआ यह ख्याल आया कि अपने डैडी को उनके अंतिम समय में देख कर मेरी क्या स्थिति होगी? क्या उनकी देह को अग्नि को समर्पित करते हुए मेरा मन विचलित नहीं होगा।

डैडी ने शादी में सारी रस्में अदा की, मां दूर से ही मौसियों और नाना-नानी के साथ बैठी देखती रही।

मैं फेरे ले रहा हूं पर डैडी मेरे मन में करवट ले रहे हैं और हर फेरे पर मेरी नजर उन पर टिक जाती है। कैसे मासूम से बैठे हैं पिता जैसे हमारे रिश्ते में पलीता लगाने में उनका कोई दोष नहीं शायद हो भी या नहीं।

किसी ने क्या खूब कहा है- जीवन एक रंगमंच हैं और हम उसके किरदार। डैडी जीवन रूपी इस जीवन में कभी-कभार आकर चले जाते हैं। लेकिन किरदार में दम न पहले था न आज है। पंडित रामप्यारे रटे-रटाये मंत्र उच्चारित कर रहा है,

'इहेमाविन्द्र सं नद चक्रवाकेव दम्पति, प्रजयौनौ स्वस्तकौ विस्वमा युवर्य शनुताम'

मेरे करीब आहुति डालते हुए तुम क्या कर रहे हो डैडी। कहीं तुम भी मेरी तरह ही अपने कमजोर किरदार के हमारे जीवन में आवाजाही में सोच रहे हो माई डियर अजनबी डैडी।

सम्पर्क-98998-65514

•

संस्मरण

और जब मौत नहीं आयी

□ शिव वर्मा

सोमैया इस संसार में बिल्कुल अकेला था। उसे न तो अपनी मां की याद थी और न बाप की। गांव के बड़े-बूढ़ों से जो कुछ सुनता था, उसे ही सच मानकर जी बहला लेता था। उसे समझाया गया था कि भगवान ने उसके मां-बाप की तकदीर में गरीबी और अभाव की जिंदगी लिख दी थी और इसीलिए उसकी मां जिंदगी भर चक्की पीसती रही और बाप ने सारी जिंदगी बड़े लोगों की सेवा करने के बाद भी कभी पेट भर खाना नहीं खाया। फिर एक दिन पहले विश्वयुद्ध के बाद देशव्यापी महामारी का शिकार होकर दोनों इस दुनिया से कूच कर गये, सोमैया को अनाथ और अकेला छोड़कर।

गांव वालों की दया पर उनके रूखे-सूखे टुकड़े खाकर जब सोमैया कुछ बड़ा हुआ, तो उसे दूसरों की दया पर आश्रित जिंदगी से छुटकारा पाने की चिंता हुई। उसने जंगल से सूखी लकड़ियां बीनकर या काटकर बेचना आरंभ कर दिया। उन दिनों जंगल से सूखी लकड़ी लाने पर आज जैसी सख्ती या पाबंदी नहीं थी। वह जंगल से लकड़ी लाकर कभी इस परिवार में दे देता, तो कभी उस परिवार में। बदले में उसे एक समय का भरपेट भोजन मिल जाता। रात पानी के सहारे बीतती। सोमैया ने इस जिंदगी को तकदीर का खेल समझकर उसके साथ समझौता कर लिया।

एक दिन जब वह लकड़ियां काटकर वापिस आ रहा था, तो रास्ते में उसने एक युवक की लाश पड़ी देखी, युवक किसी सम्पन्न परिवार का जान पड़ता था और उसकी हत्या किसी तेजधार हथियार से की गई थी। सोमैया ने सोचा कि क्यों न इसकी सूचना गांव के थाने में देता चले। उसे क्या पता था कि वह वफादारी उसे महंगी पड़ेगी। जांच-पड़ताल की जहमत से बचने के लिए थाने के दरोगा ने हवालात में बंद कर दिया। लकड़ी काटने का फरसा उसके पास था ही। दो चश्मदीद गवाह भी आ गये और तलाशी में उसके पास से कुछ रुपए भी बरामद कर लिए गए। वह कहानी पूरी हो गई। युवक जंगल की तरफ हवाखोरी के लिए गया होगा। सोमैया ने पैसों के लालच में अपने फरसे से युवक की हत्या कर दी और उसकी जेब से पैसे निकाल लिए।

फिर आरंभ हुआ न्याय का नाटक। सोमैया की ओर से बचाव की पैरवी करने के लिए एक वकील भी दे दिया गया, जिसका काम था पुलिस के इशारे पर पैरवी करना। परिणाम वही हुआ जो होना था। सोमैया निचली अदालत से हाईकोर्ट तक हारता चला गया और उसकी मौत की सजा बरकरार रही।

मौत की सजा पाने वाले जिन कैदियों के आगे-पीछे कोई नहीं होता, उनकी ओर से आमतौर पर जेल के अधिकारी वायसराय के पास दया की याचिका लगा देते थे। आजकल इस प्रकार की याचिका राष्ट्रपति के पास जाती थी।

राजमुंदरी आंध्रप्रदेश केंद्रीय कारागार के अधिकारियों ने भी सोमैया की ओर से दया की याचिका भेज दी। इस समय लॉर्ड इर्विन जाने की तैयारी कर रहे थे। जाने से पहले उनके सामने जितनी भी दया याचिकाएं रखी गईं, उन्होंने उन सब याचिकाओं को स्वीकार करते हुए सभी दया याचकों की मौत की सजाएं रद्द कर दीं। सोमैया बरी हो गया।

आमतौर पर मौत की सजा पाने वाले जिन कैदियों की दया याचना स्वीकार हो जाती है, उन्हें पहले इस समाचार के लिए धीरे-धीरे तैयार करते हैं, लेकिन सोमैया के मामले में यह सावधानी बरतने के बजाये सीधे जाकर उसे वह शुभ समाचार सुना दिया गया। पहले तो उसे जेलर की बात पर यकीन नहीं हुआ, लेकिन जब जेलर ने जोर देकर वही बात दुहराई तो सोमैया ने दौड़कर उसके पैर पकड़ लिए और काफी देर तक आंखें फाड़कर उसकी ओर देखता रहा, जैसे कुछ समझने की कोशिश कर रहा हो। धीरे-धीरे उसकी वाणी और स्मरण शक्ति चली गयी और वह पागलों जैसा व्यवहार करने लगा।

जांच के बाद जेल के डाक्टरों ने इलाज के लिए उसे अस्पताल की पागलों वाली कोठरी में बंद कर दिया। अस्पताल की पर्ची पर लिखा था, 'अत्यधिक खुशी को सहन न कर सकने के कारण मानसिक संतुलन का डगमगा जाना।' *साभार -मौत के इंतजार में शिव वर्मा*

साहित्य का स्व-भाव और राजसत्ता

□ बजरंग बिहारी तिवारी

भारतीय मानस धर्मप्राण है इसलिए भारतीय साहित्य अपने स्वभाव में अध्यात्मवादी, रहस्यवादी है; यह धारणा औपनिवेशिक दौर में बनी। राजनीति में साहित्य की दिलचस्पी आधुनिक काल में शुरू होती है; इस बेबुनियाद मान्यता की निर्मिति भी अंगरेजी शासन की देन है। वास्तविकता यह है कि भारतीय साहित्यकारों ने प्राचीनकाल से ही राजसत्ता में गहरी रूचि ली और और उसे अपनी सर्जना का विषय बनाया। 'मुद्राराक्षस' जैसा शुद्ध राजनीतिक नाटक साहित्य में मजबूत राजनीतिक विचार-परंपरा के बगैर नहीं लिखा जा सकता था। विशाखादत्त रचित पांचवीं शताब्दी के इस नाटक में न कोई योद्धा नायक है और न ही शृंगार भाव पैदा करने वाली नायिका। है तो गंभीर राजनय। जिन साहित्य-रसिकों और आलोचकों को लगता है कि साहित्य विवेचन में राजनीति, अर्थनीति आदि विषयों से जुड़े मुद्दों को लाकर साहित्य की स्वायत्तता बिगाड़ दी जाती है और उसे अन्य ज्ञानानुशासनों का उपनिवेश बना दिया जाता है उन्हें नवीं शताब्दी के राजशेखर को पढ़ना चाहिए। 'काव्यमीमांसा' में राजशेखर ने लिखा है कि परंपरया चार मुख्य विद्याएं हैं- त्रयी, वार्ता, आन्वीक्षकी और दण्डनीति। इन्हें क्रमशः धार्मिक वांगमय, कृषि एवं वाणिज्य, तर्कशास्त्र तथा राजनीतिशास्त्र कह सकते हैं। साहित्य पांचवीं विद्या है और वह शेष सभी विद्याओं का 'निस्यंद' - टिकने का स्थान है। नाटककार तथा काव्यशास्त्री होने के साथ राजशेखर खुद भूगोलवेत्ता थे और उन्होंने इस विषय पर 'भुवनकोश' नामक ग्रंथ भी लिखा था। वे कन्नौज के राजा महेन्द्रपाल के गुरु थे।

प्राचीनकाल से कवियों का एक ठिकाना राजसभा भी रही है। राजसभा में जाने का अर्थ यह नहीं था कि कवि राजा का चरित लिखेगा, उसकी प्रशस्ति करेगा और उसके अपकर्मों का औचित्य जुटाएगा। जो ऐसा करते थे उनके लिए एक भिन्न कोटि बनाई गई। इन्हें चारण, भाट, विरुदावलीगायक, चाटुकार आदि कहा गया। भाटों का लिखा हुआ उत्तम कोटि के साहित्य में कभी नहीं गिना गया। काव्य विवेचन के प्रसंग में काव्यशास्त्रियों ने विरुदगायकों की रचनाओं को उद्धृत करने से परहेज किया। इस मत पर भी पुराने कवियों में आम सहमति-सी रही कि वे आश्रयदाता राजाओं पर नहीं लिखेंगे। सातवीं शताब्दी के गद्यकार बाणभट्ट ने 'हर्षचरित' लिखकर यह लकीर तोड़ी। लेकिन, उल्लेखनीय यह है कि बाण ने इस किताब के शुरू के तीन अध्यायों में आत्मचरित लिखा। समूची किताब में उन्होंने कहीं भी कवि को राजा से कमतर नहीं रखा। सम्राट हर्ष से पहली ही मुलाकात में उन्होंने उन्हें जिस तरह कड़ा प्रत्युत्तर दिया वह भारतीय साहित्य के इतिहास का बड़ा गर्वोन्नत प्रसंग है। इस मुलाक़ात में हर्ष ने बाण पर यह प्रतिकूल टिप्पणी की - 'महानयो भुजंगः' - यह बड़ा भारी भुजंग (लंपट/गुंडा) है। बाण ने तत्काल प्रश्नवाचक उत्तर दिया- 'का मे भुजंगता'? - मुझमें कौन-सा भुजंगपना है? 'कादम्बरी' में बाण ने लिखा कि राजदरबार और वेश्यालय इस अर्थ में समान होते हैं कि वहां लोगों के चेहरे देखकर उनके बारे में कुछ भी अनुमान नहीं किया जा सकता। 'शुकनासोपदेश' में राजमद की जैसी मीमांसा की गई है वह चकित कर देने वाली है। यह प्रसंग समूचे वांगमय में असाधारण महत्व का है। कवि और राजा की बराबरी के संबंध में बाण के परवर्ती राजशेखर का कहना था कि जितनी जरूरत कवि को राजा की होती है उतनी ही जरूरत राजा को कवि की। दोनों अन्योन्याश्रित होते हैं- 'ख्याता नराधिपतयः कविसंश्रयेण राजाश्रयेण च गताः कवयः प्रसिद्धिं।' काव्यादर्शकार दंडी तो राजा की गरज को पहले रखते हैं! यशाकांक्षी राजा कवि का मुखापेक्षी होता है-

'आदिराजयशोबिम्बमादर्शं प्राप्य वाङ्मयम्।
तेषामसंनिधानेऽपि न स्वयं पश्य नश्यति।'

राजसत्ता और राजा से निकटता लेखनी को प्रभावित न करे, कविगण इस संदर्भ में बहुत सजग रहे हैं। कर्तव्यविरत और राजमद में डूबे नरेशों को फटकारने में भी वे नहीं चूके हैं। चंदबरदाई ने पृथ्वीराज से कहा था- 'गोरी रत्तउ तुव धरा, तूं गोरी अनुरत्त।'- मोहम्मद गोरी तुम्हारी धरती पर नज़र गड़ाए हुए है और तू अपनी गोरी (संयोगिता) में अनुरक्त है! नरपति नाल्ह ने राजा बीसलदेव के बड़बोलेपन, अस्थिरचित्त को बखूबी उभारा। नववधू राजमहिषी राजमती के जरिए कवि ने राजमहल में व्याप्त घुटन को वाणी दी।

जनता के पक्ष में खड़े होकर राजसत्ता की जैसी परख तुलसीदास ने की है वैसी शायद ही किसी दूसरे कवि ने की हो। वे देवेन्द्र और नरेन्द्र दोनों को एक ही कोटि में रखते हैं और बिना लाग-लपेट के उनकी जनविरोधी प्रकृति का खुलासा करते हैं। खल वंदना के प्रसंग में इन्द्र के बारे में उन्होंने लिखा- 'बहुरि सक्र सम बिनवहुं तेहीं। संतत सुरानीक हित जेहीं।' लोग हमेशा नशे में रहें या युद्ध का माहौल बना रहे-

प्राचीनकाल से कवियों का एक ठिकाना राजसभा भी रही है। राजसभा में जाने का अर्थ यह नहीं था कि कवि राजा का चरित लिखेगा, उसकी प्रशस्ति करेगा और उसके अपकर्मों का औचित्य जुटाएगा। जो ऐसा करते थे उनके लिए एक भिन्न कोटि बनाई गई। इन्हें चारण, भाट, विरुदावलीगायक, चाटुकार आदि कहा गया। भाटों का लिखा हुआ उत्तम कोटि के साहित्य में कभी नहीं गिना गया। काव्य विवेचन के प्रसंग में काव्यशास्त्रियों ने विरुदगायकों की रचनाओं को उद्धृत करने से परहेज किया। इस मत पर भी पुराने कवियों में आम सहमति-सी रही कि वे आश्रयदाता राजाओं पर नहीं लिखेंगे।

इन्द्र का हित इसी से सधता है। इन्द्र को बेशर्म बताते हुए उन्होंने एक जगह कहा कि उसकी दशा उस कुत्ते की भांति है जो मृगराज को अपनी तरफ आते देख इस आशंका से सूखी हड्डी लेकर भागता है कि कहीं वह छीन न ले जाए। अन्यत्र उन्होंने कहा कि ऊंचे रहने वालों की करतूत उतनी ही नीची होती है। वे दूसरों को सुखी नहीं देख सकते। चित्रकूट प्रकरण में इन्द्र को कपट और कुचाल का सीमांत बताते उन्होंने कहा कि वह इतना मलिन मति है कि मरणासन्न लोगों को मारकर मंगलकामना करता है- 'मघवा महा मलीन, मुए मारि मंगल चहत।' रामकथा कह चुकने के बाद तुलसी ने कहा कि रावण जब था, तब था। आज का रावण तो मंहगाई और दरिद्रता है। रामवत वही है दरिद्रता के खिलाफ खड़ा हो। राम ने ऐसा ही किया था- उन्होंने मणि-माणिक्य अर्थात विलासिता की चीजें मंहगी कर दी थीं और पशुओं का चारा, पानी तथा अनाज सस्ता कर दिया था- 'मनि मानिक महंगे किये संहगे तृन जल नाज।' स्वघोषित रामभक्तों के बारे में तुलसी विशेष रूप से सावधान करते हैं- 'बंचक भगत कहाय राम के। किंकर कंचन कोह काम के।' - (खुद को) रामभक्त कहने वाले ठग हैं। वे (असल में) दौलत, हिंसा और कामवासना के दास हैं। जब राजा धनाढ्यों के पक्ष में काम करता है तब जनता दुखी होती है। जिस राज्य की जनता दुखी है वहां का राजा राजपद लायक नहीं रह जाता। ऐसा राजा नरक भेजे जाने के योग्य होता है- 'जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी।' अब, राजा अपने आप तो नरक जाना नहीं चाहेगा। यह जिम्मेदारी दुखी लोगों की है कि वे ऐसे राजा को नरक का रास्ता दिखाएं। क्या तुलसी विप्लव का संकेत कर रहे हैं? शायद हां, क्योंकि उनके पूर्ववर्ती ऐसी राह बना चुके थे।

डेढ़ हज़ार साल पहले तमिल महाकाव्य 'सिलप्पदिकारम' आया। इसके रचनाकार इलंगो अडिहल स्वयं राजघराने के थे, वीतरागी राजकुमार। महाकाव्य की कहानी चेर, चोल और पांड्य राज्यों को समेटती है। चोलवासी दम्पत्ति कोवलन और कण्णही आजीविका की तलाश में पांड्य राजधानी मदुरै गए। वहां कोवलन पत्नी कण्णही का पायल बेचने शाही स्वर्णकार की दुकान पहुँचा। परदेसी देखकर सुनार ने कोवलन पर रानी का पायल चुराने का आरोप लगाया और उसे सिपाहियों को सौंप दिया। आनन-फानन में सिपाहियों ने कोवलन को सूली पर लटका दिया। अन्यायी राज्य में राजा से न्याय मांगने कण्णही राजमहल गई। उसके संताप ने राजा-रानी दोनों की जान ले ली। मदुरै में आग लग गई। अन्याय की कीमत इस तरह चुकता हुई।

करीब दो हज़ार वर्ष पूर्व लिखित संस्कृत नाटक 'मृच्छकटिक' भी प्रजापीड़क राजा की परिणति प्रस्तुत करता है। उज्जयिनी का राजा पालक अपने नाम के ठीक उल्टा है। शासन में राजा के साले स्थानक या शकार का बोलबाला है। शकार घोर मूर्ख है मगर अपने 'पांडित्य' का प्रदर्शन करता रहता है। दुर्योधन को कुन्तीपुत्र बताने वाला शकार खुद को 'राष्ट्रीय साला' कहता है क्योंकि राष्ट्र तो उसके जीजाजी का है! राज्य की न्याय-व्यवस्था ऐसी जैसे वह हिंसा का समुद्र हो- 'नीतिक्षुण्णतटं च राजकरणं हिंस्रैः समुद्रायते।' 'न्याय' उस राजकरण (कचहरी) से मिलता है जिसका रिश्ता नीति (नियम-कानून) से टूट गया है। अपने प्रेम-प्रस्ताव को अस्वीकारने वाली वसंतसेना की हत्या खुद शकार करता है और आरोप चारुदत्त पर लगा देता है। न्यायाधीश यथार्थ जानते हैं मगर राजा का कोपभाजन नहीं बनना चाहते। चारुदत्त को फांसी की सजा सुना दी जाती है। इधर त्रस्त प्रजा के बीच से क्षुब्ध हुंकार उठती है। नेतृत्व गोप-कुल का एक युवा आर्यक संभालता है। आर्यक को इसलिए कैद कर लिया गया था कि वह निर्भय होकर उज्जयिनी में रहता है। निडर और प्रसन्नचित्त व्यक्तियों से दमनकारी राजसत्ता हमेशा डरती रही है। दर्दुरक, शर्विलक जैसे हिम्मती युवक आर्यक के सहायक हैं। राज्य में क्रांति होती है। यज्ञमंडप में राजा ठीक उस वक्त मारा जाता है जब चारुदत्त को फांसी देने चौराहे पर ले जाया जा रहा है। नाटककार शूद्रक प्रजापीड़क राजा का वध आवश्यक ठहराते हैं।

छठी शताब्दी के गद्यकार दंडी के 'दशकुमारचरित' का कथानक कुछ-कुछ 'मृच्छकटिक' जैसा है। मालवनरेश मानसार से पराजित मगध का राजा राजहंस अपने मंत्रियों-परिजनों के साथ विंध्य के जंगल में शरण पाता है। यहां उसका पुत्र राजवाहन अपने समवयस्क अन्य नौ कुमारों के संग गुरु वामदेव से शिक्षा लेता है। फिर सभी कुमार अलग-अलग दिशाओं में दिग्विजय हेतु निकलते हैं। वहां से लौटकर सभी कुमार राजवाहन को अपनी आपबीती सुनाते हैं। इस क्रम में युगीन यथार्थ प्रगट होता है। समाज में फैली अनीति, अनाचार और अव्यवस्था का दंडी ने खुलकर वर्णन किया है। जनसामान्य को अपने सरोकार के केंद्र में न रखने के कारण 'दशकुमारचरित' में व्यक्त यथार्थ परिवर्तन की किसी दिशा का संकेत नहीं कर पाता। समाज के अधःपतन को दर्शाना ही दशकुमारचरितकार का उद्देश्य प्रतीत होता है।

कालिदास की छवि यों तो सत्ता विरोधी कवि की नहीं है मगर अवसर आने पर उन्होंने जनकल्याण की दृष्टि से अपना मत प्रस्तुत किया है और सत्ता का प्रतिपक्ष रचा है। 'रघुवंश' में कर-संग्रह के मुद्दे पर राजा का आदर्श बताते हुए लिखा गया है कि प्रजा की भलाई के लिए ही राजा दिलीप

रामकथा कह चुकने के बाद तुलसी ने कहा कि रावण जब था, तब था। आज का रावण तो मंहगाई और दरिद्रता है। रामवत वही है दरिद्रता के खिलाफ खड़ा हो। राम ने ऐसा ही किया था- उन्होंने मणि-माणिक्य अर्थात विलासिता की चीजें मंहगी कर दी थीं और पशुओं का चारा, पानी तथा अनाज सस्ता कर दिया था- 'मनि मानिक महंगे किये संहगे तृन जल नाज।' स्वघोषित रामभक्तों के बारे में तुलसी विशेष रूप से सावधान करते हैं-'बंचक भगत कहाय राम के। किंकर कंचन कोह काम के।'-(खुद को) रामभक्त कहने वाले ठग हैं। वे (असल में) दौलत, हिंसा और कामवासना के दास हैं। जब राजा धनाढ्यों के पक्ष में काम करता है तब जनता दुखी होती है। जिस राज्य की जनता दुखी है वहां का राजा राजपद लायक नहीं रह जाता। ऐसा राजा नरक भेजे जाने के योग्य होता है- 'जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी।' अब, राजा अपने आप तो नरक जाना नहीं चाहेगा। यह जिम्मेदारी दुखी लोगों की है कि वे ऐसे राजा को नरक का रास्ता दिखाएं।

उनसे शुल्क लेता था- 'प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत'। 'शाकुंतल' के पांचवें अंक में राजा दुष्यंत से कण्व के शिष्य शांर्गरव का कहना है- 'मूर्च्छन्त्यमी विकारा: प्रायेणैश्वर्यमत्तानाम्।' - ऐश्वर्य का उन्माद ऐसे विकार प्राय: उत्पन्न कर ही देता है। शांर्गरव को दुष्यंत की जनाकीर्ण राजधानी जलती हुई प्रतीत होती है। न पहचानने वाले राजा (दुष्यंत) को धिक्कारती हुई शकुंतला कहती है कि तुम घास-फूस से ढंके कुएं की तरह अपनी वास्तविकता छिपाए हुए हो। यही तुम्हारा धर्म है। भरी राजसभा में शांर्गरव सत्ता के विद्रूप को अनावृत्त करता हुआ कहता है कि जिस (शकुंतला) ने जीवन में छल-कपट सीखा ही नहीं उसकी बात अप्रामाणिक है और जिन्होंने विद्या के रूप में दूसरे को ठगने का अभ्यास किया वे लोग आज आप्त वक्ता हैं।

साहित्य में जनता की चित्तवृत्ति का प्रतिबिंबन होता है। इसके साथ साहित्य चित्तवृत्ति के निर्माण का दायित्व भी संभालता है। मध्यकालीन साहित्य में सत्ता के विरुद्ध उठे स्वरों की बहुलता मात्र जनता की चित्तवृत्ति का रूपायन नहीं है अपितु उस चित्तवृत्ति को बनाया भी गया है और उन चित्तवृत्तियों के आधार पर समुदायों (सम्प्रदायों, पंथों) का निर्माण हुआ है। जिन्हें 'संत' कहा जाता है वे वस्तुत: अपने समय के जन बुद्धिजीवी थे। संत रविदास, कबीरदास, दादू, सूर, जायसी और तुलसी आदि कवियों को (आवयविक) बुद्धिजीवी मानने के बाद ही उनकी भूमिका को ठीक से समझा जा सकता है।

आम जनता में आधुनिक बुद्धिजीवियों से कहीं ज्यादा पहुँच और प्रतिष्ठा इन बुद्धिजीवियों की थी। इस बात को संभवत: सबसे पहले गांधीजी ने समझा था। उन्होंने लिखा था कि जनता पर प्रभाव के मामले में कबीर नानक आदि के सामने राममोहन और तिलक 'कुछ भी नहीं हैं'। असम के संत शंकरदेव ने अकेले 'जो कर दिखाया वह अंग्रेजी जानने वालों की सारी फौज भी नहीं कर सकती।' तमाम दबावों, प्रलोभनों और बाध्यकारी परिस्थितियों की लंबी अवधि के बावजूद अगर भारत में धर्मतंत्रीय राज्य स्थापित नहीं हो सका तो इसका मुख्य कारण इन संतों या जन बुद्धिजीवियों की वाणी और जनता पर उसका प्रभाव मानना चाहिए। संत रविदास ने जिस राज्य या शासनतंत्र की परिकल्पना प्रस्तुत की उसे ही बाद में धर्म/पंथ निरपेक्ष राज्य (सेकुलर स्टेट) कहा गया - 'ऐसा चाहूं राज मैं, मिले सबन को अन्न। छोट बड़ो सब सम बसैं, रैदास रहै प्रसन्न।।' छोटे-बड़े के बीच समता स्थापित करने वाले राज्य की कामना करना, राज्य से अन्न की उपलब्धता सुनिश्चित करवाने की मांग करना खतरे से खाली नहीं हैं। नि:शंक-निर्भय हुए बगैर ऐसी बात नहीं की जा सकती। कबीर की साखी है- 'सतगंठी कौपीन दै, साधु न मानै संक। राम अमलि लाता रहै, गनै इंद्र को रंक।।' साधु अर्थात बुद्धिजीवी वही है जो (इंद्र) राजा की परवाह किए बिना अपनी राह पर चले। सत्ता-संपत्ति की कामना बुद्धिजीवी की निडरता समाप्त कर देती है। नि:शंक रहना है तो सात गांठों वाली लंगोटी का जीवन अपनाने के लिए तैयार रहना होगा। सिकंदर लोदी ने कबीर को यातनाएं दीं, मारना चाहा मगर वे अपने सच से डिगे नहीं और डंके की चोट पर 'अनभै सांचा' कहते रहे। इंद्र की सत्ता को धूल-धूसरित करते हुए सूरदास ने बालक कृष्ण से कहलवाया- 'कहा इंद्र बपुरो किहिं लायक। गिरि देवता सबहिं के नायक।' -बेचारा इंद्र किस लायक है? सबके नायक (तो) गोवर्धनपर्वत देव हैं। ब्रजवासियों पर कुपित जिस इंद्र ने कहा था - 'मेरे मारत कौन राखिहैं। अहिरनि के मन इहै काखिहैं।।' - देखता हूँ कि मेरे मारने, सबक सिखाने पर इन चीखते-कराहते अहीरों की कौन रक्षा करता है? उस सत्तांध इंद्र की यह परिणति सूर ने दर्शाई - 'सुरगन सहित इंद्र ब्रज आवत। धवल बरन ऐरावत देख्यो उतरि गगन तें धरनि धंसावति।' तत्कालीन साहित्य में देवसत्ता तथा राजसत्ता पर इस बहुकोणीय आक्रमण के निहितार्थों और परिणामों पर विचार करना आवश्यक है। सामान्य जनता को भयमुक्त करने-रखने का श्रेय उस समय के जन बुद्धिजीवियों को जाता है। तुलसीदास ने संत (या बुद्धिजीवी) के लक्षण बताते हुए कहा कि उसका चित्त समतावादी होता है, वह किसी का शत्रु-मित्र नहीं होता, हित-अनहित (स्वार्थ) के वशीभूत होकर कुछ नहीं कहता, वह उस फूल की तरह होता है जो अपने संपर्क में आने वाले और तोड़ने वाले दोनों का कल्याण करता है, उन्हें सुगंध प्रदान करता है- 'बंदहुं संत समान चित, हित अनहित नहिं कोइ। अंजलि गत सुभ सुमन जिमि, सम सुगंध कर दोइ।।'

साहित्य में जनता की चित्तवृत्ति का प्रतिबिंबन होता है। इसके साथ साहित्य चित्तवृत्ति के निर्माण का दायित्व भी संभालता है। मध्यकालीन साहित्य में सत्ता के विरुद्ध उठे स्वरों की बहुलता मात्र जनता की चित्तवृत्ति का रूपायन नहीं है अपितु उस चित्तवृत्ति को बनाया भी गया है और उन चित्तवृत्तियों के आधार पर समुदायों (सम्प्रदायों, पंथों) का निर्माण हुआ है। जिन्हें 'संत' कहा जाता है वे वस्तुत: अपने समय के जन बुद्धिजीवी थे। संत रविदास, कबीरदास, दादू, सूर, जायसी और तुलसी आदि कवियों को (आवयविक) बुद्धिजीवी मानने के बाद ही उनकी भूमिका को ठीक से समझा जा सकता है।

स्वतंत्रता संग्राम के दौरान और स्वतंत्र भारत के भारतीय बुद्धिजीवियों की पर्याप्त ऊर्जा साम्प्रदायिकता की समस्या को समझने और उसे सुलझाने में लगी है। पूर्वऔपनिवेशिक युग के बुद्धिजीवियों ने यह दायित्व अच्छे से निभाया था। संत रविदास, कबीर से लेकर परवर्ती संत रज्जब अली (1561-1689), महामति प्राणनाथ (1618-1694) तक सभी संतों ने हिंदुओं और मुसलमानों को उनके अतिवादों के बारे में लगातार सावधान किया। 'निरपषि मधि' (निर्पख मध्यम मार्ग) का अनुगमन साम्प्रदायिक/मजहबी टकराओं के शमन का समयसिद्ध फार्मूला है। धार्मिक संकीर्णता से उबरने के लिए रज्जब का यह प्रस्ताव कितना बढ़िया है- 'रज्जब बसुधा बेद सब, कुलि आलम सु कुरान। पंडित काजी वै बड़े, दुनिया दफ्तर जान।' अगर पंडित और काजी समूची वसुधा को वेद और समूची दुनिया को कुरान मानकर पढ़ें तो धार्मिक संघर्ष का अंत हो जाए! महामति ने जोर देकर कहा कि जो कुछ कुरान में है वही वेद में। सब एक साहब के बंदे हैं, आपस में लड़ते हुए उन्होंने यह भेद-भाव पैदा किया है- 'जो कछु कह्या कतेब में, सोई कह्या बेद। दोऊ बन्दे इक साहब के, पर लड़त पाए भेद।।'

भक्ति आंदोलन की विफलता या संत

मत के अवसान की चर्चा में अक्सर परवर्ती संतों की उपस्थिति का, उनकी सक्रियता का, उनके प्रभाव-क्षेत्र का और उनकी बानियों का संज्ञान नहीं लिया जाता। रज्जब, सुन्दरदास, और महामति जैसे संतों का संदर्भ 'अवसान' के मुद्दे पर पुनर्विचार की आवश्यकता महसूस कराता है। जिस युग में कवियों का एक बड़ा वर्ग शाहेवक्त की सराहना में संलग्न था- 'सुकबि कुकबि निज मति अनुहारी। नृपहिं सराहत सब नर नारी।' (तुलसीदास) उस दौर में संत कवियों ने सत्ता-प्रतिष्ठानों की परवाह किए बिना निर्भीकता से अपनी बात रखी। उन्होंने यथावसर सत्ता केन्द्रों से संवाद करने की पहल भी की थी। श्रीमद्भागवत और कुरान को समान आदर देने वाले महामति ने शाहेवक्त औरंगजेब से संवाद कायम करने की विफल कोशिश की थी। वे राजा छत्रसाल के प्रशंसक थे। उन्होंने अपने बारह शिष्यों को जिनमें हिंदू और मुसलमान दोनों थे, बादशाह औरंगजेब से सलाह-मशविरा करने और मार्गदर्शन हेतु भेजा था। धर्माधिकारियों और दरबारियों ने यह मुलाकात मुमकिन न होने दी।

जनता के पक्ष से साहित्य ने प्रायः सभी युगों में सकारात्मक भूमिका का निर्वाह किया है। काव्यप्रयोजनों को गिनाते हुए मम्मट ने जब 'शिवेतरक्षतये' को एक प्रयोजन माना तो उसका आशय स्पष्ट था- जो कल्याणेतर है, अकल्याणकारी है उसकी क्षति के लिए भी साहित्य रचा जाता है। अगर राजकार्य में, राजनीति में रचनाकार की रुचि और गति नहीं होगी तो वह कल्याणकारी-अकल्याणकारी नीतियों की पहचान ही नहीं कर सकता। अगर रचनाकार जन सामान्य की जिंदगी से अपरिचित है तो वह सत्ता-प्रतिष्ठान के अशिवत्व को समझ ही नहीं सकता। अर्थ और यश की चाहत से लिखने वाले 'शिवेतरक्षतये' के प्रयोजन से नहीं लिखेंगे। अर्थ और यश की कामना रचनाकार को 'सुरक्षित दायरे' में परिसीमित कर देती है। ऐसा रचनाकार बहुधा चाटुकार बन जाता है। सत्रहवीं सदी के संस्कृत कवि नीलकंठ दीक्षित ने खासे रोचक तरीके से चाटुकार कवियों का चित्र खींचा है-

कार्तयं दुर्विनीतत्वं कार्पण्यमविवेकिताम्।
सर्वं मार्जन्ति कवयः शालीनां मुष्टिकिंकराः।।
न कारणमपेक्षन्ते कवयः स्तोतुमुद्यताः।
किंचिदस्तुवतां तेषां जिह्वा फुरफुरायते ।।

जनता के पक्ष से साहित्य ने प्रायः सभी युगों में सकारात्मक भूमिका का निर्वाह किया है। काव्यप्रयोजनों को गिनाते हुए मम्मट ने जब 'शिवेतरक्षतये' को एक प्रयोजन माना तो उसका आशय स्पष्ट था- जो कल्याणेतर है, अकल्याणकारी है उसकी क्षति के लिए भी साहित्य रचा जाता है। अगर राजकार्य में, राजनीति में रचनाकार की रुचि और गति नहीं होगी तो वह कल्याणकारी-अकल्याणकारी नीतियों की पहचान ही नहीं कर सकता। अगर रचनाकार जन सामान्य की जिंदगी से अपरिचित है तो वह सत्ता-प्रतिष्ठान के अशिवत्व को समझ ही नहीं सकता। अर्थ और यश की चाहत से लिखने वाले 'शिवेतरक्षतये' के प्रयोजन से नहीं लिखेंगे। अर्थ और यश की कामना रचनाकार को 'सुरक्षित दायरे' में परिसीमित कर देती है। ऐसा रचनाकार बहुधा चाटुकार बन जाता है।

-मुट्ठी भर धन के गुलाम बन कर कवि लोग आश्रयदाता की कायरता, ढिठाई, कंजूसी, मूर्खता इन सबकी सफाई कर देते हैं- अर्थात केवल उसकी प्रशंसा ही करते हैं। स्तुति करने को उद्यत कवियों को स्तुति के कारण की आवश्यकता नहीं होती। कुछ देर बिना स्तुति किए रह जाएं तो किसी की स्तुति के लिए इनकी जीभ खुजाने लगती है।

सम्पर्क-98682-61895

चौपाये अतीत □ *अमृत लाल मदान*

प्रतिबद्ध हैं वे कटिबद्ध हैं वे
वर्तमान व भविष्य को स्वर्णिम अतीत की ओर
धकेलने को
चलो धकेलो-पेलो धकेलते चलो पेलते चलो
राज पथ पर जन-जन को नकेलते चलो
पीछे ही पीछे नीचे ही नीचे
लो पहुंच ही गये उस गौरव काल में
स्वर्ण रजत हीरों जड़े पुरातन मॉल में
अरे वाह! राजमहल हैं, पुष्पक विमान हैं
अथक श्रम से टूटी अस्थियों पिंजरों के गौरव गान हैं
भोंदल-तोंदल धर्मगुरु हैं मनुष्य गौण आस्थाएं महान हैं
वन्दन-अभिनंदन अर्चन-पूजन का बोलबाला है
दिग्गजों के मुखश्री में बौनों का निवाला है
धर्म ध्वजाएं फहरा रहीं
जगह-जगह ढाह कहर रहीं
सामन्तों के ठाठ हैं श्रमिकों के ठूंठ हैं
आमजन तो भारवाहक गधे हैं या फिर पालकियों के ऊंट हैं
अरे इसके पीछे भी तो एक अतीत है झिलमिलाता हुआ
दैवी संकेतों से अपनी ओर बुलाता हुआ
चले चलो धकेलते चलो पेलते चलो
राजदंड से जन जन को नकेलते चलो
अरे यहां तो गुफ़ाएं हैं कंदराएं हैं
अंग ढकने को पत्तियां हैं खाल हैं
भाल उन्नत करने को गले में मुंड-माल हैं
हाथों में भाले हैं, विष बुझे बाण हैं
गर्व से कहो हम तो कबीले हैं
रक्त सने हैं तो क्या राष्ट्र रंग में रंगे हैं, रंगीले हैं
इस अतीत के पीछे भी कई चौपाए अतीत हैं
पर छोड़ो मैं तो गौरवान्वित करने चला था
पर आप तो बेहद भयभीत हैं।

सम्पर्क-94662-39164

जज़्बे की पाठशाला

राजकीय प्राथमिक पाठशाला नन्हेड़ा

□ अरुण कुमार कैहरबा

अक्सर शिक्षा को लेकर सरकारी स्कूलों पर तोहमतें लगाई जाती हैं। अनेक खूबियों के बावजूद सरकारी स्कूलों को निजी स्कूलों की तुलना में कमतर बताया जा रहा है। अभिभावक अपने बच्चों को अपने पड़ोस के बड़े सरकारी स्कूल में भेजने की बजाय टाई लगाकर बसों में ठूंस कर शहर के निजी स्कूलों में भेजते हैं। लेकिन कुछ लोग मजबूत होती जा रही धारणाओं को बदलने और बच्चों की दिशा सरकारी स्कूलों की तरफ मोड़ने का कार्य करने में जुटे हैं। हरियाणा के करनाल जिला में इन्द्री खण्ड के गांव नन्हेड़ा स्थित राजकीय प्राथमिक पाठशाला में तैनात अध्यापक भी उन्हीं में से हैं। जिनकी अथक मेहनत और प्रयासों की बदौलत पाठशाला सौंदर्यीकरण, जनभागीदारी और शिक्षा की गुणवत्ता के मामले में मिसाल बन गई है।

एक साल की अवधि में ही पंचायत व समुदाय के सहयोग से पाठशाला ने फर्श से अर्श तक का सफर तय किया है। पाठशाला को जिला स्तर पर मुख्यमंत्री स्कूल सौंदर्यीकरण पुरस्कार मिल चुका है। स्कूल में पंचायत द्वारा सोलर पैनल की व्यवस्था की गई है। सरकार द्वारा प्रदेश भर में घोषित किए गए 116 बैग फ्री स्कूलों में इन्द्री क्षेत्र की एकमात्र नन्हेड़ा की पाठशाला को शामिल किया गया है। पाठशाला की खाली पड़ी भूमि पर सुंदर पार्क, खेल का मैदान व पुस्तकालय स्थापित करने का कार्य युद्ध स्तर पर जारी है।

एक साल पहले नन्हेड़ा स्थित राजकीय प्राथमिक पाठशाला की हालत बेहद खस्ता थी। स्कूल में चारों ओर झाड़-झंखाड़ व कांग्रेस घास का साम्राज्य था। स्कूल भवन उपेक्षित था और माहौल बेहद नीरस। शौचालय व पीने के पानी की स्थिति भी दयनीय थी। स्कूल में सुंदर पौधों और पार्क तो कोसों दूर की बात थी।

सितंबर, 2016 में पाठशाला में महिन्द्र कुमार खेड़ा इन्द्री की राजकीय प्राथमिक पाठशाला और उधम सिंह तुसंग गांव पटहेड़ा की राजकीय प्राथमिक पाठशाला से स्थानांतरित होकर आए। दोनों ने स्कूल को देखकर अपना लक्ष्य तय कर लिया और योजना बनाकर काम करना शुरू कर दिया।

महिन्द्र कुमार ऐसे अध्यापक हैं, जोकि इससे पहले गांव डेरा हलवाना, इन्द्रगढ़, गांधीनगर व इन्द्री की खस्ताहाल पाठशालाओं को गति प्रदान कर चुके हैं। नन्हेड़ा में कार्यभार ग्रहण करते ही पाठशाला के प्रभारी के रूप में काम करने की जिम्मेदारी भी उन्हीं को मिल जाती है। वे काम करना शुरू करते हैं तो जनसमुदाय व पंचायत की भागीदारी एवं सहयोग उन्हें सबसे महत्वपूर्ण जान पड़ता है। लेकिन यह काम आसान नहीं था। पूर्व में स्कूल

की स्थिति और छवि इस मार्ग में सबसे बड़ा रोड़ा थी। हमारे समाज में सरकारी संस्थानों और सरकारी कर्मचारियों के प्रति समाज में बलवती होता जा रहा नकारात्मक दृष्टिकोण भी बाधक था। पूरे समाज में पसरी आशंकाएं उनके जेहन में थी। सरकारी कर्मचारी को नकारा और भ्रष्ट मानने वाले लोगों की आशंकाओं को समाप्त करने के लिए कर्तव्यनिष्ठा, ईमानदारी, जनसरोकारों, सक्रियता एवं प्रतिबद्धता की जरूरत थी। इसके लिए केवल स्कूल के ही नहीं आस-पास के अच्छे अध्यापकों की एकता भी दिखाई दी। अध्यापकों ने पंचायत के प्रतिनिधियों एवं गांव के लोगों के साथ सम्पर्क करते हुए काम करना शुरू किया। सुबह जल्दी स्कूल पहुंचना और छुट्टी के बाद भी रात तक स्कूल में डटे रहना अध्यापकों की नियमित दिनचर्या आज भी है। अध्यापकों की सक्रियता देखकर पंचायत को भी लगा कि उनके गांव की पाठशाला के अध्यापक निरे सरकारी कर्मचारी नहीं हैं, बल्कि सामाजिक कार्यकर्ता भी हैं। इस तरह से गांव की सरपंच ममता कांबोज, उनके पति बलिन्द्र कांबोज व पंचायत सदस्य ने सहयोग दिया।

अन्य बहुत से सरकारी स्कूलों की तरह ही नन्हेड़ा की राजकीय पाठशाला में वंचित समुदायों के गरीब मजदूर परिवारों के बच्चे शिक्षा ग्रहण करते हैं। नन्हेड़ा गांव के सम्पन्न परिवारों के बच्चे पाठशाला में नहीं आते। पाठशाला में नन्हेड़ा के साथ ही गांव कलरी खालसा के गरीब परिवारों के बच्चे ज्यादा आते हैं। पाठशाला प्रभारी महिन्द्र कुमार व वरिष्ठ अध्यापक उधम सिंह ने अपने विद्यार्थियों के घरों में दौरा किया और परिवारों की दिक्कतों के प्रति सहानुभूति ही नहीं दिखाई, बल्कि अपना सहयोग भी दिया। माता-पिताहीन बच्चों की मदद की। अन्य सरकारी योजनाओं को लागू करवाने में भी सहयोग किया तो अभिभावकों का भी पाठशाला व शिक्षकों के प्रति विश्वास पैदा हुआ।

विश्वास बहाली के साथ-साथ पाठशाला में उगे हुए झाड़-झंखाड़ साफ किए। लोगों से दूरियों की खाई को पाटने के साथ-साथ पाठशाला की ऊबड़-खाबड़ जमीन में मिट्टी का भराव किया जा रहा

था। पाठशाला में फल-फूलदार व औषधीय पौधे भी रोपे जा रहे थे। स्कूल में पौधारोपण के लिए सहारनपुर व मेरठ जैसे स्थानों से उत्तम दर्जे के फलदार, फूलदार, सजावटी व छायादार पौधे रोपे जाते हैं। ऐसे पौधे जो गांव में कहीं भी देखने को नहीं मिलते ऐसे दुर्लभ पौधे लगाए जाते हैं।

पाठशाला के प्रांगण को सजाने के लिए पार्क बनाए गए। अंडर ग्राउंड पानी के पाईप बिछाए पार्क व क्यारियों में सिंचाई के लिए टूंटियां लगाई। पीने के पानी की शानदार व्यवस्था और खस्ताहाल हो चुके गंदे शौचालयों को हटाकर नए स्वच्छ शौचालय व मूत्रालय बनवाए जाते हैं।

पाठशाला भवन में सफाई, रंग-रोगन किया जाता है। कार्यालय, कक्षा-कक्षों, बरामदे को नारों, कविताओं, चित्रों, मानचित्रों से सजाया। ठोस व गलनशील कूड़े के निस्तारण के लिए अलग-अलग कूड़ादान लगाए जाते हैं। पानी व्यर्थ ना बहे, इसके लिए पीने के पानी की टूंटियों को क्यारियों से जोड़ा। बरसाती पानी के लिए सोख्ता गड्ढ़ा बना दिया जाता है।

पंचायत द्वारा रास्तों का निर्माण, प्रांगण में टाईलें बिछवा दी जाती हैं। प्रवेश द्वार का पुनर्निर्माण करवाया जाता है और उसे सजा दिया जाता है।

स्कूल में विभाग द्वारा भेजे गए झूले मिट्टी में दबे हुए थे। उन्हें निकाल कर मुरम्मत करवाई जाती है और नए झूले भी लगवाए जाते हैं। अध्यापकों के जोश और उत्साह व पाठशाला के बदलते चेहरे-मोहरे का बच्चों पर जादू-सा असर होता है। ऐसे खुशनुमा माहौल का बच्चों पर बहुत ही सकारात्मक प्रभाव पड़ा है। अब बच्चों के चेहरों पर हमेशा खुशी देखने को मिलती है।

अध्यापक बच्चों को गतिविधियों के माध्यम से पढ़ाते हैं। इन गतिविधियों से बच्चों को सीखने की सच्ची खुशी मिलती है। बच्चों पर अनावश्यक दबाव देखने को नहीं मिलता। समय-समय पर अध्यापक बच्चों के साथ रैलियों या जनसम्पर्क अभियान की शक्ल में लोगों के घरों में जाते हैं तो इससे बच्चों में आत्मविश्वास का संचार हो रहा है। बच्चों को ऐसी शिक्षा दी जा रही है।

यह पाठशाला अब अभिभावकों और बच्चों को लुभाने लगी है। छुट्टी के बाद अध्यापकों की तरह ही बच्चे भी स्कूल में रह जाते हैं। उनमें सुबह जल्दी स्कूल पहुंचने का चाव रहता है। विद्यार्थी सागर, सौरव, अभी, प्रिंस, संजना, साक्षी, राधिका, राखी कहते हैं कि सुबह उठते ही उन्हें अपना स्कूल याद आता है और यहां आने के लिए वे मचलने लगते हैं। स्कूल में पहुंचने के लिए वे जल्दी-जल्दी तैयार होते हैं। वे कहते हैं कि पाठशाला की सुंदरता, फूल-पौधे, क्यारियां, अपने सहपाठी तथा अध्यापकों का स्नेहपूर्ण शिक्षण उन्हें आकर्षित करता है। पाठशाला से पांचवीं कक्षा पास करके माध्यमिक स्कूल में चले गए बच्चे भी स्कूल समय से पहले और छुट्टी के बाद अपनी पुरानी पाठशाला में आते हैं और इसे ही मिडल स्कूल बनाने का अनुरोध करते हैं। रीतिका, कृतिका, संजना, दीपांशु, प्रिंस, रवि, किरणो को छुट्टी के बाद अपने पुराने स्कूल में देखा जा सकता है। वे यहां अध्यापकों के साथ चर्चाएं करते हैं। पढ़ते हैं।

एक साल में ही बच्चों की संख्या बढ़ गई है। करीब 15विद्यार्थी निजी स्कूलों को छोड़ कर स्कूल में आए हैं। स्कूल में नर्सरी की कक्षा भी लगने लगी है, जिसमें 15 विद्यार्थी आते हैं और खेल-खेल में सीखते हैं।

अध्यापकों ने बच्चों के लिए अपनी जेब से सुंदर चटख रंगों की टीशर्ट वाली वर्दी का इंतजाम किया है। इस रंगदार वर्दी को पहन कर बच्चों का हौंसला भी सातवें आसमान पर रहता है। बच्चों की

नियमितता में भी इजाफा हुआ है, क्योंकि शिक्षा बहुत मजेदार बन गई है। प्रात:कालीन सभा तो विशेष आकर्षण का केन्द्र है, जिसमें गीत-संगीत होता है, बच्चों के जीवन, आदतों, रूचियों पर आनंददायी चर्चा होती है।

स्कूल में बच्चों के लिए मिड-डे-मील की तरफ अध्यापकों ने विशेष ध्यान दिया है। स्कूल की रसोई का पुनर्निर्माण करवाया। रसोई में नीचे टाईलें, सिंक, खाना बनाने, रखने, परोसने की अच्छी व्यवस्था की गई है। रसोई के साथ ही कूड़ाघर बने कमरे की सफाई करके उसे भोजनालय का रूप दिया गया है। भोजनालय में बच्चों के लिए बैठने और अपनी थाली रखने की शानदार व्यवस्था की गई है। बच्चों की आदतों में भी सुधार आया है। अब बच्चे साबुन से हाथ धोकर खाना खाते हैं। खाना खाने के बाद भी हाथ धोते हैं।

अध्यापकों द्वारा समय-समय पर गांव के मौजिज लोगों, पंचायत प्रतिनिधियों, समाजसेवियों व अभिभावकों को बुलाया जाता है तो अब लोग खुशी-खुशी स्कूल में आते हैं। वे अध्यापकों को सम्मान प्रदान करते हुए उनके लायक कोई भी कार्य, सेवा या जिम्मेदारी बताने की भी अपील करते हैं। अध्यापकों की मेहनत और पंचायत के सहयोग से पाठशाला चार महीने की अवधि में दिसंबर, 2016 में खण्ड की सबसे सुंदर पाठशाला घोषित हो जाती है। जनवरी, 2017 में पाठशाला जिला की सबसे सुंदर प्राथमिक पाठशाला बन जाती है। विभाग द्वारा पाठशाला को इसके लिए सम्मानित किया गया है। पाठशाला में चौबीस घंटे बिजली के लिए पंचायत द्वारा सोलर पैनल लगवाए गए। पाठशाला की ढाई एकड़ के करीब जमीन पर महात्मा गांधी ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना के तहत लाखों रूपये की लागत से मिट्टी का भराव हो चुका है।

पाठशाला के प्रभारी महिन्द्र कुमार का कहना है कि पाठशाला में सुंदर बड़ा पार्क, खेल के मैदान और पुस्तकालय निर्माण का कार्य करवाया जाना है। इनके बनते ही पाठशाला प्रदेश की ऐसी राजकीय प्राथमिक पाठशाला हो जाएगी, जिसमें ये सभी सुविधाएं उपलब्ध होंगी। उन्होंने कहा कि पाठशाला के प्रांगण में बनाए जा चुके पार्क में अब शाम को लोग सैर करने आते हैं। उन्होंने बताया कि गांव के ही और आजकल हिसार में अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश डॉ. पंकज उन्हें लगातार प्रेरणा देते हैं। वे स्कूल में आकर बच्चों व अध्यापकों का हौंसला बढ़ाते हैं। उनका मानना है कि सरकारी स्कूल आज भी किसी मायने में कम नहीं हैं। पाठशाला प्रदेश की सबसे बेहतर व सुविधासम्पन्न पाठशाला बने, इसके लिए गांव के अनेक युवा व मौजिज लोग अध्यापकों के साथ आज कंधे से कंधा मिलाकर खड़े हैं।

शिक्षकों के शिक्षक रहे सेवानिवृत्त अध्यापक मा. धर्मराज, समाजसेवी अनिल कुमार आर्य, अरविन्द कांबोज, राजेन्द्र नीटू, पिंटू कांबोज, नीटू कांबोज, पूर्व सरपंच गुलाब सिंह, विनोद कुमार, हिरदा राम नंबरदार, जिले सिंह नंबरदार, ईशम सिंह, स्कूल प्रबंध कमेटी की प्रधान सरोज, पूर्व प्रधान संगीता सहित अनेक लोग स्कूल में नियमित तौर पर आते हैं और सहयोग करते हैं। यह पाठशाला शिक्षा की सच्ची रोशनी फैला रही है।

सम्पर्क-09466220145

उदय ठाकुर कविता

वे बरसने वाले हैं

पंजाब से खबर आई है
सुरजीत ने अपना ट्रेक्टर
औने-पौने दामों में बेच दिया है
खेती के छोटे-मोटे औजार
कबाड़ी की रद्दी झोली में डाल दिए हैं
उसका हल आंगन में लावारिस पड़ा है
गाय-बैल मेले में बिकने को खड़े हैं
और वह आकाश में उड़ते हवाई जहाज की ओर निहार रहा है
वह वहां जाना चाहता है
जहां पेड़ों पर डालर फलते हैं

उसके घर के आंगन में पिता
चारपाई पर पसरे यह सब देख रहे हैं
पुरखों के पसीने से सिंची जमीन को चंडीगढ़ बनाना सोच रहे हैं
इसलिए वे बहरे नहीं मूक हो गए हैं
मां तंदूर की आग को बुझता देख रही है
रोटी सेकती है तो हाथ जलते हैं
वह अंधी नहीं विक्षिप्त हो गई है
खेत बंजर हो गए हैं
खलिहान में अकाल का साया मंडरा रहा है
अनाज घर में चूहे मरे पड़े हैं
चिड़ियां गुरुद्वारों की शरण में हैं
कुत्ते अपने पूर्वज भेड़ियों की तलाश में हैं

सुरजीत की तरह ही
जगजीत, मंजीत, हरप्रीत, गुरचरण, गुरुबख्श सभी
आकाश में उड़ते हवाई जहाज को देख रहे हैं
इन्हें रोटी नहीं पिज्जा की भूख है
लस्सी नहीं व्हिस्की की प्यास है
वे सोचते हैं सब कुछ वहीं है
मैं कहता हूं कहां है?
मक्की की रोटी, सरसों के साग का स्वाद
भाभी की मिस्सी रोटी की याद
माह की दाल में घी की फरियाद
रेहड़ी में छोले-भटूरे का संवाद
वह तू तू मैं मैं फिर बारात
वह तारों भरी रात
जिसके आगे वहां की क्या बिसात
यहां भंगड़ा, फिर झगड़ा, फिर मेल तगड़ा
बोल सुरजीत क्या मिलेगा वहां ऐसा लफड़ा
वहां क्या खास है
जिसकी तुझे आस है
वीर जी आकाश की ओर मत देख
वहां बादल काले और घने हैं
धरती की ओर निगाह फेर
यहां बादल पानी बरसाने को हैं।

सम्पर्क - 89014-88693

शख़्सियत

ज़ोहरा बाई अम्बाला वाली (अम्बाला)

◻ महेन्द्र प्रताप चांद

ज़ोहराबाई का जन्म सन् 1922 के आसपास हुआ। उनके जन्म-स्थान के बारे में कोई प्रमाणिक जानकारी उपलब्ध नहीं है। लेकिन वे पिछली सदी के चौथे दशक में अम्बाला शहर के हुस्न के बाज़ार की रौनक थीं। इनका वास्तविक नाम ज़ोहरा जान था और ये सन् 1937 से (अर्थात् मात्र पंद्रह वर्ष की आयु में) आल इंडिया रेडियो- दिल्ली, लाहौर और पेशावर केंद्रों से अपनी सुरीली और मधुर आवाज़ में 'ज़ोहरा जान आफ़ अम्बाला' के नाम से गाया करती थीं। इन्हें बम्बई की फिल्मी दुनिया में ले जाने वाले सुप्रसिद्ध व सुविख्यात संगीतकार मास्टर गुलाम हैदर थे, लेकिन जिस फिल्म से उनकी जादुई आवाज़ की धूम मची, वह सन् 1944 में आई फिल्म 'रतन' थी, जो नौशाद अली साहब के संगीत से सजी थी। इस फिल्म के सदाबहार गीत आज भी कला-पारखियों के कानों में रस घोलते हैं। इस फिल्म में उन्होंने सात गीत गाए थे- 'अखियां मिलाके, जिया भरमा के चले नहीं जाना', 'सावन के बादलो! उनसे ये जा कहो, तक़दीर में यही था साजन मेरे न रो', 'आई दिवाली, आई दिवाली, दीपक संग नाचे पतंगा, मैं किसके संग नाचूं, बता जा' आदि। उसके बाद उन्होंने सन् 1953 तक फ़िल्मों में लगभग 1500 गीत गाए, जिनमें अधिकतर गज़लें थीं। इनमें से कई बहुत लोकप्रिय हुईं, जैसे एक बहुत ही पुरानी फिल्म 'नागिन' में शकील बदायूं की यह ग़ज़ल-'क्या बताएं कितनी हसरत दिल के अफ़साने में है, सुबह गुलशन में हुई और शाम वीराने में है।' इसी तरह फिल्म 'मेला' (सन् 1948) में शकील साहिब की ही एक और ग़ज़ल-'शायद वो जा रहे हैं, छुपकर मिरी नज़र से', फिल्म 'कारवां' में 'आंखों में इंन्तिजार की दुनिया लिए हुए', फिल्म 'दूसरी शादी' में 'टूटा हुआ दिल गाएगा क्या गीत सुहाना, हर बात में ढूंढेगा वो रोने का बहाना' आदि।

सन् 1945 में बनी फिल्म 'ज़ीनत' में नखशब साहब की लिखी मशहूर कव्वाली 'आहें न भरीं, शिकवे न किए, कुछ भी न ज़बां से काम लिया' में नूरजहां और दूसरी गायिकाओं के साथ ज़ोहराबाई की सुरीली आवाज़ भी शामिल थी।

ज़ोहराबाई बहुत ही शिष्ट, सुशील और स्वाभिमानी महिला थीं। फिल्मी दुनिया में वे अपने हर गीत के लिए दो हजार रुपए पारिश्रमिक लेती थीं, जो उस समय एक बहुत बड़ी राशि थी। बसंत देसाई के संगीत में बनी एक फिल्म 'मतवाला शायर राम जोशी' में उन्होंने बीस गाने गाये थे और चालीस हजार रुपए पारिश्रमिक लिया था। सन् 1950 के बाद कुछ नई गायिकाएं आ गईं और इन्हें कम पारिश्रमिक पर गाने के लिए कहा गया तो इन्होंने इसे स्वीकार करने की अपेक्षा फिल्मों में गाना ही छोड़ दिया। जबकि अधिकतर कलाकार प्राय: दौलत और शोहरत के पीछे भागते हैं, लेकिन ज़ोहराबाई पब्लिसिटी से बहुत दूर रहती थीं और प्रेस वालों से भी बहुत बिदकती थीं।

ज़ोहराबाई ने जहां अपनी मधुर आवाज़ से वर्षों तक संगीतप्रेमियों के दिलों में अपना स्थान बनाया और अपनी कलात्मक विशेषताओं की धाक जमाई, वहीं अपने नाम के साथ 'अम्बाला वाली' जोड़कर अम्बाला के नाम को भी रोशन कर दिया। उन्होंने पंजाब के प्रसिद्ध और विख्यात तबला और पख़ावज-वादक 'उस्ताद फ़क़ीर मोहम्मद' से विवाह किया था, जिनसे उनकी एक बेटी भी है-रौशन कुमारी, जो फिल्म अभिनेत्री होने के साथ-साथ एक उच्च कोटि की नर्तकी भी है और बांद्रा मुंबई में 'कला केंद्र' के नाम से एक डांस स्कूल चली रही हैं। रौशन कुमारी साहिबा को उनकी कलात्मक विशिष्टताओं और उपलब्धियों के लिए संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार और 'पदम् श्री' के अवार्ड से भी सम्मानित किया जा चुका है।

ज़ोहराबाई साहिबा 21 फरवरी, 1990 को इस नश्वर दुनिया को छोड़कर चली गईं, लेकिन उनके हृदयस्पर्शी गीतों की गहरी छाप केवल संगीत प्रेमियों के दिलों में ही नहीं, बल्कि कला व साहित्य-मनीषियों के दिलों में भी हमेशा कायम रहेगी। •

मछली

◻ कमलेश भारतीय

एक सुबह आम दिनों की तरह बाजार के लिए निकला। मोड़ पार करते ही मूंगफली पटरी पर फैलाए दो लोग बैठे दिखे। मैंने ध्यान नहीं दिया। पर बड़ी दुकानों, शोरूमों के माथे पर बल पड़ गए। दो दिन तक वे आग और धुएं से धुआं-धुआं होकर क्यों फिर उस मोड़ पर नजर नहीं आए?

शायद बड़े शोरूम के मछली घर में से कोई बड़ी मछली उन्हें निगल गई, चुपचाप...

सम्पर्क-94160-47075

पिछले कुछ सालों से गुजरात के पट्टीदार या पटेल, महाराष्ट्र के मराठा और हरियाणा के जाट जातियों द्वारा पिछड़े वर्ग में शामिल होकर उसके तहत आरक्षण प्राप्त करने के लिए उग्र व हिंसक आंदोलन हुए हैं। इन आंदोलनों ने सामाजिक भाईचारे-सामाजिक न्याय के साथ साथ आरक्षण के मुद्दे को फिर से चर्चा में ला दिया है। बुद्धिजीवियों, प्रिंट-इलेक्ट्रोनिक व सोशल मीडिया तथा राजनीतिक हल्कों में इस मुद्दे पर खूब जुगाली की जा रही है।

आमतौर पर यह सुनने में मिल जाएगा कि आरक्षण का बीज 'सत्ता के भूखे' लोगों ने बोया था 'वोटों की फसल' काटने के लिए। इसी बात को आगे बढ़ाते हुए कुछ उदार से लगने वाले बुद्धिजीवी इसे अंग्रेजों की 'बांटो और राज करो' की नीति तक खींच ले जायेंगे और सामाजिक न्याय-भागीदारी व प्रतिनिधित्व की पक्षधर राजनीति को जातिवादी व औपनिवेशिक शासन की सहयोगी के साथ खड़ा कर देंगे।

कुछ बुद्धिजीवी आरक्षण की पृष्ठभूमि व इतिहास की अनदेखी करके इस स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ संविधान के साथ मिले रोग की तरह देखते हैं और इसका जिम्मेवार संविधान निर्माता डा. भीमराव आंबेडकर को ठहराते हुए उन्हें निरंतर कोसते रहते हैं। यह भी जोर-शोर से कहा जाता है कि आरक्षण ने जातिवाद को बढ़ावा दिया है, सामाजिक भाईचारे को तोड़ा है। आरक्षण के खिलाफ एक तर्क हमेशा से ही रहा है कि इससे योग्यता की अनदेखी होती है।

बहुत ही भला व विश्वसनीय सा लगने वाला आंशिक सत्य के लिए एक तर्क यह भी हमेशा ही रहता है कि आरक्षण का लाभ वास्तविक लोगों तक नहीं पहुंचा है और कुछ लोग ही इसका लाभ उठाए जा रहे हैं। इस तरह कहा जाता है कि आरक्षण से कौन सी बेरोजगारी-गरीबी दूर हो गई, इसका कोई फायदा ही नहीं हुआ। इसी तर्क के आधार पर कि सवर्ण जातियों में भी बहुत गरीब व बेरोजगार हैं इसलिए वे भी आरक्षण के हकदार हैं। आरक्षण का विरोध करने वाले आर्थिक आधार पर आरक्षण की वकालत करने लगते हैं। उनकी समझ में आरक्षण ऐसे ही है जैसे गरीबी-उन्मूलन या बेरोजगारी दूर करने की सरकार की अन्य नीतियां। आरक्षण के इर्द-गिर्द के इन तर्कों व तथ्यों की सत्यता को जांचने की जरूरत है। विचार आमंत्रित हैं। सं.

मनु ने बोए आरक्षण के बीज

□ दीपंचद्र निर्मोही

आरक्षण की अवधारणा का जन्म जातियों के जन्म से ही जुड़ा लगता है। जाति-प्रथा के अंकुर वैदिक-काल में ही फूटते देखे जा सकते हैं। ऋग्वेद के पुरुष सुक्त का ऋषि घोषणा करता है-

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्य:कृत:।
ऊरू तदस्य यद्वैश्य: पद्भ्याम् शूद्रो अजायत।।

अर्थात् उस समाज में ब्राह्मण का स्थान मुख के सदृश है, क्षत्रिय का बाहु बनाया गया है। वैश्य ऊरु के समान है और पद अर्थात् सेवा और निराभिमानत्व से शूद्र उत्पन्न होता है।

बात साफ है कि उस समय समाज को वर्णों में बांट दिया गया था, तभी समाज में सबका स्थान निर्धारित किया गया। मनु ने अपने समय में प्रथम तीन वर्णों को जस का तस रहने दिया और कुछ सीमित कार्य उनके लिए निर्धारित कर दिए। शेष सभी श्रम को शुद्रों में बांट दिया और कहा कि ऐसी व्यवस्था स्वयं परमात्मा ने की है-

सर्वस्यास्य तु सर्गस्य गुप्त्यर्थ स महाद्युति:।
मुखबाहूरुपज्जानां पृथक्कमण्यिकल्म्पयत्।।

मनु, प्रथम अध्याय, श्लोक 87

अर्थात् उस महातेजस्वी ने इस सब सृष्टि की रचनार्थ ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्रों के कर्मों को पृथक-पृथक बताया।

मनु ने ब्राह्मणों के लिए सुविधाजनक और सम्मानित कार्य आरक्षित कर दिए। पढ़ना-पढ़ाना, यज्ञ करना-कराना, दान देना-लेना बस। शारीरिक श्रम का कोई भी कार्य उनके लिए निर्धारित नहीं किया। इन कार्यों में भी दान देने की आवश्यकता उसे नहीं पड़ती थी। इसलिए कि अन्य तीनों वर्णों के लिए दान लेना वर्जित कर दिया था। यज्ञ कराने की स्थिति भी उसके लिए कभी ही उत्पन्न होती थी। शूद्रों को ये सभी काम करने कां अधिकार उन्होंने नहीं दिया और यज्ञ करना और दान देना शेष दो वर्णों के कार्यों में सम्मिलित कर दिया। ब्राह्मण केवल पढ़े-पढ़ाए, दान ले। यज्ञ करे न करे उसकी मर्जी, क्योंकि समाज में

उनका स्थान सर्वोपरि था।

प्रजा की रक्षा और पढ़ना, दान देना व यज्ञ करना, क्षत्रिय के कार्य निश्चित किए। वैश्य खेती करे, व्यापार करे, ब्याज ले, दान दे, यज्ञ करे। यानी ये ही विशेष कार्य क्षत्रिय और वैश्य के लिए आरक्षित कर दिए गए।

मनु ने यह भी कहा कि ब्राह्मण सम्पूर्ण जात का धर्म से प्रभु है, क्योंकि वह धर्मार्थ उत्पन्न हुआ है, मोक्ष का अधिकारी है। जो कुछ जगत के पदार्थ हैं, वे सब ब्राह्मण के हैं। ब्रह्मोत्पत्तिरूप श्रेष्ठता के कारण ब्राह्मण सम्पूर्ण को ग्रहण करने योग्य है।

(मनु, अध्याय एक, श्लोक 100)

इस प्रकार बेहतर जीवन जीने के जो भी साधन हो सकते थे, उन साधनों के सभी स्रोत मनु ने ब्राह्मण के लिए आरक्षित कर दिए और शेष रहे क्षत्रिय और वैश्य के लिए आरक्षित किए।

तीनों उच्च वर्णों के लिए आरक्षित किए कार्यों को करने का अधिकार शूद्रों को नहीं दिया गया। उनके लिए वे काम आरक्षित कर दिए गए, जो ऊंचे वर्णों की सुख-सुविधाएं जुटाने के लिए आवश्यक थे, यथा-उनके लिए भवन बनाना, कपड़े बुनना, कपड़े सीना, कपड़े धोना, कल-पुर्जे तैयार करना, आभूषण गढ़ना, संगीत से मनोरंजन करना, उनके घरों की साफ-सफाई करना आदि। इन कामों के आधार पर उनकी जातियां भी निश्चित कर दी गईं और यह कहा गया कि ये जातियां कभी नहीं बदल सकतीं, क्योंकि इनका निर्धारण परमात्मा ने स्वयं किया है-

यं तु कर्मणि यस्मिन्स न्ययुङ्क्त प्रथम प्रभुः।
स तदेव रूवयं भेजे सृज्यमानः पुनः पुनः।।

मनु, प्रथम अध्याय, श्लोक 28

अर्थात् उस प्रभु ने सृष्टि के आदि में जिस स्वाभाविक कर्म में जिसकी योजना की उसने पुनः-पुनः जब-जब उत्पन्न हुआ, स्वयं वही स्वाभाविक कर्म अपने-आप किया।

साथ ही अछूतेपन का आरक्षण भी उनके लिए किया। मनु ने आदेश दिया कि उक्त कार्यों को करने वाले अर्थात बढ़ई, निषाद, लोहार, दर्जी, धोबी, रंगरेज, सुनार, बांस का काम करने वालों आदि का अन्न अन्य वर्ण ग्रहण न करें-

कर्मारस्य निषादस्य रंगावतारकस्य च।
सुवर्णकर्तुवणस्य शस्त्रविक्रयिणस्तथा।।
श्ववतां शौण्डिकानां च चैलनिणेजकस्य च।
रंजकस्य नृशंसस्य यस्य चोपपतिगृहे।।

मनु, चतुर्थ अध्याय, 215-216

इनका अन्न क्यों नहीं ग्रहण करना चाहिए, इसके लिए भी मनु का फतवा है-

स्वर्णकार का अन्न आयु, चमार का अन्न यश, बढ़ई का अन्न संतति, धोबी का अन्न बल का नाश करता है।

मनु, अध्याय चार, श्लोक 218, 219, 229

मनु ने शूद्रों के लिए उच्च वर्णों को हिदायत दी कि शूद्र को बुद्धि और उच्छिष्ट (जूठन) हविष्कृत अर्थात् होमशेष (हवन का प्रसाद) का भाग न दें और उसको धर्म-उपदेश न करें और व्रत भी न बतावें। शूद्र से तो सेवा ही करावें, वह शूद्र खरीदा हुआ हो या न खरीदा हुआ हो। क्योंकि ब्रह्मणादि की सेवा के लिए ही ब्रह्मा ने उसे उत्पन्न किया है।

मनु, अध्याय आठ, श्लोक 413

इतना ही नहीं समाज को विघटित कर घृणा उपजाने के जितने भी उपाय हो सकते थे, उन्हें करने में मनु ने कोई कसर नहीं छोड़ी। यह निर्धारण किया कि ब्राह्मण की मेखला (तागड़ी) तिलड़ी और चिकनी सुखस्पर्श वाली मूंज की और क्षत्रियों की दूब के तिनकों से बनी हुई एवं वैश्य की सन की डोरे से बनी हुई होनी चाहिए। इसी प्रकार ब्राह्मण के लिए जनेऊ कपास से बना ऊपर को बंटा हुआ तीन लड़ वाला, क्षत्रिय के लिए सन के डोरे और वैश्य के लिए भेड़ की ऊन से बना हुआ होना चाहिए। शूद्रों को तागड़ी और जनेऊ पहनने का अधिकार मनु ने नहीं दिया। वे औरों की तरह हाथ में दण्ड (लाठी) लेकर भी नहीं चल सकते थे।

ब्राह्मण के लिए आरक्षण में मनु ने पूरी उदारता बरती। उन्होंने नियम निर्धारित किया कि दस वर्ष का ब्राह्मण और सौ वर्ष का क्षत्रिय हो तो उन्हें पिता-पुत्र के समान जानें और ब्राह्मण उनमें पिता के समान है।

मनु, अध्याय दो, श्लोक 36

ब्राह्मण की सुख-सुविधा और मौज मस्ती का कोई अवसर मनु ने छूटने नहीं दिया। कहा कि शूद्र को शूद्र की कन्या से, वैश्य को वैश्य की कन्या से, क्षत्रिय को शूद्र, वैश्य और क्षत्रिय की कन्या से, ब्राह्मण को शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मण की कन्या से विवाह करना बुरा नहीं है।

मनु, अध्याय 3, श्लोक 13

मनु ने मुर्दों को ले जाने वाले रास्ते भी अलग-अलग किए। आज्ञा दी कि शूद्र के मूर्दे नगर के दक्षिण द्वार से, वैश्य के पश्चिम, क्षत्रिय के उत्तर और ब्राह्मण के मुर्दे पूर्व द्वार से निकलें।

मनु, अध्याय 5, श्लोक 92

मनु स्त्रियों को तो शूद्रों के समकक्ष भी नहीं ठहराते। सभी सामर्थ्य वाले कार्य उन्होंने पुरुषों के लिए आरक्षित कर दिए। छोटे से छोटे जीव-जन्तु भी विपत्ति आने पर अपनी रक्षा स्वयं करते देखे जा सकते हैं, परन्तु मनु की दृष्टि में स्त्री नितान्त सामर्थ्यहीन है। इसलिए वे घोषणा करते हैं कि स्त्री स्वतंत्रता के योग्य नहीं है-

पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।
रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति।।

मनु, अध्याय 9, श्लोक 3

मनु के द्वारा विधवा विवाह की व्यवस्था नहीं की गई। बाल-विवाह का प्रचलन होने पर बाल विधवाओं को सिर मुंडवा कर घर में दासियों की भांति नरकतुल्य जीवन जीने के लिए बाध्य किया गया। किसी शुभ काम के समय उनकी उपस्थिति प्रतिबंधित कर दी गई। इस कुरीति के अवशेष आज भी वृंदावन में विधवा आश्रमों में देखे जा सकते हैं, जबकि विधुर पुरुषों के लिए सब सुख-सुविधाएं आरक्षित रखी गई।

आज़ादी के इतने वर्ष बाद भी स्त्रियों की परतंत्रता नहीं टूट सकी। देहातों में आज भी स्त्रियां चौपालों में नहीं जा सकतीं। चौपालों के सामने से गुजरते समय उनके लिए परदा करना अनिवार्य है, जिससे चौपाल को वे देख तक न सकें। चौपाल, जहां निर्णय लिए जाते हैं, का उपयोग करना पुरुषों के लिए

आरक्षित है।

मनु ने ऐसी व्यवस्था निर्मित की जिसमें समानता, स्वतंत्रता, सद्भाव, मैत्री और भाईचारे का कोई स्थान नहीं हो सकता था। उस सामाजिक व्यवस्था ने हिन्दू समाज में ऐसी जड़ जमाई कि समय-समय पर सुधारकों के प्रयासों के बावजूद उसकी गति कम नहीं हो सकी। परिणाम यह हुआ कि उस व्यवस्था में उपजी पीड़ा को भोगने के लिए समाज का बड़ा हिस्सा आज भी विवश है।

इस व्यवस्था के परिणामस्वरूप आदमी और आदमी के बीच उपजी खाई निरन्तर गहरी होती गई। शूद्रों में अछूत घोषित कर दी गई जातियों को बस्तियों से बाहर बसने के लिए बाध्य कर दिया गया। शूद्रों को पूरी तरह निष्कासित नहीं किया जा सकता था, क्योंकि उनके बिना काम नहीं चलता। सवर्णों को घर, चारपाई, कपड़ा, औजार, मिट्टी और धातुओं के बरतन, उनकी सफाई, कपड़ों और घर की सफाई, मनोरंजन, आभूषण, सभी कुछ की जरूरत थी। ये सब काम शूद्रों के लिए आरक्षित थे। इतना ही नहीं अछूत घोषित कर दी गई जातियों के धर्मशास्त्र सुनने और सवर्णों के सामने पड़ने पर प्रतिबंध लगा दिया गया था। भूलवश किसी अछूत ने धर्म चर्चा सुन ली तो शीशा पिघला कर उसके कान में डाल देने जैसी अमानवीय सजा उसके लिए निर्धारित की गई। सवर्णों के घर काम के लिए जाते समय अछूत के लिए आवश्यक था कि वह अपने गले में घंटी और पीठ पर झाड़ू बांध कर चले, जिससे उनके आने पर सवर्ण लोग उन्हें देखने से बच जाएं। उनके चलने पर जमीन पर बने निशाना झाड़ू फिरने से साफ हो जाएं। पेट भरने के लिए जूठन और बासी रोटियां उन्हें मिलती थीं, जो उन्हें काम निबटा देने के बाद हर घर जाकर स्वयं लानी पड़ती थीं। पहनने के लिए पुराने कपड़े मिलते थे, जिन्हें फट जाने तक धो लेने की सुविधा नहीं थी। पीने के पानी के लिए कुएं के समीप जा, घड़ा धरती पर टेक, किसी सवर्ण के आ जाने की उन्हें घंटों प्रतीक्षा करनी पड़ती थी, जो उनके बर्तन में दूर से पानी डाल दे।

कैसी विडम्बना रही कि किसान का हाली (खेती करवाने वाला नौकर) जो अक्सर चमार जाति का होता था, गन्ने की बिजाई, निराई, गुड़ाई से लेकर कोल्हू में गुड़ बनवाने तक सारा काम करता था, फिर उस गुड़ को टोकरे में भरकर मालिक के घर के ओसारे में ले जाकर रखता था, पर उसके बाद वह इस गुड़ को छू भी नहीं सकता था, इसलिए कि वह अछूत था। वह मूंज से, सन से रस्सियां बंटता, फिर उससे मालिक की खाट भरता, पर उस पर बैठने का अधिकार उसे नहीं था। मालिक के सामने नए कपड़े, नई जूती पहनने का साहस वह कभी नहीं जुटा पाता था। यदि कभी ऐसा हुआ तो बकायदा उसे हिदायत दी जाती कि जब तुम ऐसी ही जूतियां पहनोगे तो फिर हम क्या पहनेंगे? खबरदार अगर फिर कभी ऐसी हरकत की। आज भी देश के कई भागों में दलित-दुल्हा घोड़ी पर बैठकर सवर्णों के दरवाजे के सामने से नहीं गुजर सकता, उनके जैसी पगड़ी नहीं बांध सकता। विशेष ढंग से पगड़ी बांधना, दूल्हे का घोड़ी पर चढ़ना सवर्णों के लिए आरक्षित है।

कुछ ऐसे क्षेत्र हैं, जहां गैर सरकारी स्तर पर शत-प्रतिशत आरक्षण है। धनपति के लिए हरक्षेत्र आरक्षित है। बिना मैरिट पेडसीट के माध्यम से महत्वपूर्ण संस्थानों में प्रवेश लिया जा सकता है। पैसे के द्वारा नौकरी और पदौन्नति मिल सकती है। विधायक, सांसद और मंत्री बना सकता है। बिना पैसे कितना भी योग्य व्यक्ति चुनाव के मैदान में उतरने की हिम्मत नहीं जुटा पाता। पैसे के माध्यण्म से मनचारी बेहतर शिक्षा की हर सुविधा उपलब्ध की जा सकती है।

बाप करोड़ों का उद्योग उस बेटे को सौंप जाएगा जो उसके बारे में क ख ग तक नहीं जानता और वह बिना कोई श्रम करे पूरा जीवन इस उत्तराधिकार के सहारे मौज-मस्ती में गुजार सकता है। मंत्री का बेटा मंत्री, सांसद का बेटा सांसद, विधायक का बेटा विधायक, महंत का बेटा महंत, पुजारी का बेटा पुजारी, सेठ का बेटा सेठ, नंबरदार का बेटा नंबरदार, मुखिया का बेटा मुखिया, आखिर यह आरक्षण नहीं तो और क्या है?

आज व्यक्ति जूतों की दुकान करता है, ढाबा चलाता है, आढ़त की दुकान उसने बनाई है, चाट का खोमचा लगाता है, लोहे के पूर्जे बेचता है, फर्नीचर बनाता है, दवाइयां बेचता है, किसी दफ्तर में चपरासी का काम करता है। इसके बावजूद पहले पंडितजी है, चौधरी साहब है, लाला जी है, ठाकुर है। एक व्यक्ति पढ़-लिखकर अध्यापक हो गया है, हवाई जहाज उड़ाता है, वैद्य बन गया है, कंप्यूटर चलाता है, हवाई जहाज उड़ाता है, पुलिस में अधिकारी है, पुस्तकें लिखता है, उपदेश देता है, पुस्तकें छापता है, मंत्री हो गया है, फिर भी वह ओढ़ है, कुम्हार है, चमार है, लुहार है, बढ़ई है, भंगी है। आरक्षण के अतिरिक्त इसे और किस तरह देखा जा सकता है?

यद्यपि दयानंद ने ऋग्वेद के पुरुष सूक्त के बारहवें मंत्र का भाष्य करते हुए लिखा कि वर्ण जन्म के आधार पर नहीं, कर्म के आधार पर बनाए जाते हैं, परन्तु ऐसा किसी भी समय में व्यवहार में आया नहीं दिखता। यदि कर्म के आधार पर वर्ण तय किए जाते तो देवकाल में जातिगत आरक्षण का विरोध कर अन्तर्जातीय विवाह रचाने वाली देव कन्या पार्वती को आत्महत्या और नागगण के अधिपति शंकर को देवताओं के श्रेष्ठ होने के अहं को तोड़ने के लिए उनके साथ निर्णायक युद्ध करने के लिए विवश न होना पड़ता। परशुराम अपने समय के अजेय योद्धा होने के बावजूद क्षत्रिय नहीं हो सके। वे उस समय भी ब्राह्मण थे और आज भी ब्राह्मण हैं। जनक को विद्वान तो कहा पर ब्राह्मण किसी ने नहीं कहा। यदि कर्म से व्यवस्था होती तो एकलव्य की गणना क्षत्रियों में होती और द्रोणाचार्य की भी और फिर एकलव्य को शायद अपना अंगूठा न गंवाना पड़ता। यदि कर्म से ही वर्ण तय होते तो मनु को जन्मना जातिगत व्यवस्था की पुष्टि की जरूरत ही क्यों पड़ती?

आरक्षण की मंत्र रट रहीं आज की सरकारें देश के नागरिकों के पिछड़ेपन को समाप्त करने की दिशा में ईमानदार नहीं लगतीं। न ही वह अछूतों, पिछड़ों के सिर पर थोप दिए गए जातियों के जन्मजात कलंक को हटाना चाहती हैं। इसलिए वह उन्हें सौंप दिए गए आरक्षण के कटोरे को उनके हाथ से अलग करने की परिस्थितियां निर्माण करने के प्रति कार्य नहीं करतीं। कोई भी सरकार गैर बराबरी के कारकों को समाप्त नहीं करना चाहती।

गैर बराबरी जाति के नाम पर हो या सम्प्रदाय के नाम पर, धर्म के नाम पर हो या अगड़ों-पिछड़ों के नाम पर, गरीब-अमीर के नाम पर हो या स्त्री-पुरुष के नाम पर। यदि समाज से गैर बराबरी के रूप समाप्त करने हैं तो आदमी के द्वारा आदमी के शोषण की प्रणालियों को समाप्त होना होगा। शोषण समाप्त हो जाएगा तो सुखी, समृद्ध और समतावादी समाज का निर्माण होगा, इसमें संशय का कोई कारण दिखाई नहीं देता।

पिछड़ी और अनुसूचित जातियों के जागरूक सदस्य अब आरक्षण के रास्ते नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन के आधार पर काम प्राप्त करने के पक्ष में है। इस स्थिति को वे और नहीं भोगना चाहते। डा. आम्बेडकर को यहां बार-बार दोहराना चाहिए-हम सामाजिक परिवर्तन चाहते हैं। हम सम्मानपूर्वक जीवन जीना चाहते हैं। उन्होंने कहा, 'क्या आपको लगता है कि हम संविधान द्वारा प्रदत्त सहूलियतों के लिए सदा-सदा के लिए अछूत बने रहें? हम मनुष्यत्व पाने का प्रयत्न कर रहे हैं। क्या संविधान द्वारा दी गई विशेष सहूलियतों के लिए ब्राह्मण लोग अछूत बनेंगे?'

समाज से गैर बराबरी और आरक्षण के सभी रूपों का प्रभाव समाप्त हो इसका एक सीधा और पुख्ता समाधान है कि सबके लिए शिक्षा और रोजगार के समान अवसर उपलब्ध कराए जाएं और श्रम संबंधों में परस्पर-उपयोगिता की प्रणाली को व्यवहार में परिवर्तित किया जाए।

सम्पर्क-98136-32105

आरक्षण: पृष्ठभूमि और विवाद

□ डा. सुभाष चंद्र

आरक्षण की पृष्ठभूमि

भारतीय समाज व्यवस्था में आरम्भ से ही समाज के उच्च वर्गों ने ज्ञान, सत्ता और संपति को अपने लिए वर्ण-जाति के आधार पर आरक्षित रखा। इसका निरन्तर विरोध भी होता रहा। इस व्यवस्था ने अपने में इतनी लोच जरूर रखी कि यह अपने बचाव के रास्ते निकालती रहे। इसके विनाश के लिए जो भी सामाजिक शक्ति मजबूती से खड़ी हुई, उसको इसने या तो समाप्त कर दिया अथवा अपने लाभों में हिस्सेदार बनाकर अपने में समाहित कर लिया।

प्राचीन और मध्यकाल में कमोबेश यही स्थिति रही। ज्ञान, सत्ता व संपति में अपना एकाधिकार बनाए रखने के लिए कठोर कायदों, रिवाजों, नियमों, नैतिकता-मर्यादा की अवधारणा, निर्मित की गई। विभिन्न स्मृतियों विशेषकर मनु-स्मृति, कौटिल्य के अर्थशास्त्र, रामायण-महाभारत तथा पौराणिक कहानियों के साहित्य इन विचारों से भरा पड़ा है।

आधुनिक काल में समाज के वंचित वर्ग के चिन्तकों-विचारकों ने शोषणमूलक सामाजिक संरचना का गहराई से विश्लेषण किया। शिक्षा व सत्ता में उच्च वर्गों के एकाधिकार को चुनौती देते हुए शिक्षा व सत्ता में समाज के पिछड़े वर्गों की भागीदारी की मांग की।

सामाजिक क्रांति के अग्रदूत महात्मा जोतीबा फुले ने प्रशासन व शिक्षा में ब्राह्मणों के वर्चस्व से उत्पन्न पक्षपात व भ्रष्टाचार जैसी विकृतियों को अपनी रचनाओं में उद्घाटित करते हुए पिछड़े वर्गों को प्रशासन में शामिल करने तथा शिक्षा के विशेष प्रावधानों की मांग की। हंटर कमीशन के समक्ष दिया गया उनका बयान इस संबंध में महत्वपूर्ण है।

1882 - हंटर आयोग के समक्ष महात्मा जोतिराव फुले ने नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा के साथ सरकारी नौकरियों में सभी के लिए आनुपातिक आरक्षण/प्रतिनिधित्व की मांग की।

1891- त्रावणकोर के सामंती रियासत में 1891 के आरंभ में सार्वजनिक सेवा में योग्य मूल निवासियों की अनदेखी करके विदेशियों को भर्ती करने के खिलाफ प्रदर्शन के साथ सरकारी नौकरियों में आरक्षण के लिए मांग की गयी।

1901 - महाराष्ट्र के सामंती रियासत कोल्हापुर में शाहू जी महाराज द्वारा आरक्षण शुरू किया गया। सामंती बड़ौदा और मैसूर की रियासतों में आरक्षण पहले से लागू थे।

1908 - अंग्रेजों द्वारा बहुत सी जातियों और समुदायों के पक्ष में, प्रशासन में जिनका थोड़ा-बहुत हिस्सा था, के लिए आरक्षण शुरू किया गया।

1909 - भारत सरकार अधिनियम 1909 में आरक्षण का प्रावधान किया गया।

1919 - भारत सरकार अधिनियम 1919 में आरक्षण का प्रावधान किया गया।

1921 - मद्रास प्रेसीडेंसी ने जातिगत सरकारी आज्ञापत्र जारी किया, जिसमें गैर-ब्राह्मणों के लिए 44 प्रतिशत, ब्राह्मणों के लिए 16 प्रतिशत, मुसलमानों के लिए 16 प्रतिशत, भारतीय-एंग्लो/ईसाइयों के लिए 16 प्रतिशत और अनुसूचित जातियों के लिए आठ प्रतिशत आरक्षण दिया गया था।

1935 - पूना समझौते में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने दलित वर्ग के लिए अलग निर्वाचन क्षेत्र आवंटित करने का प्रस्ताव पास किया, ।

1935 - भारत सरकार अधिनियम 1935 में आरक्षण का प्रावधान किया गया।

1942 - डा. भीमराव आम्बेडकर ने अखिल भारतीय दलित वर्ग महासंघ की स्थापना की। सरकारी सेवाओं और शिक्षा के क्षेत्र में अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षण की मांग की।

1946 - भारत में कैबिनेट मिशन अन्य कई सिफारिशों के साथ आनुपातिक प्रतिनिधित्व का प्रस्ताव दिया।

1947 में भारत ने स्वतंत्रता प्राप्त की। डॉ. अम्बेडकर को संविधान भारतीय के लिए मसौदा समिति का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। भारतीय संविधान न केवल धर्म, नस्ल, जाति, लिंग और जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव का निषेध करता है।

बल्कि सभी नागरिकों के लिए समान अवसर प्रदान करते हुए सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों या अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की उन्नति के लिए संविधान में विशेष धाराएं रखी गयी हैं। 10 सालों के लिए उनके राजनीतिक प्रतिनिधित्व को सुनिश्चित करने के लिए अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए अलग से निर्वाचन क्षेत्र आबंटित किए गए हैं।(हर दस साल के बाद सांविधानिक संशोधन के जरिए इन्हें बढ़ा दिया जाता है)।

1953 – सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्ग की स्थिति का मूल्यांकन करने के लिए कालेलकर आयोग को स्थापित किया गया। जहां तक अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों का संबंध है रिपोर्ट को स्वीकार किया गया। अन्य पिछड़ी जाति (ओबीसी) वर्ग के लिए की गयी सिफारिशों को अस्वीकार कर दिया गया।

1956– काका कालेलकर की रिपोर्ट के अनुसार अनुसूचियों में संशोधन किया गया।

1976 – अनुसूचियों में संशोधन किया गया।

1979 – सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े की स्थिति का मूल्यांकन करने के लिए मंडल आयोग स्थापित किया गया। आयोग ने 1,257 समुदायों की पिछड़े वर्ग के रूप में पहचान की।

1980 – आयोग ने एक रिपोर्ट पेश की आरक्षण कोटा में बदलाव करते हुए 22 प्रतिशत से 49.5 प्रतिशत वृद्धि करने की सिफारिश की।

1990 मंडल आयोग की सिफारिशें विश्वनाथ प्रताप सिंह द्वारा सरकारी नौकरियों में लागू किया गया।

1991– नरसिम्हा राव सरकार ने अलग से अगड़ी जातियों में गरीबों के लिए 10 प्रतिशत आरक्षण शुरू किया।

1992– इंदिरा साहनी मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण को सही ठहराया। आरक्षण और न्यायपालिका अनुभाग भी देखें

1995 – संसद ने 77वें सांविधानिक संशोधन द्वारा अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की तरक्की के लिए आरक्षण का समर्थन करते हुए अनुच्छेद 16(4)(ए) डाला। बाद में आगे भी 85वें संशोधन द्वारा इसमें अनुवर्ती वरिष्ठता को शामिल किया गया था।

अगस्त 2005 – उच्चतम न्यायालय ने पी.ए. इनामदार और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य के मामले में अगस्त 2005 को 7 जजों द्वारा सर्वसम्मति से फैसला सुनाते हुए घोषित किया कि राज्य पेशेवर कालेजों समेत सहायता प्राप्त कॉलेजों में अपनी आरक्षण नीति को अल्पसंख्यक और गैर–अल्पसंख्यक पर नहीं थोप सकता हैं।

2005 – निजी शिक्षण संस्थानों में पिछड़े वर्गों और अनुसूचित जाति तथा जनजाति के लिए आरक्षण को सुनिश्चित करने के लिए 93वां सांविधानिक संशोधन लाया गया। इसने अगस्त 2005 में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले को प्रभावी रूप से उलट दिया।

2006– से केंद्रीय सरकार के शैक्षिक संस्थानों में अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण शुरू हुआ। कुल आरक्षण 49.5 प्रतिशत तक चला गया।

2008–भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने 10 अप्रैल 2008 को सरकारी धन से पोषित संस्थानों में 27 प्रतिशत ओबीसी कोटा शुरू करने के लिए सरकारी कदम को सही ठहराया। न्यायालय ने स्पष्ट रूप से अपनी पूर्व स्थिति को दोहराते हुए कहा कि 'मलाईदार परत' को आरक्षण नीति के दायरे से बाहर रखा जाना चाहिए।

अन्य पिछड़ा वर्ग का आरक्षण

स्वतंत्रता के बाद भारत के लिए जो संविधान अपनाया गया उसमें सभी नागरिकों के समान व्यवहार का सिद्धांत अपनाया गया। सदियों से चली आ रही वंचनाओं को दूर करने, प्रशासन में भागीदारी को सुनिश्चित करने के लिए अनुसूचित जातियों व जनजातियों को सरकारी नौकरियों और शिक्षण–संस्थाओं में आरक्षण के प्रावधान किए गए।

कुछ बुद्धिजीवी संविधान की आड़ लेकर ही पिछड़े वर्गों के आरक्षण को खारिज इस तरह करते हैं कि संविधान में तो सिर्फ अनुसूचित जातियों व अनुसूचित जनजातियों के लिए ही आरक्षण का प्रावधान है और पिछड़ों के लिए आरक्षण को मंडल आयोग तथा पूर्व प्रधानमंत्री वी पी सिंह की कारस्तानी के रूप में देखते हैं।

अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण तो नहीं किया गया, लेकिन धारा 340 के अन्तर्गत उनके विकास के लिए कदम उठाने को कहा गया कि:

''1. राष्ट्रपति भारत के राज्य क्षेत्र के भीतर सामाजिक और शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों की दशाओं के और किन कठिनाइयों को वे झेल रहे हैं, उनके अन्वेषण के लिए और उन कठिनाइयों को दूर करने और उनकी दशा को सुधारने के लिए संघ या किसी राज्य द्वारा जो उपाय किए जाने चाहिएं, उनके बारे में और उस प्रयोजन के लिए संघ या किसी राज्य द्वारा जो अनुदान किए जाने चाहिएं और जिन शर्तों के अधीन वे अनुदान किए जाने चाहिएं, उनके बारे में सिफारिश करने के लिए आदेश द्वारा, एक आयोग नियुक्त करेगा जो ऐसे व्यक्तियों से मिलकर बनेगा जो वह ठीक समझे और ऐसे आयोग को नियुक्त करने वाले आदेश में आयोग द्वारा अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया परिनिश्चित की जाएगी।

2. इस प्रकार नियुक्त आयोग अपने को निर्देशित विषयों का अन्वेषण करेगा और राष्ट्रपति को प्रतिवेदन देगा, जिसमें उसके द्वारा पाए गए तथ्य उपवर्णित किए जाएंगे और जिसमें ऐसी सिफारिशें की जाएंगी, जिन्हें आयोग उचित समझे।

3. राष्ट्रपति उस प्रकार दिए गए प्रतिवेदन की एक प्रति, उस पर की गई कार्यवाही को स्पष्ट करने वाले ज्ञापन सहित, संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवाएगा।''

काका कालेलकर की अध्यक्षता में पिछड़ा वर्ग आयोग का गठन

धारा 340 के मद्दे नजर 29 जनवरी, 1953 को काका कालेलकर की अध्यक्षता में पिछड़ा वर्ग आयोग का गठन हुआ। आयोग को कहा गया था कि:

(क) सामाजिक व शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों को परिभाषित करने की कसौटी अथवा पैमाने का निर्धारण करें।

(ख) सामाजिक व शैक्षणिक दृष्टि

से पहचान किए गए पिछड़े वर्गों के विकास के लिए उपाय सुझाए।

(ग) केन्द्र व राज्य सरकार सार्वजनिक सेवाओं में पिछड़े वर्गों के उचित प्रतिनिधित्व के लिए नियुक्तियों में आरक्षण के प्रावधानों की जरूरत की जांच करे।

(घ) राष्ट्रपति को तथ्यों की रिपोर्ट तथा उचित सुझाव प्रस्तुत करे।

सामाजिक और शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों की पहचान करने के लिए आयोग ने निम्नलिखित अपनाया।

(क) हिन्दू समाज में परम्परागत तौर पर निम्न समझे जाने वाली जाति

(ख) किसी जाति अथवा समुदाय के अधिकांश हिस्से में शैक्षणिक प्रगति का अभाव

(ग) सरकारी नौकरियों में पर्याप्त प्रतिनिधित्व का अभाव।

(घ) व्यापार, वाणिज्य और उद्योग में पर्याप्त प्रतिनिधित्व का अभाव।

इस आयोग ने दो साल के गहन मंथन के बाद 30 मार्च, 1955 को रिपोर्ट प्रस्तुत की। इसने पूरे देश में 2399 जातियों अथवा समुदायों को पिछड़े के तौर पर चिह्नित किया। इनमें 837 समुदायों को अति पिछड़े के तौर पर चिह्नित किया।

आयोग की रिपोर्ट से पांच सदस्यों ने खुले तौर पर असहमति प्रकट की तथा केन्द्र सरकार को रिपोर्ट प्रस्तुत करते हुए अध्यक्ष महोदय ने प्रस्तावना में रिपोर्ट की मूल भावना व निष्कर्षों से असहमति प्रकट की। शुरु में तो उनका मानना था कि 'हिन्दुओं की ऊंची जातियों को निचली जातियों की उपेक्षा के दोष के लिए प्रायश्चित करना है। अतएव वे सरकार से यह सिफारिश करने को तैयार हैं कि केवल पिछड़ी जातियों को सब तरह से खास मदद दी जानी चाहिए और यहां तक कि ऊंची जातियों के गरीब और योग्य लोगों को भी इस खास मदद से दूर ही रखा जाना चाहिए।' लेकिन धीरे-धीरे आखिर में वे इस नतीजे पर पहुंचे कि 'यदि ऐसे (पिछड़े) समुदायों ने शिक्षा की उपेक्षा की है क्योंकि उनके लिए उसकी कोई उपयोगिता नहीं थी। अब उन्होंने अपनी गलती महसूस कर ली है तो उनको चाहिए कि वे इस कमी को पूरा करने के लिए आवश्यक कोशिश करें ... जिन्होंने विगत में अविचारित ढंग से शिक्षा के प्रति उदासीनता दिखाई है और वे अब सरकारी नौकरियों में विशेष बर्ताव चाहते हैं। यह कुछ भी हो लेकिन उचित नहीं है।...'' मैं निश्चित रूप से किसी समुदाय के लिए सरकारी सेवाओं में आरक्षण के खिलाफ हूं। इसका सीधा-सा कारण यह है कि सेवाएं नौकरों के लिए नहीं होती, वे तो सारे समाज की सेवा के लिए होती हैं।' (बर्धन, ए बी, वर्ग, जाति आरक्षण और जातिवाद के खिलाफ संघर्ष, पृ.-62)

केन्द्र सरकार ने इस रिपोर्ट को नकार दिया। केन्द्रीय स्तर पर कोई सूची बनाने और केन्द्रीय सेवाओं में अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के अलावा अन्य पिछड़े वर्गों को आरक्षण देने से इनकार कर दिया। अगस्त 1961 में केन्द्र सरकार ने सभी राज्यों को पत्र लिखा कि 'राज्य सरकारों को यह अधिकार है कि वे पिछड़ेपन को परिभाषित करने के लिए अपनी स्वयं की कसौटी चुनें, फिर भी भारत सरकार की दृष्टि में बेहतर यही रहेगा कि वे जाति के बजाए आर्थिक आधार को मानें।' (बर्धन, ए बी, वर्ग, जाति आरक्षण और जातिवाद के खिलाफ संघर्ष, पृ.-63)

मंडल आयोग

जनता सरकार ने दिसम्बर 1978 में बी पी मंडल की अध्यक्षता में पिछड़ा वर्ग आयोग गठित किया। 31 दिसम्बर, 1980 को इस आयोग ने रिपोर्ट प्रस्तुत की। अप्रैल 1982 में संसद के पटल पर प्रस्तुत की, लेकिन सरकार की ओर से इस पर कार्रवाई की कोई रूपरेखा इसके साथ नहीं थी।

पिछड़े वर्गों की पहचान के लिए मंडल आयोग ने सामाजिक, शैक्षणिक तथा आर्थिक आधार पर 11 संकेतक चिन्हित किए। सामाजिक संकेतकों में प्रत्येक के लिए तीन अंक, शैक्षणिक संकेतकों में प्रत्येक के लिए 2 अंक तथा आर्थिक संकेतकों में प्रत्येक के लिए 1 अंक निर्धारित किया। कुल 22 अंकों में से जिस जाति को 11 अंक प्राप्त हुए उसे पिछड़े वर्ग की सूची में शामिल कर लिया गया। ये संकेतक निम्नलिखित थे:

(क) सामाजिक:

1. वे जातियां/ वर्ग जिनको दूसरे सामाजिक तौर पर निम्न समझते हैं।

2. वे जातियां/ वर्ग जो जीवनयापन के लिए मुख्यत: हाथ के काम पर निर्भर हैं।

3. वे जातियां/ वर्ग जिनमें ग्रामीण क्षेत्रों में राज्य की औसत से 25 प्रतिशत अधिक महिलाएं व 10 प्रतिशत पुरुष तथा शहरी क्षेत्र में 10 प्रतिशत अधिक महिलाएं व 5 प्रतिशत पुरुष 17 वर्ष की उम्र से कम में विवाह कर लेते हैं।

4. वे जातियां/ वर्ग जिनमें राज्य के औसत से कम-से-कम 25 प्रतिशत अधिक महिलाएं काम करती हैं।

(ख) शैक्षणिक:

5. वे जातियां अथवा वर्ग जिनके 5 से 15 आयु वर्ग के स्कूल न जाने वाले बच्चों की संख्या राज्य की औसत से कम-से-कम 25 प्रतिशत अधिक हो।

6. वे जातियां अथवा वर्ग जिनके 5 से 15 आयु वर्ग के बीच में ही स्कूल छोड़ने वाले बच्चों की संख्या राज्य की औसत से कम-से-कम 25 प्रतिशत अधिक हो।

7. वे जातियां अथवा वर्ग जिनमें मैट्रिक करने वालों का अनुपात राज्य औसत से कम-से-कम 25 प्रतिशत नीचे हो।

(ग) आर्थिक:

8. वे जातियां अथवा वर्ग जिनकी परिवार की सम्पति का औसत मूल्य राज्य औसत 25 प्रतिशत कम हो।

9. वे जातियां अथवा वर्ग जिनमें कच्चे मकानों में रहने वाले परिवारों की संख्या राज्य औसत से कम-से-कम 25 प्रतिशत नीचे हो।

10. वे जातियां अथवा वर्ग जहां 50 प्रतिशत परिवारों के लिए पीने के लिए पानी का स्रोत आधा किलोमीटर से अधिक दूर है।

11. वे जातियां अथवा वर्ग जिनमें खपत के लिए कर्ज लेने वाले परिवारों की संख्या राज्य औसत से कम-से-कम 25 प्रतिशत अधिक हो।

आरक्षण : जाति बनाम आर्थिक

कुछ बुद्धिजीवी आरक्षण को समाज में अलगाव और जातिवाद को बढ़ावा देने वाला मानते हैं और जाति के आधार पर आरक्षण का विरोध करते हैं और आर्थिक आधार पर आरक्षण की मांग करते हैं।

प्रथमत: देखने में यह एकदम तार्किक, विवेकपूर्ण व प्रगतिशील विचार दिखाई देता है, लेकिन भला सा लगने वाला यह आधार सामाजिक भेदभाव, दमन व उत्पीड़न की तो अनदेखी करता ही है। ज्यों ही इसके व्यावहारिक पक्ष पर विचार करते हैं, तो यह समाज के पिछड़े वर्गों को मिल रहे आरक्षण का विरोध स्पष्ट तौर पर दिखाई देता है।

भारतीय समाज में जाति सिर्फ व्यक्ति की पहचान के साथ नहीं जुड़ी, बल्कि शक्ति का स्रोत रही है। जाति यहां व्यक्ति का पेशा, खान-पान, काम-धंधों, धार्मिक-सांस्कृतिक रुचियों को नियंत्रित और संचालित करती रही है। जाति-व्यवस्था के पिरामिड में सबसे नीचे वाली जातियों को अधिकारों से वंचित रखा गया। उनके हिस्से में श्रम करना था, उसके श्रम के फलों का स्वाद सवर्ण जातियों ने अपने लिए रख छोड़ा था। जाति-व्यवस्था की सामाजिक-वर्जनाओं ने समाज के बहुत बड़े भाग को ज्ञान, सत्ता और संपति से वंचित रखा।

जाति व्यवस्था के सामाजिक भेदभाव व दमन के विरुद्ध वंचित वर्गों के रेडिकल-आन्दोलन भी हुए। लेकिन आधुनिक युग में वंचित-दलित वर्गों ने जोतीराव फूले - डा.भीमराव आम्बेडकर के कुशल नेतृत्व में निर्णायक तौर पर जाति की जकड़न को तोड़ने के प्रयास किए। शासन-सत्ता में जाति विशेष के प्रभुत्व को चुनौती देते हुए सत्ता में हिस्सेदारी की मांग की।

आरक्षण-नीति के कारण शक्ति के स्रोतों में बंटवारा होना आरम्भ हुआ, तो विशेषाधिकार संपन्न वर्गों में त्राहि-त्राहि मची हुई है। अभी तक जो वर्ग जाति के आधार पर समाज की नियामतों को भोग रहे थे, अब वे जाति के आधार पर बंटवारे को समाज को विभाजनकारी करार देकर आर्थिक आधार पर आरक्षण की वकालत कर रहे हैं।

पिछड़ेपन की पहचान सिर्फ आर्थिक आधार पर ही नहीं की जा सकती, बल्कि सामाजिक, शैक्षणिक और राजनीतिक आधार पर भी जातियां और समुदाय पिछड़े होते हैं। यदि किसी एक श्रेणी के आधार पर पिछड़ा मानकर आरक्षण दे दिया जाए, तो समाज के जो वर्ग अथवा समुदाय अन्य शक्तिशाली होंगे तो वे वर्ग अथवा समुदाय ही आरक्षण का लाभ उठा पायेंगे। इसका परिणाम यह होगा कि अन्य मामलों में जो समुदाय पहले ही अपेक्षाकृत शक्ति-संपन्न हैं, वही फलेंगे-फूलेंगे। हरियाणा के परिप्रेक्ष्य से इसे समझा जा सकता है। मान लो हरियाणा में जाति की बजाए आर्थिक आधार पर आरक्षण कर दिया जाए, तो अधिकांश नौकरियां जाटों को मिलेंगी, क्योंकि वे राजनीतिक तौर पर प्रभावी हैं।

प्रशासन में भाई-भतीजावाद व भ्रष्टाचार व्याप्त है, उसमें आर्थिक आधार पर पिछड़े होने का प्रमाण-पत्र हासिल करना प्रभावी व्यक्ति का बायें हाथ का खेल है। गरीबी रेखा से नीचे के लोगों के लिए बनी योजनाओं को हड़पने के लिए जिस तरह से प्रमाण-पत्र बने हैं, वे किसी से छुपे नहीं हैं। कुछ अधिक चालाक और बेशर्म लोग तो नौकरी प्राप्त करने के लिए अनुसूचित अथवा पिछड़ी जाति का भी प्रमाण-पत्र भी हासिल कर लेते हैं। इस तरह आर्थिक आधार पर आरक्षण की वकालत एक छलावा है। आरक्षण-विरोधी मानसिकता का यह तर्क नया भी नहीं है। पहले पिछड़े वर्ग के अध्यक्ष काका कालेलकर ने भी इसी घिसे-पिटे तर्क का सहारा लिया था। सुप्रीम कोर्ट ने केन्द्रीय शिक्षण-संस्थानों में पिछड़ों को आरक्षण के आधार पर बाध्य किया, तो यूथ फार इक्विलिटी जैसे लोक-लुभावनी भाषा के खोल में इसका विरोध करने वाले संगठनों का भी यही तर्क था।

मंडल आयोग ने पिछड़े वर्गों को चिह्नित करने के लिए जातिगत पिछड़ेपन के साथ शैक्षणिक व आर्थिक पिछड़ेपन को भी आधार बनाया था। मंडल आयोग में समाजशास्त्रियों ने काम किया था। यह अध्ययन एक-आयामी नहीं, बल्कि बहु-आयामी और वैज्ञानिक पद्धति पर आधारित है।

सही हकदारों को आरक्षण का लाभ पहुंचे, इसलिए अन्य पिछड़ा वर्ग में मलाईदार परत को आरक्षण से बाहर रखा गया है। लेकिन भारत में सरकारी कर्मचारियों को छोड़कर कोई भी अपनी वास्तविक आय का उद्घाटन नहीं करता और ये कानून धरे धराए रह जाते हैं।

आर्थिक, लिंग, धर्म, अधिवास के आधार पर आरक्षण

शिक्षण संस्थानों में आर्थिक आधार पर आरक्षण की व्यवस्था की गई है। शिक्षण संस्थानों में जाति, धर्म, लिंग, नस्ल का भेद किए बिना कोई भी धन के आधार पर दाखिला ले सकता है। इसके लिए 15 प्रतिशत सीट आरक्षित हैं। आरक्षण-विरोधियों को इनसे शिक्षा की गुणवत्ता के गिरने की आशंका नहीं होगी तभी तो इसके खिलाफ कोई सशक्त आन्दोलन नहीं हुआ। न ही किसी ने रेल रोकी, सड़कें जाम कीं।

महिलाओं के लिए भी बिना किसी जाति, धर्म, लिंग, नस्ल का भेदभाव किए नौकरियों में आरक्षण की व्यवस्था की गई है। पंचायतों में भी महिलाओं के लिए आरक्षण की व्यवस्था है, जो उचित है।

तमिलनाडू सरकार ने मुसलमानों और ईसाइयों प्रत्येक के लिए 3.5 प्रतिशत सीटें आवंटित की हैं, आन्ध्रप्रदेश में प्रशासन ने मुसलमानों को 4 प्रतिशत आरक्षण देने के लिए एक क़ानून बनाया। केरल लोक सेवा आयोग ने मुसलमानों को 12 प्रतिशत आरक्षण दे रखा है। धार्मिक अल्पसंख्यक का दर्जा प्राप्त शैक्षणिक संस्थानों के पास भी अपने विशेष धर्मों के लिए 50 प्रतिशत आरक्षण है

कुछ अपवादों को छोड़कर, राज्य सरकार के अधीन सभी नौकरियां उसके अधिवासियों के लिए आरक्षित हैं। पीईसी (पंजाब इंजीनियरिंग कालेज) चंडीगढ़ में, पहले 80 प्रतिशत सीट चंडीगढ़ के अधिवासियों के लिए आरक्षित थीं और अब यह 50 प्रतिशत है।

स्वतंत्रता सेनानियों के बेटे/बेटियों/पोते/पोतियों के लिए, शारीरिक रूप से विकलांग, खेल हस्तियों के लिए भी शिक्षण-संस्थाओं में प्रवेश तथा सरकारी नौकरियों में आरक्षण के प्रावधान हैं।

ऐम्स में स्नातकोत्तर कोर्स में दाखिले में 25 प्रतिशत आरक्षण उन्हीं के लिए है, जिन्होंने ऐम्स से ही स्नातक की डिग्री ली है। पहले यह आरक्षण 33 प्रतिशत था। 2001 में सुप्रीम कोर्ट ने इसे घटाकर 25 प्रतिशत कर दिया था।

आरक्षण और जातिवाद

जातिवाद को समाज के लिए घातक

बीमारी मानने वाले कुछ बुद्धिजीवी भी इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि आरक्षण से जातिवाद को बढ़ावा मिलता है। आरक्षण के खिलाफ जरूर वे आग उगलते रहते हैं। इसमें उनका वर्गीय पूर्वाग्रह भी शामिल होता है।

आरक्षण से जातिवाद को बढ़ावा मिलता है यह एकांगी एवं भ्रांतिपूर्ण सोच पर गढ़ा गया तर्क है। स्वतंत्रता के बाद भारत में धर्मनिरपेक्ष लोकतांत्रिक शासन प्रणाली अपनाई। भारतीय संविधान धर्म, जाति, भाषा, नस्ल, लिंग के आधार पर भेदभाव किए बिना अपने सब नागरिकों में समानता की घोषणा करता है। लोकतांत्रिक प्रणाली बनाए रखने के लिए सामाजिक और आर्थिक समानता की स्थितियों का निर्माण करना जरूरी था। सामाजिक क्रांति के अग्रदूतों और संविधान निर्माताओं ने प्रशासन में समाज के सभी वर्गों को प्रतिनिधित्व देने तथा जातिगत पूर्वाग्रहों व समाज में जातिगत अलगाव को समाप्त करने के लिए सरकारी नौकरियों और शिक्षण संस्थाओं में दाखिले में आरक्षण की व्यवस्था की थी।

राजनीतिक लोकतंत्र की सफलता को सामाजिक व आर्थिक लोकतंत्र स्थापित करने में बताते हुए 24 नवम्बर,1949 को तीसरे वाचन के उपरान्त संविधान के स्वीकार होने के अवसर पर बाबा साहब ने कहा था कि'26 जनवरी,1950 को हम अन्तरविरोधों या विसंगतियों के जीवन में प्रवेश करने जा रहे हैं। राजनीति में तो हम समानता स्थापित करेंगे लेकिन सामाजिक तथा आर्थिक जीवन में हम असमानता ही बनाए रखेंगे। राजनीति में हम 'एक व्यक्ति, एक वोट और एक मूल्य' के सिद्धांत को मान्यता देंगे। लेकिन सामाजिक और आर्थिक जीवन में हम अपने प्रचलित और पारंपरिक सामाजिक-आर्थिक ढांचे की वजह से 'एक व्यक्ति और एक जैसा मूल्य' के सिद्धांत को नकारते रहेंगे। हम आखिर कब तक जीवन के सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में समानता को नकारते रहेंगे? अगर हम इसे लम्बे अरसे तक टालते और नकारते रहे तो हम अपने राजनीतिक लोकतंत्र को संकट में डालकर ही ऐसा कर सकेंगे। इसलिए हमें चाहिए कि जितना जल्दी हो सके उतना ही जल्दी हम इस अन्तर्विरोध को दूर कर लें, वरना जो लोग इन असमानताओं से पीड़ित हैं वे लोग राजनीतिक लोकतंत्र के उस ढांचे को ही उखाड़कर फेंक देंगे जिसको इस संविधान सभा ने बड़ी लगन और मेहनत से बनाया है।'

लोकतंत्र को उन्होंने तो नहीं उखाड़ा, जिनके बारे में डा.आम्बेडकर ने कहा था। लोकतंत्र से जिन्होंने लाभ उठाया उन्होंने ही इसकी जड़ें खोदी हैं और खोद रहे हैं। वैश्वीकरण असमानता को कई हजार गुना बढ़ा दिया है। जो लोग समाज में जातिवाद को बढ़ता हुआ देख रहे हैं और उसका कारण आरक्षण को ठहरा रहे हैं, उन्होंने अपने परिवेश की ओर से आंखें बन्द कर रखी हैं।

उनको इस ओर ध्यान देने की जरुरत है कि सन् 1991 के बाद वैश्वीकरण-उदारीकरण-निजीकरण की नीतियां अपनाने के बाद से आरक्षण को लेकर इतना आक्रोश क्यों पैदा हो रहा है। वैश्वीकरण की नीतियों से रोजगार-बाजार सिकुड़ा है। आर्थिक असमानता बढ़ी है। असमानता की चौड़ी होती खाई ने जातिवाद को बढ़ावा दिया है। इस संबंध में जवाहर लाल नेहरू ने 2 दिसम्बर 1954 को कहा था कि'मैं जातिवाद पर विशेष बल देता हूं, क्योंकि यह बहुत ही खतरनाक प्रवृति है। हम जातिवाद की बात करते हैं और उसकी निंदा करते हैं जो हमें करनी जाहिए। लेकिन तथ्य यह है कि आधा दर्जन या दस तथाकथित ऊंची जातियां भारतीय परिदृश्य पर हिन्दुओं की ओर से प्रभुत्व जमाये हुए हैं। इस बारे में कोई सन्देह नहीं है। अगर हम जातिवाद को हटाने की बात करते हैं तो यह मत समझिए कि मैं मौजूदा वर्गीकरण को बनाए रखना चाहता हूं जिसमें कुछ लोग चोटी पर हों और कुछ लोग पैंदे में रहें। अगर हम समानता नहीं लाते हैं या इस दिशा में कोशिश नहीं करते हैं तो निंस्सदेह जातिवाद बहुत ही खतरनाक तरीके से फलेगा-फूलेगा।'

जातिवाद और असमानता का गहरा संबंध है। असमानता को वैधता देने के लिए ही जाति-प्रथा का आविष्कार किया था। आर्थिक शोषण और असमानता का परिवेश जातिवाद पनपने के लिए बहुत ही मुफीद होता है। असमानता के माहौल में राजनीतिक पार्टियों के पास जनता के जीवन की बेहतरी के लिए कोई कारगर योजनाएं नहीं हैं। उनके पास जन-विकास के मुद्दे नहीं हैं। जाति के आधार पर गोलबंदी सबसे आसान तरीका है। और इसमें सत्ता पक्ष और विपक्ष सबका ही लाभ है।

आज सत्ता प्राप्त करने वाले राजनीतिक दल जातिवाद को बढ़ावा देते हैं। सत्ता प्राप्ति के लिए जाति के आधार पर जनता की गोलबंदी उनके लिए सबसे आसान और सुरक्षित रास्ता है। इसके लिए वे जाति के सम्मेलन करते-करवाते हैं। जाति के कथित नेताओं को राजनीतिक दलों में पदाधिकारी बनाया जाता है। टिकट देते वक्त क्षेत्र के जातीय समीकरणों का पूरा ख्याल रखा जाता है। जाति की धर्मशालाओं व अन्य संस्थाओं को खुलकर चन्दा दिया जाता है।

आरक्षण बनाम मेरिटोक्रेसी

कुलीन हितों के पोषक आरक्षण विरोधी मानसिकता के बुद्धिजीवियों ने एक बहुत ही भोंडा तर्क गढ़ रखा है, जिसमें उनका बौद्धिक दंभ और जातिगत दुराग्रह स्पष्ट तौर पर उजागर होता है। वह यह है कि आरक्षण शिक्षण-संस्थाओं व प्रशासन की योग्यता और गुणवत्ता को नकारात्मक रूप से प्रभावित करती है। इससे यह भ्रम पैदा करने की कोशिश करते हैं कि योग्यता और प्रतिभा उच्च वर्गों की बपौती है। ज्यों ही इस पर विचार करते हैं तो यह मिथक चूर चूर हो जाता है।

मेरिट या योग्यता का अवसरों की उपलब्धता से गहरा संबंध है। यदि किसी समाज को अवसर नहीं मिलेंगे तो उनमें वांछित योग्यता भी विकसित नहीं होती। जिस समाज को जो अवसर मिले, उन्होंने वैसा करने की योग्यता पैदा की। योग्यता कोई जन्मजात गुण नहीं है। समाज के वंचित वर्गों को जब अवसर मिला, तो वे योग्यता की कसौटी पर खरे उतरे हैं।

मंडल आयोग ने मोहन और लल्लू की पृष्ठ भूमि का तुलनात्मक विवेचन कर इसकी व्याख्या की है। मोहन एक खाते-पीते परिवार का लड़का है। उसके माता-पिता शिक्षित हैं। वह एक अच्छे पब्लिक स्कूल में जाता है। पढ़ने के लिए उसके पास अलग कमरा है। माता-पिता भी उसकी पढ़ाई में सहायता करते हैं। घर में रेडियो-टेलीविजन है। पत्र-पत्रिकाएं आती हैं। प्रभावशाली लोग उसके माता-पिता

के परिचित हैं, जो सही जगह दाखिले में उसकी मदद कर सकते हैं। इसके विपरीत लल्लू गांव में रहता है। माता-पिता अनपढ़ और गरीब हैं। दो कमरों की झोंपड़ी में आठ-आठ लोग रहते हैं। स्कूल की पढ़ाई करने के लिए उसे तीन किलोमीटर पैदल चलना पड़ता है। कॉलेज के लिए वह तहसील में अपने रिश्तेदार के यहां जाकर रहता है। दोनों को अगर एक ही तराजू में तौला जाए लल्लुओं की तुलना में, मोहन हमेशा आगे रहेंगे? अत: लल्लू के साथ रियायत से पेश आया जाए, उसके 40 प्रतिशत अंकों को मोहन के 60 प्रतिशत अंकों के बराबर माना जाए और नौकरी में उसके लिए आरक्षण की व्यवस्था की जाए, अन्यथा उसे कभी नौकरी मिल ही नहीं सकेगी।

विशेषतौर पर जिस तरह की योग्यता की बात करते हैं। वह एक छलावा है। ज्ञान का भी वर्ग चरित्र होता है। नौकरियों के लिए परीक्षाओं में सामान्य ज्ञान के नाम पर जो प्रश्न पूछे जाते हैं, वे आभिजात्य समाज से संबंध रखते हैं। आभिजात्य समाज की संस्कृति और जरूरतों की जानकारी को ही ज्ञान माने जाने वाली परीक्षा में पिछड़े तथा सामान्य वर्ग के ग्रामीण छात्र निश्चित रूप से शहरी आभिजात्य के मुकाबले में अच्छा नहीं कर सकते। यदि ग्रामीण और सामान्य जीवन शैली संबंधी जानकारी पूछी जाए तो वे शहरी आभिजात्य को अवश्य ही पछाड़ देंगे।

प्रो. रामनाथ ने उच्च-वर्ग के पूर्वाग्रहों को उजागर करते हुए लिखा है कि 'संघ लोक सेवा आयोग द्वारा सन् 1950 में आयोजित स्वतंत्र भारत की प्रथम आई ए एस परीक्षा में बंगाल के अच्युतानंद दास अनुसूचित जाति के प्रथम व्यक्ति थे जो आई ए एस के लिए सफल घोषित हुए। इस परीक्षा में मद्रास के एन. कृष्णन् को 260, ए. गुप्ता को 265 तथा ए. दास को मात्र 110 अंक मिले। लिखित परीक्षा को टाप करने वाले ए. दास को मौखिक परीक्षा में सभी आई ए एस व आई ए एस एलाइड परीक्षा में सफल अभ्यर्थियों से कम नंबर दिए गए। सामान्य ज्ञान (जी. के.) नामक 100 नंबर की लिखित परीक्षा में एन कृष्णन को 69, ए. गुप्ता को 40 तथा ए. दास को 79 अंक मिले। ... लिखित परीक्षा में ए. दास को ए. गुप्ता से 119 अंक अधिक मिले तथा मौखिक परीक्षा में ए. गुप्ता को ए. दास से 155 अंक अधिक मिले। यदि मौखिक परीक्षा में ए. दास को एन. कृष्णन से 10 अंक भी कम मिलते तो भी ए. दास टाप करते। लिखित परीक्षा में सफल सभी प्रत्याशियों से ए. गुप्ता को कम अंक मिलने पर भी 22वें स्थान पर तथा ए. दास को सर्वाधिक अंक मिलने पर भी उन्हें अन्तिम स्थान पर फेंक दिया गया।' (प्रो। रामनाथ, योग्यता मेरी जूती, पृ.-26)

'ए. दास से ही मिलता जुलता केस अनुसूचित जनजाति के 1954 की आई ए एस परीक्षा के प्रत्याशी आसाम के एस. जे. चोग का है। चोग को लिखित परीक्षा में 747 तथा रवीन्द्रनाथ सेनगुप्ता को 694 अंक मिले। सामान्य ज्ञान की लिखित परीक्षा में चोंग को 114 तथा सेनगुप्ता को मात्र 50 अंक मिले। परंतु व्यक्तित्व परीक्षा में जादू हो गया। चोंग को 160 तथा गुप्ता को 240 अंक मिले तथा इस प्रकार उन्हें भी ए. दास की तरह 64वें अर्थात अन्तिम स्थान पर फेंक दिया गया। गुप्ता के सामान्य ज्ञान में सभी प्रत्याशियों की लिस्ट में नीचे से सेकण्ड तथा पंजाब की स्नेहलता पुरी के नीचे से 3 था अंक थे परंतु वे भी सेनगुप्ता चोंग से व्यक्तित्व परीक्षा के बल पर बहुत आगे निकल गई। गुप्ता के ही समान लिखित परीक्षा में अंक पाए एस. के. चतुर्वेदी व डी.डी. बन्धोपाध्याय दोनों को व्यक्तित्व परीक्षा में 260 अंक मिले जिसके बल पर ही चतुर्वेदी ने 1954 की आई ए एस परीक्षा को टाप किया।' (प्रो। रामनाथ, योग्यता मेरी जूती, पृ.-27)

क्या आरक्षण दस साल के लिए ही किया गया था?

आरक्षण को समाप्त करने की वकालत एक तर्क यह भी है कि संविधान में आरक्षण का प्रावधान तो केवल मात्र दस साल के लिए ही किया गया था।

आरक्षण की श्रेणीया:

आरक्षण की तीन श्रेणियां हैं

1. राज्य की सेवाओं और पदों में आरक्षण
2. शैक्षणिक संस्थाओं में दाखिले में आरक्षण
3. लोकसभा व विधानसभा की सीटों में आरक्षण

इनमें से लोकसभा व विधानसभा की सीटों में आरक्षण की ही समय सीमा दस साल के लिए रखी गई थी और इसे संसद द्वारा स्थिति का मूल्यांकन करके आगे बढ़ाने का प्रावधान किया था।

शिक्षण संस्थाओं में दाखिले और राज्य की सेवाओं और पदों के आरक्षण में समय सीमा तय नहीं की गई थी।

असल में भारत में जाति के आधार पर शिक्षा, राज्य की सेवाओं व पदों और राजनीतिक सत्ता की हिस्सेदारी से दूर रखा गया था। और समाज में घोर अंसतुलन था। समाज का बहुत बड़ा हिस्सा इन प्रक्रियाओं से बाहर था। आरक्षण का उद्देश्य था इस अंसतुलन को दूर करना और यह तभी संभव होगा जब सभी समाजों की जनसंख्या के अनुपात में प्रतिनिधित्व व हिस्सेदारी सुनिश्चित हो। जब तक यह उद्देश्य पूरा नहीं हो जाता तब तक यह जारी रहना चाहिए।

पिछड़े वर्गों में शामिल होने की एक प्रकिया है जिसका पालन करना होगा। राज्य व केंद्रीय पिछड़े वर्गों की सूची में शामिल होने के लिए मानदण्ड पूरे करने होंगे। सामाजिक-शैक्षणिक पिछड़ेपन के मानदण्डों पर ये खरे नहीं उतरते। लेकिन अपनी संख्या और राजनीतिक ताकत के बल पर आंदोलन करने की क्षमता इनके पास है। सरकारें और राजनीतिक चुनावी गणित को ध्यान में रखते हुए निरंतर इनको झांसे में रखती हैं विशेषतौर पर चुनावों के मौके पर समझौता कर लेती हैं और आंदोलन के लिए पृष्ठभूमि तैयार हो जाती है। पिछले दस साल से चूहे-बिल्ली का यह खेल जारी है।

आरक्षण का विरोध कौन करता है।

आरक्षण-विरोध और सवर्ण जातियों का गहरा संबंध है। यह बात न केवल आम व्यवहार में दिखाई देती है, बल्कि सन् 1985 में आन्ध्रप्रदेश में वारंगल स्थित काकतीय विश्वविद्यालय के शिक्षा-विभाग के श्रीपरमा जी के नेतृत्व में अनेक विश्वविद्यालयों का इस संबंध में सर्वेक्षण किया और पाया कि 'आरक्षण की नीति के समर्थकों और उसके आलोचकों की जातीय पृष्ठभूमि का विश्लेषण करने से यह स्पष्ट होता है कि ऊंची जातियों में आरक्षण विरोध में घनिष्ठ

संबंध है और नीची जातियों में आरक्षण का समर्थन स्पष्ट है। इस मामले में एक अपवाद गैर-दक्षिणपंथी राजनीतिक कार्यकर्ताओं का है जो बिना जातीय पृष्ठभूमि के आरक्षण का समर्थन करते हैं।' (बर्धन, ए बी, वर्ग, जाति आरक्षण और जातिवाद के खिलाफ संघर्ष, पृ.-41(जातीय आरक्षण और उस पर अमल, परमा जी, पृ.-177)

'सन् 1978 में बिहार में तथाकथित अगड़ी जातियों (एफ सी) और पिछड़ी जातियों (बी सी) में हिंसात्मक आमना-सामना हुआ, जबकि पिछड़े वर्गों के लिए नौकरियों में आरक्षण बढ़ाया गया था ...'सन् 1980 में गुजरात में आरक्षण-विरोधी आन्दोलन भड़क उठा। फिर 1984-85 में मध्य प्रदेश तथा गुजरात आरक्षण-विरोधी तथा आरक्षण-समर्थक आन्दोलन से हिल गए। खास तौर से गुजरात में यह आन्दोलन न केवल महीनों तक चला अपितु उसने हिंसात्मक एवं घिनौना साम्प्रदायिक रूप ले लिया।' (बर्धन, ए बी, वर्ग, जाति आरक्षण और जातिवाद के खिलाफ संघर्ष, 35)

सन् 1986 में आन्ध्रप्रदेश की एन टी रामाराव की सरकार द्वारा अन्य पिछड़ी जातियों के लिए आरक्षण बढ़ाने का विरोध 'आन्ध्र प्रदेश नवसंघर्षण समिति' बनाकर किया।

सन 2004-05-06 में जब सुप्रीम कोर्ट ने केन्द्रीय शिक्षण संस्थानों में अन्य पिछड़ी जातियों को दाखिले देने के लिए जोर दिया तो इसके विरुद्ध यूथ फार इक्वलिटी आदि की लुभावनी शब्दावली में आरक्षण का विरोध किया गया।

आरक्षण के विरोध में आंदोलन किए गए। लेकिन सीधे-सीधे आरक्षण-विरोधी अपने उद्देशयों में सफल नहीं हुए तो उन्होंने एक तरीका ढूंढा और उसी रणनीति पर वर्तमान में पटेल, मराठा और जाट आरक्षण आंदोलन के नेता काम कर रहे हैं। अपने लिए आरक्षण मांगने का अर्थ है कि या तो हमें भी इसमें शामिल किया जाए या ये समाप्त हो।

ये जातियां मुख्यत: किसानी जातियां हैं शासन-नीतियों के चलते जिन पर आर्थिक संकट है, लेकिन यह एक दिलचस्प बात है कि इसका समाधान वे आरक्षण में ढूंढ रहे हैं।

यदि सरकारों की कमजोरी और अपनी ताकत के बल पर आरक्षण मिल भी जाता है तो भी यह गरीबी-बेरोजगारी की समस्या का समाधान नहीं है। आरक्षण के माध्यम से सरकारी क्षेत्र में ही रोजगार मिल सकता है जो कुल जनसंख्या का बहुत ही कम हिस्सा है। और उसमें आरक्षित पद तो और भी कम हैं। ये बात समझने की महती आवश्यकता है कि आरक्षण गरीबी उन्मूलन का नहीं, बल्कि सदियों से जाति के आधार पर राज्य-प्रशासन की गतिविधियों से दूर रखी गई बहुत बड़ी आबादी को प्रतिनिधित्व देने का एक उपाय भर है ताकि सच्चे मायने में राष्ट्र-निर्माण हो सके।

सामाजिक तौर पर अगड़ी लेकिन शैक्षणिक व आर्थिक तौर पर पिछड़ी जातियों से गरीबी-बेरोजगारी दूर करने के लिए सरकारें छात्रवृतियां और अन्य किस्म की आर्थिक विकास की योजनाएं बनाकर इन्हें राहत दे सकती हैं।

बहुत से लोग इन आंदोलनों से हुए नुक्सान को देखकर यह भी कहने लगे हैं कि आरक्षण ही समस्या की जड़ है इसे समाप्त कर देना चाहिए। लेकिन यह विचार सामाजिक न्याय के बिल्कुल खिलाफ है। आरक्षण को तब तक समाप्त न किया जाए जब तक कि जब तक ये वर्ग खुली प्रतिस्पर्धा करने के लिए सक्षम न हो जाएं और अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और पिछड़े वर्गों का केंद्रीय और राज्य सरकार की सेवाओं के सभी कैडर में उनका प्रतिनिधित्व उनकी जनसंख्या के अनुपात के बराबर न पहुंच जाए। ●

सम्पर्क-94164-82156

हरियाणा में नौकरियां

1. सरकारी आंकड़ों के अनुसार केंद्र सरकार, राज्य सरकार, अर्ध सरकारी हरियाणा में कुल सरकारी नौकरियां, जिनमें हैं, 1995-96 के उच्चतम स्तर 4,25,462 एवं स्थानीय निकायों की नौकरियां शामिल से साल दर साल घटते हुए 31 मार्च 2015 में घटकर 3,66,829 रह गई थीं। यानी इन 19 सालों में बढ़ने की बजाय हर साल 3100 सरकारी नौकरियां कम होती गईं। जबकि इस बीच राज्य की आय में 4 गुना से ज्यादा की बढ़ौतरी हो गई थी। (स्थिर कीमतों पर, बाजार भाव पर तो 14 गुना से ज्यादा की बढ़ौतरी है)। यानी हमारी आर्थिक नीतियां ऐसी हैं कि अर्थव्यवस्था तो चौगुनी हो गइई पर सरकारी नौकरियां घट गईं। ये हरियाणा सरकार के आंकड़े हैंजो http://esaharyana.gov.in/Data/StateStatisticalAbstract/StatisticalAbstract%282014-15%29.pdf पर उपलब्ध हैं। (पृष्ठ 492) इस दौरान हर तरह की सरकारी नौकरी में कमी हुई है। हरियाणा में केंद्र सरकार की नौकरियां 32,686 से घटकर 19,359 रह गई हैं और राज्य सरकार की नौकरियां 2,53,791 से घटकर 2,39,810 रह गई हैं। अगर सार्वजनिक क्षेत्र की नौकरियां के साथ संगठित निजी क्षेत्र (यानी सारा सहकारी क्षेत्र एवं निजी क्षेत्र के वे सारे संस्थान जिनमें 10 से ज्यादा लोग काम करते हैं) की नौकरियां भी मिला लें, तो यह 1995-96 के 6,62,709 से घट कर 2005-6 में 6,35,355 रह गई थीं। यानी इनमें भी बढ़ौतरी की बजाय प्रति वर्ष 2700 से ज्यादा नौकरियां कम हुई हें। यानी सरकार और (ढंग की नौकरी-किसी के घर या रेहड़ी पर काम वाली नौकरी को छोड़ कर) गैर-सरकारी दोनों मिलाकर भी नौकरियां बढ़ने की बजाय घटी हैं। इन हालात में युवा जाए तो कहां जाए, करे तो क्या करे? 2006 के बाद जरूर निजी एवं सार्वजनिक दोनों को मिलाकर संगठित क्षेत्र के रोजगार में कुछ वृद्धि अवश्य हुई है और यह 31 मार्च 2015 को 8,35,820 थी।

2. आइये, सरकारी और संगठित रोजगार के इन आंकड़ों को आबादी के अनुपात में देखें। 1996 में हरियाणा की लगभग सवा दो प्रतिशत आबादी को सरकारी नौकरी मिली हुई थी, 2015 में यह अनुपात घट कर लगभग आधा, यानी 1.32 प्रतिशत रह गया। यानी 2 लाख 60 हजार नौकरियां लुप्त हो गई हैं। 1996 में हरियाणा के 100 व्यक्तियों में से 3.5 प्रतिशत लोगों को संगठित क्षेत्र में नौकरी उपलब्ध थी और 2015 में यह घट कर 3 प्रतिशत से कम रह गई। क्या इसे विकास कहना चाहिए? राज्य की जी.डी.पी. बढ़ी है परन्तु ढंग का रोजगार (जिसका मतलब केवल सरकारी नौकरी, अपितु घरेलू किस्म की नौकरी छोड़ कर हर ऐसे संस्थान में नौकरी शामिल हैं, जिस पर कोई सरकारी कानून कायदे लागू होते हैं), नहीं बढ़ा है।

सद्भावना मंच 15 मई 2016 को रिपोर्ट से साभार

(फरवरी 2016 में हरियाणा में जाट आरक्षण आंदोलन को लेकर हिंसा हुई। जिसने हरियाणा के समाज को विचलित कर दिया। इस घटनाक्रम से चिंतित न्याय प्रिय नागरिकों और संगठनों ने 5 मार्च 2016 को पानीपत में मिलकर हरियाणा में न्याय, सुरक्षा और शांति के लिए सद्भावना मंच गठित किया और घटनाओं की निष्पक्ष जांच के लिए सात सदस्यीय जन आयोग का गठन किया। इसमें वी.एन1 राय पूर्व पुलिस महानिदेशक हरियाणा, टी.के. शर्मा पूर्व मंडल आयुक्त गुड़गांव, डा. मेहर सिंह पूर्व प्रधान वन संरक्षक केरल, राममोहन राय एडवोकेट सर्वोच्च न्यायालय, शुभा लेखक एवं पूर्व कालेज प्राचार्य, राजीव गोदारा एडवोकेट पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय, डा. राजेंद्र चौधरी सेवानिवृत प्रोफेसर महार्षि दयानंद विश्वविद्यालय रोहतक।

जनायोग ने हरियाणा के हिंसाग्रस्त क्षेत्रों में जन सुनवाईयां की और 15 मई 2016 को रिपोर्ट पेश की। प्रस्तुत है इस रिपोर्ट कुछ अंश-सं.)

जाट आरक्षण आंदोलन

इतिहास व कानूनी पक्ष

1. हरियाणा में फरवरी 2016 में घटित घटनाक्रम की विवेचना से पहले जाट आरक्षण की मांग के इतिहास और इसके कानूनी पक्ष को समझना जरूरी है। जाट आरक्षण की मांग के पूरे इतिहास में न जाकर हम शुरुआत पिछले दो दशकों के पुनरावलोकन से करते हैं। इसके लिए इस विषय पर उच्चतम न्यायालय के 2015 के जाट आरक्षण पर आए फैसले को आधार बनाया जा सकता है। (Supreme Colurt WRIT PETITION (CIVIL) No. 274 of 2014, फैसले की तारीख 17 मार्च 2015)। इस फैसले से आरक्षण, खासतौर से पिछड़े वर्ग/जातियों के आरक्षण के कानूनी पक्ष और जाट आरक्षण के इतिहास पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। यहां की गई विवेचना मूलत: सुप्रीम कोर्ट के इस फैसले पर आधारित है।

2. कानूनी रूप से किसी भी वर्ग/जाति को पिछड़े वर्ग में शामिल करने या किसी भी वर्ग/जाति को पिछड़ा वर्ग आरक्षण से बाहर करने के लिए केंद्रीय सरकार राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग से सलाह लेती है और पिछड़ा वर्ग आयोग द्वारा प्रयोग किए जाने वाले पिछड़ापन नापने के पैमाने भी अदालत द्वारा तय किए जा चुके हैं। अक्तूबर 1999 में राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग ने राजस्थान के कुछ जिलों के जाटों को छोड़कर अन्य राज्यों के जाटों को पिछड़े वर्ग की केंद्रीय सूची में शामिल करने से इन्कार कर दिया था। फिर नवम्बर 2010 में दिल्ली के जाटों को केंद्रीय सूची में शामिल करने की मांग भी रद्द कर दी गई। परन्तु शीघ्र ही, 3 मई 2011 को यूपीए की केंद्रीय सरकार ने नियम (The National Commision for Backward Classes (Power to review advice) Rules, 2011 बनाकर पिछड़ा वर्ग आयोग द्वारा अपनी सलाह की पुन: समीक्षा का मार्ग खोल दिया।[1]

3. इसके चलते जाटों को पिछड़े वर्ग में शामिल करने की मांग राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग के पास विचारार्थ दोबारा आ गई। उन्होंने पहले तो यह तय किया कि वह राष्ट्रीय स्तर पर जारी जातिगत जनगणना के आंकड़े आने का इंतजार करेंगे, लेकिन फिर इस मांग के मूल्यांकन के लिए उन्होंने एक प्रख्यात शोध संस्थान (इंडियन कौंसिल आफॅ सोशल साइंसेज एंड रिसर्च) को जाटों की सामाजिक स्थिति का अध्ययन करने के लिए कहा। फिर शीघ्र ही उस संस्थान को इसके लिए व्यापक पैमाने पर अध्ययन न करके, छोटे सर्वेक्षण के आधार पर अपनी सलाह देने को कहा। चलते-चलते स्थिति यह बनी कि अंतत: शोध संस्थान को नए आंकड़े एकत्र न करके उपलब्ध आंकड़ों के आधार पर अपनी राय देने को कहा गया। उक्त शोध संस्थान ने अपनी रिपोर्ट में कोई सिफारिश नहीं की, मगर हरियाणा के जस्टिस के सी. गुप्ता द्वारा राज्य में जाटों को आरक्षण दिए जाने की सिफारिश (जो सांगवान कमेटी के अध्ययन को आधार बनाकर की गई थी) के अनुसार यह कहा कि हरियाणा के जाटों का नौकरियों में हिस्सा उनकी जनसंख्या के नजदीक है, मगर वह शिक्षा के स्तर पर पिछड़ा है। राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग ने इंडियन कौंसिल आफॅ सोशल साइंसेज एंड रिसर्च संस्थान के तथ्यों को सही नहीं पाया, क्योंकि सांगवान कमेटी के अध्ययन में जाटों की तुलना अगड़ी जातियों से की थी न कि पिछड़ी जातियों से। राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग ने विशेषज्ञों द्वारा की गई आंकड़ों की समीक्षा एवं कुछ जगह हुई जन-सुनवाई के आधार पर 26 फरवरी 2014, बुधवार, को अपनी सलाह केंद्र सरकार को दे दी, जिसमें जाट आरद्वाण की मांग को स्वीकार करने का कोई आधार न होने के चलते इसे अस्वीकार करने की सलाह दी। यह तथ्य राम सिंह केस में सुप्रीम कोर्ट के फैसले के पेज 26-27 पर दर्ज है।[2] तीन दिन बाद, इतवार 2 मार्च 2014 को यूपीए सरकार ने एनसीबीसी की सलाह को केवल यह कह कर ठुकरा दिया कि यह 'जमीनी हकीकत से मेल नहीं खाती'। इसके पक्ष में केंद्रीय सरकार ने कोई शोध या नए आंकड़े पेश नहीं किए। 4 मार्च 2014 को, केंद्रीय सरकार ने 9 राज्यों में जाट जाति को ओबीसी सूची में शामिल करने की अधिसूचना जारी कर दी। अगले दिन ही आम चुनावों की घोषणा हो गई। केंद्र के इस फैसले को उच्चतम न्यायालय में चुनौती दी गई और देश की सर्वोच्च अदालत ने केंद्रीय सरकार की अधिसूचना को 17 मार्च 2015 को राम सिंह केस में निर्णय सुनाते हुए रद्द कर दिया। उच्चतम न्यायालय के इस निर्णय में हरियाणा के के.सी. गुप्ता आयोग की रिपोर्ट पर भी

उंगली उठाई थी, जिसके आधार पर हरियाणा सरकार ने हरियाणा में जाटों समेत पांच जातियों को आरक्षण दिया था। इससे हरियाणा में जाटों एवं अन्य चार जातियों को दिए गए आरक्षण पर भी प्रश्न-चिन्ह लग गया।

4. हरियाणा में गुरनाम सिंह कमीशन की 30.12.90 को दी गई सिफारिश पर हरियाणा सरकार ने 5.2.91 को 10 जातियों- अहीर, बिशनोई, मेव, गुज्जर, जाट, जाट सिक्ख, रोड़, सैनी, त्यागी एवं राजपूत-को पिछड़ी जाति घोषित कर दिया था।[3] सरकार ने इन जातियों को आरक्षण देने के आदेश 5.4.91 को जारी किए। इसके बाद हुए विधान सभा चुनावों में सरकार बदल गई और भजन लाल सरकार ने 12.9.91 को इन आदेशों को स्थगित कर दिया। नई सरकार ने दूसरे पिछड़ा वर्ग आयोग का गठन किया एवं इसकी सिफारिश के आधार पर 7.6.95 को अहीर/यादव, मेव, गुज्जर, सैनी एवं लोढ़/लोढ़ा को पिछड़े वर्ग में शामिल कर लिया। जुलाई 1995 में पिछड़े वर्ग को दो खंडों में बांटकर इन नई शामिल जातियों को 11 प्रतिशत आरक्षण दे दिया गया। इसके बाद समय-समय पर जाटों को आरक्षण का लाभ देने की मांग उठती रही। धीरे-धीरे हरियाणा में जाटों को आरक्षण दिए जाने को लेकर आंदोलन जोर पकड़ने लगा। 2010 और 2011 में आंदोलन का केंद्र-बिन्दु मैय्यड़ (हिसार) था। इस दौरान सड़कें और रेल कई दिन तक पूरी तरह जाम रहे। इसी दौरान मैय्यड़ में पुलिस की गोली से एक युवक मारा भी गया। तत्कालीन मुख्यमंत्री भूपेंद्र सिंह हुड्डा ने आरक्षण देने का वायदा करके आंदोलन समाप्त करवा दिया। इसके बाद 8.4.11 को जस्टिस के.सी. गुप्ता कमीशन गठित किया गया। गुप्ता कमीशन के लिए पहले चंडीगढ़ स्थित सैंटर फार रिसर्च इन रुरल एंड इंडस्ट्रियल डेवलपमेंट को शोध करने की जिम्मेदारी दी गई। परन्तु बाद में इस हेतु महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय के प्रो. खजान सिंह सांगवान नेतृत्व में शोध करवाया गया, जिसके आधार पर गुप्ता कमीशन ने अपनी सिफारिशें दीं।[4] इन सिफारिशों के आधार पर हुड्डा सरकार ने 23 जनवरी 2013 को हरियाणा में जाटों समेत 5 जातियों (जाट, जट सिक्ख, त्यागी, रोड़ एवं बिशनोई) को विशेष पिछड़ा वर्ग बनाकर आरक्षण देने का निर्णय लिया गया था। आम धारणा है कि पहले से पिछड़े वर्गों को उपलब्ध मौकों में कटौती न हो इसलिए जाटों इत्यादि को पिछड़ा वर्ग में शामिल न करके विशेष पिछड़ा वर्ग बनाकर अलग से आरक्षण दिया गया था। इसी दिन गैर आरक्षित सीटों में 10 प्रतिशत सीटें सामान्य वर्ग की जातियों के लिए आर्थिक आधार पर आरक्षित करने का फैसला भी हुड्डा सरकार ने किया।

5. सर्वोच्च न्यायालय के राम सिंह केस में दिए गए फेसले के पश्चात हरियाणा सरकार द्वारा जारी अधिसूचना दिनांक 24 जनवरी 2013 को पंजाब व हरियाणा हाईकोर्ट में चुनौती दी गई। हाईकोर्ट ने हरियाणा सरकार का आरक्षण देने का उक्त निर्णय उच्चतम न्यायालय के आदेश के आधार पर अंतरिम आदेश देकर उच्च न्यायालय ने CWP No. 9132 of 2015 में दिए गये अपने फैसले 27.7.15 में हरियाणा सरकार द्वारा जाटों समेत 5 जातियों को आरक्षण देने के निर्णय को स्थगित कर दिया। अब हरियाणा सरकार ने 31 मार्च 2016 को अधिसूचना जारी कर विशेष पिछड़ा वर्ग को 10 प्रतिशत आरक्षण देने वाली 24 जनवरी 2013 की अधिसूचना को वापिस ले लिया है। इसलिए अब CWP No. 9132 of 2015 निरस्त हो गई है, परन्तु CWP No. 2441 of 2014 जिसमें आर्थिक रूप से पिछड़े वर्ग को दिए गए आरक्षण को चुनौती दी गई थी, वह अब भी लंबित है।

अदालत के फैसले के बाद आरक्षण का आंदोलन

1. सुप्रीम कोर्ट द्वारा केंद्र की ओबीसी सूची में जाटों को शामिल करने के निर्णय के निरस्त होने और हाईकोर्ट द्वारा हरियाणा सरकार के जाटा सहित चार अन्य जातियों को विशेष वर्ग के तहत दिये आरक्षण पर स्टे होने के बाद विभिन्न जाट संगठनों व खाप पंचायतों ने दोबारा से जाट आरक्षण की मांग उठानी शुरू कर दी। इसके लिए विभिन्न स्तरों पर एकजुटता व लामबंदी न केवल दोबारा से मांग उठानी शुरू कर दी, अपितु इसे तुरंत पूरी करने का दबाव भी बनाने लग गए। सुप्रीम कोर्ट का फैसला 17 मार्च 2015 को आया और 27 जुलाई 2015 को हाईकोर्ट का फैसला आया था, परन्तु साल पूरा होने से पहले ही हरियाणा धधक उठा था। जाट आरक्षण के लिए कई सारे जाट संगठन (समाचार-पत्रों में कम से कम इन संगठनों के नाम आए हैं-अखिल भारतीय जाट आरक्षण संघर्ष समिति, जाट संघर्ष समिति, समस्त जाट सभा, आदर्श जाट महासभा, आरक्षण संघर्ष समिति, अखिल भारतीय जाट महासभा)[5] आंदोलनरत हो गए। इन संगठनों के अलावा कई खाप भी आंदोलन में शामिल रही हैं। लगभग सभी जाट नेता, चाहे वे किसी भी पार्टी में रहे हों, जाट-आरक्षण के समर्थक हो गए। सभा-सम्मेलनों में यह कहना आम हो गया कि पार्टी बाद में, पहले समाज (यानी कि जाति पहले)। हुड्डा सरकार द्वारा विशेष पिछड़े वर्ग के रूप में जाटों एवं अन्य पांच जातियों को 27 प्रतिशत से अलग दिए गए आरक्षण के रद्द हो जाने के चलते, एवं कानूनी स्थिति की बेहतर समझ के चलते इस बार जाट समुदाय से पिछड़े वर्ग में ही, यानी 27 प्रतिशत में ही शामिल करने की बात उठने लग गई। इससे वर्तमान में 27 प्रतिशत आरक्षण में शामिल जातियों, विशेष तौर पर हरियाणा में पिछड़ा वर्ग खंड 'ब' में शामिल कृषक पृष्ठभूमि की जातियों को, लगा कि अगर जाट आरक्षण की मांग स्वीकार हो जाती है तो उनके लिए रोजगार के अवसर प्रभावित होंगे और वे जाटों को पिछड़ों में शामिल करने का विरोध करने लग गईं। इस खेमे का नेतृत्व भाजपा सांसद श्री राज कुमार सैनी करने लग गए। हालांकि अन्य पार्टियों के पिछड़ी जातियों के नेता भी इस विरोध में शामिल हो गए, जैसे कांग्रेस नेता कैप्टन अजय यादव। कांग्रेस, इनैलो और भाजपा तीनों में जातिगत आधार पर पार्टी के अंदर से ही जाट-आरक्षण आंदोलन का समर्थन और विरोध दोनों होने लगे। शासक पार्टी होने के बावजूद, भाजपा के नेता, मंत्री, विधायक और सांसद, जातिगत आधार पर न केवल जाट आरक्षण के पक्ष और विपक्ष में बोलते रहे अपितु जमीन पर जातीय लामबंदी में भी शामिल रहे।

2. अदालतों में जाट-आरक्षण रद्द होने के बाद, हरियाणा में चले जाट आंदोलन के पक्ष एवं विपक्ष में, मुख्य तौर से दो वर्ग सक्रिय थे-एक जो आरक्षण मांग रहे थे, दूसरे जिन को जाटों के पिछड़े वर्ग में शामिल

होने से नुक्सान होने की आशंका थी, बाकि समाज के विभिन्न वर्गों के विवेकशील लोग हाशिये पर थे। आरक्षण का विमर्श जातिवादी विमर्श की तरफ मुड़ गया, उग्र जातिवादी विष वमन के लिए दोनों तरफ के नेता/संगठन जिम्मेदार हैं। एक ओर श्री राज कुमार सैनी (और उनके अन्य साथी नेताओं) ने कई बार गाली-गलौच एवं चुनौती देने वाली भाषा प्रयोग की,[6] तो दूसरी और कई आंदोलनकारी जाट नेताओं द्वारा प्रयोग की गई अशोभनीय एवं चुनौती देने वाली भाषा ने भी जातिवादी विद्वेष फैलाने का काम किया।[7] मुख्यमंत्री श्री मनोहर लाल खट्टर को 'पाकिस्तानी' कहना इसका एक छोटा सा उदाहरण है[8] (हालांकि मुख्यमंत्री द्वारा कथित तौर पर हरियाणावासियों की बौद्धिक क्षमता पर सवाल उठाने को भी सही नहीं ठहराया जा सकता।)[9] जाट देवता/जाट बटेऊ जिंदाबाद या जाट बलवान के नारे भी परस्पर सद्भाव को बढ़ावा नहीं देते।[10] असल में नारों का शब्द-चयन ही नहीं, संदर्भ भी यह तय करता है कि उसका असर क्या होगा। कुल मिलाकर जाट आरक्षण की मांग और इसका विरोध, दोनों मुख्य तौर पर शक्ति प्रदर्शन आधारित हो गए। एक ओर ओ.बी.सी. ब्रिगेड का गठन होने लगा तो दूसरी ओर 'जाट सेना', 'जाट बलिदानी जत्था', 'जाट महिला कमांडो' का प्रशिक्षण होने लगा।[11] एक ओर दिल्ली का दाना-पानी बंद करने की धमकी दी जाने लगी तो दूसरी ओर सिर पर रखकर दिल्ली को दूध-सब्जी पहुंचाने का दावा किया जाने लगा।[12] आरक्षण की मांग के समर्थन में जाट आरक्षण आंदोलनकारी सबसे आगे था, परन्तु हुड्डा सरकार के आरक्षण संबंधी निर्णय पर हाईकोर्ट के स्टे लगा दिए जाने से प्रभावित अन्य 4 जातियों के नेता भी गाहे बगाहे जाट संगठनों के साथ या अलग से आंदोलन करते रहे।[13]

3. अन्ततः जनवरी 2016 में हुए पंचायती चुनावों से फारिग होते ही, कई जाट संगठनों ने आंदोलन के अपने-अपने कार्यक्रम तय कर लिए। नरवाना में 7 फरवरी 2016 को महापंचायत करके अनशन शुरू किया गया और मैय्यड़ में 12 फरवरी को धरने-प्रदर्शन और रेल-रोको से इसकी शुरुआत हुई, परन्तु ये दोनों आंदोलन भाजपा के जाट नेताओं के आश्वासनों के बाद शीघ्र ही खत्म कर दिए गए।[14] इसके बाद श्री भूपेंद्र सिंह हुड्डा के हल्के सांपला में 14 फरवरी 2016 को स्वाभिमान रैली हुई और जाट आरक्षण आंदोलन एक नए दौर में प्रवेश कर गया। 14 फरवरी के पश्चात् विभिन्न जिलों में अलग-अलग सड़कों पर जाम लगाने शुरू कर दिए गए। रोहतक जिला में बड़ी कठोरता से सड़कें अवरुद्ध हो गई। मय्यड़ में भी दोबारा से रेल एवं रोड जाम कर दिये गए। 17 तारीख तक जिला रोहतक, सोनीपत, झज्जर, हिसार में अनेक राष्ट्रीय राज मार्ग एवं राज्य मार्ग एवं जिले की मुख्य सड़कें भी रोक दी गई। रेल सेवाओं को बंद करना पड़ा, जिससे अंतर्राजीय आवागमन प्रभावित हुआ। ट्रकों के पहिए थम गए। इक्का-दुक्का जगह कुछ ट्रकों को नुकसान भी पहुंचाया गया। हालांकि 17 फरवरी तक आंदोलन प्रत्यक्ष रूप से हिंसक नहीं हुआ, परन्तु इस दौरान जन जीवन अस्त-व्यस्त हो गया। 17 फरवरी को जाट आरक्षण समितियों एवं जाट खापों के नुमाइंदों को मुख्यमंत्री हरियाणा ने बातचीत हेतु बुलाया। मुख्यमंत्री ने कहा कि अधिकारियों की एक समिति आरक्षण के मुद्दे पर विचार कर रही है। उसकी रिपोर्ट आने पर आरक्षण की समस्या का समाधान कर दिया जाएगा। इसके साथ ही आर्थिक आधार पर आरक्षण देने की बात कही। उपस्थित प्रतिनिधियों ने इस पर कोई ठोस आश्वासन नहीं दिया। सरकार द्वारा प्रस्तावित आर्थिक पिछड़े वर्ग हेतु आरक्षण बढ़ाने और जाट जाति को इसका फायदा देने के लिए उसकी आय-सीमा 6 लाख तक करने के प्रस्ताव पर कई नेता तो तैयार थे, परन्तु युवा इसके लिए तैयार नहीं हुए और चंडीगढ़ से वापसी के दौरान उन्हें भी उनका रोष सहना पड़ा। उनके लिए भी रास्ते नहीं खोले गए जिसके चलते वे रात 2.30 बजे ही रोहतक पहुंच पाए। उनके अनुसार इसके बाद किसी आंदोलनकारी नेता की हिम्मत नहीं हुई कि वह आंदोलनकारियों को पीछे हटने के लिए कह सके। एक आंदोलनकारी के अनुसार 18 फरवरी दोपहर के बाद यह आंदोलन नहीं रह गया था एवं अराजक स्वयंभू नेताओं के हाथ में चला गया था। उन्होंने सरकार पर निष्ठावान लोगों से बातचीत करने की बजाए, ऐसे लोग, जिनको मनमाफ़िक ढाला जा सके, से ही बातचीत करने का आरोप भी लगाया। प्रत्यक्ष हिंसा की शुरुआत 18 तारीख से होती है, यह तो चिन्हित किया गया है और इसके लिए कुछ ख़ास घटनाओं को रेखांकित किया जाता है, परन्तु इस विषय पर भी विचार एवं जांच करने की जरूरत है कि क्या 18 तारीख से शुरू हुई प्रत्यक्ष हिंसा में 17 तारीख को मुख्यमंत्री से हुई आरक्षण आंदोलनकारियों से हुई बातचीत, उस बातचीत में शामिल होने वाले लोगों में किसी खास संगठन या नेता के समर्थकों के वर्चस्व की भी कोई भूमिका रही? एक उच्च स्तर के अधिकारी के अनुसार सरकार की ओर से बैठक के लिए आमंत्रित लोगों की सूची को सरकार के जाट समुदाय के दो मंत्रियों को दिखाने के लिए कहा गया था। यह भी समाचार पत्रों में प्रकाशित हुआ कि आरक्षण आंदोलन के कुछ नेताओं ने इस बैठक का बहिष्कार किया। इसके साथ ही आंदोल एक नए दौर में प्रवेश कर गया।

1. http://socialjustice.nic.in/pdf/ncbcact1993.pdf पर यह दस्तावेज उपलब्ध है।

2. http://www.ncbc.nic.in/writereaddata/Supreme%20Court%20Judgement2015%20Jat%20Caste635647145288159656.pdf

3. ये तथ्य हरियाणा विधान सभा में 29 मार्च 2016 को प्रस्तुत 2016 के बिल.3- HLA (जिससे बोलचाल की भाषा में जाट आरक्षण बिल कहा जा रहा है) से लिए गए हैं।

4. http://haryanascbc.gov.in/writereaddata/Document/1_31_1_50607-scbc.pdf

5. अमर उजाला, रोहतक फरवरी 118, 2016, पृष्ठ 2

6. वीडियो सबूत 1, 2 एवं 3। ये सब एवं आगे वर्णित वीडियो सबूत आयोग के पास उपलब्ध हे। ये सब वीडियो विभिन्न व्यक्तियों द्वारा आयोग को उपलब्ध करवाए गए हैं। आयोग के पास इतने संसाधन एवं अवसर नहीं था कि इनकी फॉरेंसिक जांच करवाई जाती। आयोग यह मान कर इनका प्रयोग कर रहा है कि इनसे कोई छेड़छाड़ नहीं की गई है। वैसे भी आम तौर पर किसी महत्वपूर्ण तथ्य को स्थापित करने के लिए आयोग ने किसी एक वीडियो को आधार नहीं बनाया गया है।

7. वीडियो सबूत 4

8. अमर उजाला, रोहतक दिनांक अगस्त 24, 2015 झज्जर

9. मुख्यमंत्री के ऐसे कथन की चर्चा रही है परन्तु इस का कोई सबूत आयोग को उपलब्ध नहीं हुआ। वीडियो सबूत 10 में श्री हवा सिंह इसका दावा करते हैं।

10. वीडियो सबूत 5

11. द ट्रिब्यून अगस्त 17, 2015 (Jat to raise sena to launch quata stir) एवं अगस्त 22, 2015 (Jat Sacrifice Brigade fromed to counter OBCs)

12. दैनिक भास्कर, अगस्त 17, 2015 हिसार एवं गोहाना से रिपोर्ट।

13. दैनिक भास्कर, अगस्त 24, 2015 पानीपत से रिपोर्ट।

14. दैनिक जागरण, रोहतक 20 फरवरी पृ. 1

(योगेन्द्र यादव का हरियाणा में जाट-आरक्षण के दौरान आगजनी व हिंसा के बाद 25 मार्च 2016 को हरियाणा के मुख्यमंत्री के नाम पत्र)

आरक्षण विवाद

हरियाणा के मुख्यमंत्री को एक रचनात्मक सुझाव

25 मार्च 2016

श्री मनोहर लाल
मुख्यमंत्री, हरियाणा सरकार
चंडीगढ़

विषय-'जाट आरक्षण' के सवाल पर एक रचनात्मक सुझाव

आदरणीय मनोहर लाल जी,

इस पत्र के माध्यम से मैं आपको प्रदेश के एक महत्वपूर्ण, कठिन और नाजुक सवाल पर अपना सुझाव दे रहा हूं। पिछले दिनों सदभावना मंच के साथियों के साथ मैंने प्रदेश के सभी हिंसा प्रभावित इलाकों की यात्रा की, सभी पक्षों से बात की। इस यात्रा के अनुभव से मुझे लगता है कि 'जाट आरक्षण' के पक्ष और विपक्ष में खड़े लोगों का आग्रह अभी बहुत तीखा है। इस सवाल पर जातीय गोलबंदी हो रही है। प्रदेश में पहले ही बहुत जातीय तनाव है। मुझे चिंता है कि यदि इस मुद्दे को सही तरीके से न सुलझाया गया तो प्रदेश में सामाजिक द्वेष बढ़ सकता है। इसलिए मैं आपके सामने एक रचनात्मक प्रस्ताव रखना चाहता हूं जो तर्कसंगत और न्यायसंगत है और जो सभी पक्षों को मान्य हो सकता है। प्रस्ताव का मूल विचार नीचे बिंदु 8 में है, पहले उसका तर्क और बाद में उसका विस्तृत निरूपण है।

2. पिछले महीने जाट आरक्षण की मांग को लेकर हुए आंदोलन और व्यापक हिंसा के बाद आपकी सरकार ने यह घोषणा की थी कि जाट आरक्षण की मांग को स्वीकार कर लिया गया है। मीडिया में जो रिपोर्ट आ रही है, उसके अनुसार आपकी सरकार जाट समुदाय को आरक्षण देने के अलग-अलग फार्मूलों पर विचार कर रही है। एक फार्मूला राज्य की पिछड़े वर्ग 'बी' सूची में जाट सहित पांच जातियों को शामिल करना है। दूसरा फार्मूला 2013 की तरह एक विशेष पिछड़ा वर्ग 'सी' सूची बनाकर पांचो जातियों को शामिल करना है। तीसरा फार्मूला आर्थिक दृष्टि से पिछड़े वर्ग के आरक्षण में जाट समुदाय के लिए कुछ हिस्सा सुनिश्चित करना है।

3. जैसा कि आप जानते हैं, ऐसे फैसले पहले भी हो चुके हैं। लेकिन यह बार-बार न्यायपालिका द्वारा रद्द किए गए हैं। इस संबंध में सुप्रीम कोर्ट का नवीनतम फैसला (राम सिंह और अन्य बनाम भारत सरकार, 274/2014, दिनांक 17 मार्च 2015) सबसे महत्वपूर्ण है। इसका सीधा संबंध हरियाणा में जाट समुदाय को आरक्षण देने के केंद्र सरकार के निर्णय से है। इस फैसले में सुप्रीम कोर्ट ने भारत सरकार की 4-3-2014 की उस अधिसूचना को अवैध घोषित कर दिया, जिसमें जाट समुदाय को हरियाणा सहित कई राज्यों में सामाजिक और शैक्षणिक पिछड़े वर्ग की केंद्रीय सूची में शामिल किया गया था। इस फैसले का सीधा संबंध हरियाणा सरकार की 24 जनवरी 2013 की उस अधिसूचना से भी है, जिसमें जाट और अन्य चार जातियों को विशेष पिछड़ा वर्ग का दर्जा देकर सरकारी नौकरियों में आरक्षण दिया गया था। सुप्रीम कोर्ट के फैसले में हरियाणा सरकार की गुप्ता आयोग की 2012 की रिपोर्ट को खारिज कर दिया गया है (पैरा-52)। सुप्रीम कोर्ट ने राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग के इस निष्कर्ष को स्वीकार किया है कि हरियाणा में गुप्ता आयोग के निष्कर्ष और कसौटियां और सांगवान समिति के आंकड़े अधूरे, अप्रासंगिक या संदेहास्पद हैं (पैरा-30, 33, 34 और 52)। सुप्रीम कोर्ट के इसी फैसले के बाद पंजाब व हरियाणा हाईकोर्ट ने भी हरियाणा सरकार के 24-1-2013 के आदेश पर रोक लगा दी थी। अगर अब हरियाणा सरकार बिना किसी नए प्रमाण के जाट समुदाय को आरक्षण देती है तो पूरी सम्भावना है कि यह आदेश भी कोर्ट द्वारा रद्द कर दिया जाएगा। स्वाभाविक है कि ऐसे में जाट आरक्षण के समर्थकों को लगेगा कि उनके साथ एक बार फिर धोखा हुआ है।

4. अगर हरियाणा सरकार जाट व अन्य समुदायों के लिए एक नई सूची बनाकर उन्हें वर्तमान आरक्षण से ऊपर आरक्षण देती है तो उससे सुप्रीम कोर्ट द्वारा हर किस्म के आरक्षण पर लगाई 50 प्रतिशत की सीमा (इंदिरा साहनी बनाम भारत सरकार, 1992, पैरा 94) का उल्लंघन होगा। पहले तमिलनाडु जैसे राज्यों ने आरक्षण के कानून को नौवीं अनुसूची में डालकर इस सीमा से ज्यादा आरक्षण था, लेकिन 1992 के निर्णय के बाद यह संभव नहीं होगा। तमिलनाडु का मामला भी फिलहाल सुप्रीम कोर्ट के सामने है।

5. केवल एक या कुछेक जातियों के बारे में अलग से कोई भी निर्णय लेने से यह मामला नहीं सुलझेगा। जाट आरक्षण आंदोलन

ने बार-बार यह प्रश्न उठाया है कि अन्य समकक्ष खेतिहर जातियों को राज्य में आरक्षण का लाभ मिल रहा है, तो उन्हें वंचित क्यों किया जा रहा है? इस प्रश्न का तर्कसंगत उत्तर मिलना चाहिए। सुप्रीम कोर्ट के नवीनतम फैसले ने भी राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग की इस दलील को स्वीकार किया है कि गुप्ता आयोग ने अन्य समतुल्य जातियों (जैसे अहीर, कुर्मी, गुर्जर) से संबंधित आंकड़े प्रस्तुत नहीं किए। यानि कि राज्य सरकार को जाट आरक्षण संबंधी कोई भी फैसला लेते वक्त अन्य समतुल्य जातियों संबंधित आंकड़े और प्रमाण भी जुटाने होंगे। यूं भी इंदिरा साहनी मामले में सुप्रीम कोर्ट यह निर्देश दे चुका है कि आरक्षण का लाभ पाने वाले पिछड़े वर्गों की सूची की हर दस साल बाद पूरी समीक्षा होनी चाहिए। बीस साल बाद भी यह समीक्षा केंद्र और राज्य स्तर पर होनी बाकी है।

6. अगर कानूनी पेंच को छोड़ भी दें तो भी राज्य सरकार के लिए यह सुनिश्चित करना जरूरी है कि उसके निर्णय से पूरे प्रदेश में एक गलत संदेश न जाए। पिछले महीने इस सवाल पर हुए उग्र आंदोलन और उसके बाद पूरे राज्य में व्यापक हिंसा के एकदम बाद यदि सरकार यह फैसला लेती है तो यह न्यायपरक निर्णय नहीं बल्कि राजनीति के गणित और मजबूरी का निर्णय माना जाएगा। इससे राज्य में जातीय तनाव और गहरा होगा। यह सन्देश भी जायेगा कि भविष्य में हर वर्ग और समुदाय को अपनी मांग मनवाने के लिए यही रास्ता अपनाना पड़ेगा। इससे केवल आपकी सरकार का ही नहीं, आने वाली हर सरकार का काम कठिन होगा।

7. इसलिए यह जरूरी है कि इस संवेदनशील और महत्वपूर्ण सवाल पर जल्दबाजी और तात्कालिक दबाव में ऐसा निर्णय न लिया जाए जो न तो कोर्ट में टिक सकेगा और सामाजिक सौहार्द को भी बिगाड़ेगा। इस मुद्दे पर एक ऐसा दूरगामी निर्णय लेने की जरूरत है जो वस्तुनिष्ट और पारदर्शी होने के साथ-साथ कोर्ट द्वारा तय की गई मर्यादा के अनुरूप हो। यह तभी हो सकता है अगर यह निर्णय-

(क) राज्य सरकार द्वारा अब तक के आदेशों में इस्तेमाल किए गए प्रमाण (गुरनाम सिंह आयोग, गुप्ता आयोग, सांगवान समिति) से इतर किसी नए और प्रमाणिक आंकड़ों पर आधारित हो।

(ख) यह आंकड़े केवल आरक्षण के लिए प्रस्तावित जातियों के बारे में ही नहीं बल्कि अन्य समतुल्य जातियों के बारे में भी पेश किए जाएं।

(ग) यह आंकड़े सुप्रीम कोर्ट और राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग द्वारा सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक पिछड़ेपन की निर्धारित कसौटियों के अनुरूप हों।

(घ) आरक्षण की प्रस्तावित व्यवस्था सुप्रीम कोर्ट द्वारा निर्धारित 50 प्रतिशत की सीमा का उल्लंघन न करे।

8. इन सब बिंदुओं को ध्यान में रखते हुए मैं आपके सामने एक वैकल्पिक प्रस्ताव रखना चाहता हूं। मेरा सुझाव है कि हरियाणा सरकार 2011 की सामाजिक-आर्थिक और जातीय जनगणना के आंकड़ों के आधार पर पिछड़े वर्ग की सभी सूचियों की समीक्षा करे। इस समीक्षा के आधार पर पिछड़े वर्ग की दोनों सूचियों 'ए' और 'बी' को नए सिरे से बनाया जाए। इस तरह नए और विश्वसनीय आंकड़ों तथा कानून सम्मत कसौटियों के आधार पर केवल जाट ही नहीं सभी गैर-अनुसूचित जाति-समुदायों के पिछड़े वर्ग के तहत आरक्षण के दावों का एक ही बार में निपटारा कर दिया जाय।

9. सन् 2011 की जनगणना के साथ-साथ एक विशेष सामाजिक-आर्थिक और जातीय जनगणना भी हुई थी, जिसके आंकड़े आने शुरू हो चुके हैं। इस जनगणना के फलस्वरूप केंद्र सरकार के पास पहली बार हर जाति की सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक स्थिति के बारे में प्रमाणिक आंकड़े उपलब्ध हैं। यह आंकड़े प्रमाणिक हैं और इन्हे स्वीकार करने में कोर्ट को भी कोई एतराज़ नहीं हो सकता। इसके आधार पर लिए गए निर्णय को हर पक्ष स्वीकार कर सकता है। अगर राज्य सरकार चाहे तो वह इस जनगणना से प्रदेश में हर जाति-समुदाय के बारे में निम्नलिखित आंकड़े प्राप्त कर सकती है-

(क) किसी जाति के कितने प्रतिशत परिवार शारीरिक श्रम (खेती और मजदूरी) से आजीविका कमाते हैं?

(ख) किसी जाति के कितने प्रतिशत परिवार भीख मांगने जैसे हेय समझे जाने वाले काम करते हैं?

(ग) किसी जाति में कितने प्रतिशत महिलाओं की शादी 18 वर्ष से पहले हो जाती है?

(घ) किसी जाति के कितने प्रतिशत बच्चे (5 से 15 वर्ष) स्कूल से बाहर हैं या पढाई छोड़ रहे है?

(1) किसी जाति के कितने प्रतिशत व्यक्ति दसवीं पास और स्नातक या उससे अधिक पढ़े हैं?

(2) किसी जाति के परिवारों की औसत चल-अचल संपत्ति (मकान, जमीन, वाहन आदि) कितनी है?

(3) किसी जाति के कितने प्रतिशत परिवारों में कम से कम एक व्यक्ति को सरकारी/सार्वजनिक क्षेत्र की नौकरी मिली है?

इन आंकड़ों के आधार पर राज्य सरकार पिछड़ेपन का एक समग्र सूचकांक (कंप्रीहेंसिव इंडेक्स) बना सकती है। इस इंडेक्स के द्वारा हर जाति समुदाय के पिछड़ेपन को एक वस्तुनिष्ठ तरीके से मापा जा सकता है।

10. इस सूचकांक के आधार पर राज्य की सभी गैर-अनुसूचित जातियां को चार वर्गों में विभक्त कर उनके लिए अलग-अलग लाभ तय किए जा सकते हैं। (चूंकि अनुसूचित जाति का मामला बिलकुल अलग है इसलिए उसे इस समीक्षा से बाहर रखा जाये)-

(क) जो जातियां राज्य की गैर-अनुसूचित जातियों के औसत स्कोर से आधे से भी नीचे हों, उन्हें पिछड़ा वर्ग 'ए' श्रेणी के तहत आरक्षण के वर्तमान लाभ दिए जायें दिया जाए (क्रीमीलेयर को बाहर रखकर)।

(ख) जो जातियां राज्य की गैर-अनुसूचित जातियों के औसत स्कोर के आधे और तीन चौथाई के बीच में हों (50

प्रतिशत से 74 प्रतिशत के बीच) उन्हें पिछड़ा वर्ग 'बी' श्रेणी के तहत आरक्षण वर्तमान लाभ दिए जाए (क्रीमीलेयर को बाहर रखकर)।

(ग) जो जातियां राज्य की गैर-अनुसूचित जातियों के औसत स्कोर से नीचे पर तीन चौथाई से ऊपर (75 प्रतिशत से 99 प्रतिशत तक) हों उन्हें सामान्य 'ए' श्रेणी में रखा जाए। उन्हें आरक्षण का लाभ नहीं मिलेगा, लेकिन सरकार उनके पिछड़ेपन को दूर करने के लिए छात्रवृत्ति, फीसमाफी, लोन और प्रतियोगताओं के लिए ट्रेनिंग जैसी योजनाए बनाएगी।

(घ) जो जातियां राज्य की गैर-अनुसूचित जातियों के औसत स्कोर के बराबर या उससे ऊपर हों, उन्हें सामान्य 'बी' वर्ग में रखा जाए। उन्हें पिछड़ेपन का कोई लाभ नहीं मिलेगा, लेकिन उनमें से गरीब परिवारों को आर्थिक पिछड़ेपन संबंधी योजनाओं का लाभ मिलेगा।

उदाहरण: मान लीजिए उपरोक्त आंकड़ों के आधार पर अधिकतम 100 अंक का सूचकांक बनता है। मान ले कि इस आधार पर अनुसूचित जाति के परिवारों को छोड़कर राज्य के बाकी परिवारों का औसत स्कोर 52 बनता है। ऐसे में जिस जाति के सभी परिवारों का औसत सूचकांक 25 या उससे कम है उसे पिछड़ा वर्ग 'ए' में, जिस जाति के सभी परिवारों का औसत सूचकांक 26 से 38 है उसे पिछड़ा वर्ग 'बी' में, जिस जाति के सभी परिवारों का औसत सूचकांक 39 से 51 है उसे सामान्य वर्ग 'ए' में और जिस जाति के सभी परिवारों का औसत सूचकांक 52 या उससे अधिक है उसे सामान्य वर्ग 'बी' में रखा जायेगा।

11. आंकड़ों के विश्लेषण, सूचकांक निर्माण और वर्गीकरण का काम राज्य के बाहर के संस्थान (जैसे-भारतीय समाज विज्ञान शोध संस्थान) को सुपुर्द किया जा सकता है ताकि इस प्रक्रिया की विश्वसनीयता बनी रहे। इन सारे आंकड़ों और पूरी प्रक्रिया को सार्वजनिक करने से इस बारे में संदेह नहीं बचेगा।

12. आशा करता हूं कि आप मेरे इस रचनात्मक सुझाव को अनाधिकार चेष्टा न मानेंगे और इस पर गौर करेंगे। हरियाणा बहुत नाजुक दौर से गुजर रहा है। पिछले महीने की हिंसा में जान-माल के साथ-साथ प्रदेश की छवि और सौहार्द को बहुत नुकसान हुआ है। सरकार और राजनेताओं की विश्वसनीयता बहुत गिरी है। पूरे प्रदेश को पैंतीस-एक में बांटने की कोशिश हो रही है। ऐसे में आरक्षण के सवाल पर नासमझी या जल्दबाजी में लिया गया कोई भी फैसला पूरे प्रदेश को दूरगामी नुकसान कर सकता है। आशा है आपकी सरकार ऐसे मोड़ पर पूरे राज्य के हित में ऐसा फैसला लेगी जो न्यायसंगत हो और जिसे जाट आरक्षण के समर्थक और विरोधी दोनों एक निष्पक्ष फैसले की तरह स्वीकार करें।

ऐसे किसी भी प्रयासों में मैं आपका सहयोग करने को तत्पर रहूंगा।

सादर

आपका

योगेन्द्र यादव

सदस्य, स्वराज अभियान राष्ट्रीय संयोजन समिति। राष्ट्रीय संयोजक, जय किसान आंदोलन

•

आबिद आलमी की ग़ज़लें

देखने में बेदरो-दीवार सा मैं इक मकां हूं
शहर की तारीख़ का लेकिन अकेला तरजुमां हूं

साथ लेकर चल रहा हूं एक-इक रहरौ हसरत
मुझ को तनहा मत समझिये मैं मुकम्मल कारवां हूं

खेलते रहते हैं मुझ में रात-दिन लाखों तलातुम
अनगिनत आलम हैं जिसमें मैं वो बहर-ए-बेकरां हूं

ऐन मुमकिन है कि जंगल माजरा मेरा समझ ले
शहर में तो में जुबां रखते हुए भी बेज़बां हूं

आसमां से उस तरफ़ मुझ को निकल कर फैलना है
मैं सफ़र की आग में जलते हुए दिल का धुआं हूं

कारवां से कट के मुझ पर क्या नहीं गुज़री है 'आबिद'
पूछता फिरता हूं गूंगे आसमां से मैं कहां हूं

तारीख़ : इतिहास, तरजुमां : अनुवादक, भाषान्तरकार, रहरौ : पथिक, तलातुम : तूफान, आलम : ब्रह्माण्ड, बहर-ए-बेकरां : असीम समुद्र

नगर में सुनना-सुनाना अगर कभी होगा
हमारा जिक्र यक़ीनन गली-गली होगा

मिटा दो राहों की उलझन और इक डगर ले लो
य' मंज़िलों का सफ़र य' तय तभी होगा

इक एक दर्द से इतना बिला झिझक कह दो
हमारे दिल में उठेगा जो दायमी होगा

नगर-नगर का मुक़दर है लिख दिया मैंने
कि ज़लज़लों का गुज़र अब गली-गली होगा

जो लिखते फिरते हैं एक-इक मकां पे नाम अपना
उन्हें बता दो कि इक दिन हिसाब भी होगा

हमें भी वक्त ज़रूरत समझता है अपनी
कि एक दौर तो 'आबिद' हमारा भी होगा

दायमी : स्थायी, टिकाऊ : ज़लज़ले : भूकम्प

समाज अपने समय की सच्चाई को अपने रचनाकारों की आंख से देखता है। यह जानना हमेशा ही रोचक होता है कि रचनाकार अपने समय को कैसे देखते व अभिव्यक्त करते हैं। हरियाणा में साहित्य विमर्श की संस्कृति का घोर अभाव है, जिसका यहां के साहित्यिक परिवेश पर खासा नकारात्मक असर है। लेखकों व साहित्यकारों के बीच यह निरंतर चिंता का विषय है। हरियाणा की रचनाशीलता की पहचान के लिए 'देस हरियाणा' के हर अंक में किसी एक रचनाकार पर विशेष सामग्री प्रस्तुत की जाएगी। आशा है कि इससे हरियाणा में साहित्य-विमर्श की संस्कृति पनपेगी व साहित्य बोध विकसित होगा।

*इस बार हम हरियाणा के शायर आबिद आलमी की रचनाओं पर केंद्रित कर रहे हैं। हसमें उनकी रचना प्रक्रिया व रचना सरोकारों पर प्रकाश डालता तथा उनकी रचनाओं की मूल्यवत्ता को उदघाटित करते आलेख प्रस्तुत कर रहे हैं। -**सं.***

ख़ास रचनाकार

आबिद आलमी

4 जून 1933 - 9 फरवरी 1994

आबिद आलमी का पूरा नाम रामनाथ चसवाल था। वो आबिद आलमी नाम से शायरी करते थे। उनका जन्म गांव ददवाल, तहसील गुजरखान, जिला रावलपिंडी पंजाब (पाकिस्तान) में हुआ। उन्होंने अंग्रेजी भाषा साहित्य से एम.ए. किया। वो अंग्रेजी के प्राध्यापक थे और उर्दू में शायरी करते थे। उन्होंने हरियाणा के भिवानी, महेंद्रगढ़, रोहतक, गुड़गांव आदि राजकीय महाविद्यालयों में अध्यापन किया। वो हरियाणा जनवादी सांस्कृतिक मंच के संस्थापक पदाधिकारी थे।

उनकी प्रकाशित पुस्तकें दायरा 1971, नए जाविए 1990 तथा हर्फे आख़िर (अप्रकाशित)

आबिद आलमी की शायरी की कुल्लियात (रचनावली) के प्रकाशन में प्रदीप कासनी के अदबी काम को नकारा नहीं जा सकता। उन्होंने आबिद की तीसरी किताब हर्फ़े आख़िर की बिखरी हुई ग़ज़लों और नज़्मों को इक्ट्ठा किया। 'अल्फ़ाज़' शीर्षक से रचनावली 1997 और दूसरा संस्करण 2017 में प्रकाशित।

आबिद आलमी जीवन के आख़िरी सालों में बहुत बीमार रहे। बीमारी के दौरान भी उन्होंने बहुत सारी ग़ज़लें लिखीं।

आबिद आलमी की ग़ज़लें

गर बदल सकता है औरों की तरह चेहरा बदल ले
वरना इस बहरूपियों के शहर से फ़ौरन निकल ले

हां बहुत नज़दीक है अब इब्तिदा शब के सफ़र की
फिर भी क्या जल्दी है यारो शाम का सूरज तो ढल ले

इतनी मामूली ख़ता की इस क़दर भारी सज़ा पर
अब भी इक पल सोच यानी अब भी इक पल हाथ मल ले

दर्द पर दुनिया का हक़ है, सौंप दूंगा इस को लेकिन
इस में क्या है मेरे दिल में गर ये दो दिन और पल ले

देखने की चीज़ होगी मेरी कश्ती की रवानी
बर्फ़ ऊंची चोटियों पर और थोड़ी सी पिघल ले

इस से आख़िर मेरा रिश्ता जानता हूं कैसा होगा
छल रही है मुझ को दुनिया, और इक-दो रोज़ छल ले

तुम को वादी में कोई बुतसाज़ मिल जाए, है मुमकिन
चोटी पर पत्थर का पत्थर ही न रह जाए, फिसल ले

इब्तिदा : शुरूआत, शब : रात, बुतसाज़ : मूर्तिकार

2

ठहरी हुई है रात, अंधेरा है हर तरफ़
टिकते नहीं हैं पाओं कि रस्ता है हर तरफ़

इक ज़हर बस गया है हवा में गली-गली
इक सांप कब से शहर में फिरता है हर तरफ़

बैठा है किस ख़याल से घर में भरे य रात
घर से निकल के देख, सवेरा है हर तरफ़

देखें तो इतने चेहरे कि जिन का नहीं शुमार
पहचान लें तो एक ही चेहरा है हर तरफ़

सोचा है जब से इक नयी दुनिया बसाएंगे
बादल सा इक ग़ुबार का छाया है हर तरफ़

'आबिद' ने क्या सफ़र का ऐलान कर दिया
राहों में इंतिशार सा छाया है हर तरफ़

शुमार : हिसाब, गिनती, ग़ुबार : धूल-मिट्टी, इंतिशार : बिखरना, दुर्दशा

3

जब य' मालूम है बस्ती की हवा ठीक नहीं
फिर अभी इसको बदल लेने में क्या ठीक नहीं

मेरे अहबाब की आंखो में चमक दौड़ गई
हंस के जब मैंने कहा हाल मेरा ठीक नहीं

दिल का होना ही बड़ी बात है कैसा भी हो
मैं नहीं मानता यह टूटा हुआ ठीक नहीं

अपनी आंखों से जो हालात की देखी तस्वीर
एक भी रंग य' मालूम हुआ ठीक नहीं

ज़हर मिल जाए दवा में तो जायज़ है यहां
हां मगर ज़हर में मिल जाए दवा ठीक नहीं

उसकी फ़ितरत ही सही चीख़ना-चिल्लाना मगर
मैं समझता हूं नगर में वो बला ठीक नहीं

ख़ुद ही डसवाता था इक सांप से लोगों को वो
ख़ुद ही कहता था कि ये खेल ज़रा ठीक नहीं

खैंच लेते हैं ज़बां पहले ही मुंसिफ़ 'आबिद'
कहने-सुनने की अदालत में वबा ठीक नहीं

अहबाब : दोस्तों, फ़ितरत : स्वभाव, मुंसिफ़ : न्यायकर्ता, वबा : महामारी

4

अकेला ख़ुद को समझ कर मैं घर से निकला था
क़दम-क़दम पे मगर क़ाफ़िलों का साथ मिला

हमारे शहर के दस्तूर का कमाल है ये
न इस में हंसना रवा है न इस में रोना रवा

हम अपने कंधों पे ही अपने घर उठाये फिरे
कहीं भी बस्ती बसाने का हौसला न हुआ

हमारे साथ रही और हमारी हो न सकी
कि ज़िंदगी पे किसी संगदिल का क़ब्ज़ा था

सुलग रहा है अभी एक-इक पहाड़ का दिल
अभी सफ़र में रहेगा य' आग का दरिया

तमाम शहर ही जब तुम से हो गया बरहम
तो फिर ये किस को सुनाते हो अपना बावैला

ये कह के रोक लिया उस ने मोड़ पर हम को
अभी तो कल का लहू ही नहीं ठिकाने लगा

वो आग बरसी कि बस राख रह गई 'आबिद'
फिर इस के बाद चली ख़ूब ठंडी-ठंडी हवा

क़ाफ़िलों : यात्री-दलों, रवा : उचित, संगदिल : पत्थर-दिल, संवेदनहीन, बरहम : रुष्ट, बेसरोकार, बावैला : विलाप, शोर-गुल

5

उसी तड़प से उसी जोश से चलो यारो
सवेरा दूर नहीं है चले चलो यारो

य' चूस लेगा हमारे बदन से सारा लहू
भला इसी में है इस शहर से चलो यारो

कभी ये लोग हमारी ही राह तकते थे
जगा के साथ इन्हें भी लिए चलो यारो

कोई फ़सील भी दरिया को रोक सकती नहीं
अंधेरा चीर के आगे बढ़े चलो यारो

मुझे यक़ी है कि ये नक़्श-ए-पा हैं 'आबिद' के
ये रह-शनास हैं इन पर चले चलो यारो

फ़सील : नगर की चारदिवारी, नक़्श-ए-पा : पदचिन्ह, क़दमों के निशान, रह-शनास : मार्ग से परिचित

6

सीने में आग भी है, नज़र में हवा भी है
फिर रेज़ा-रेज़ा मरने से कुछ फ़ायदा भी है

दरिया की बात करता है लेकिन य' पूछ लो
लहरों के साथ-साथ कभी वो बहा भी है

मंदिर उजड़ गया तो पुजारी बिखर गए
कहते थे बच निकलने का ये रास्ता भी है

मक़्तल में बैठे हमें रात हो गई
जल्लाद! इस क़तार का कोई सिरा भी है

मुंसिफ़ ने कह दिया कि यहीं खैंच लो ज़ुबां
मैं कहता गया कि सुनो कुछ कहा भी है

'आबिद' को संगसार करेंगे मचा है शोर
फिर उसके बुत लगाएंगे ऐसी हवा भी है

रेज़ा-रेज़ा : थोड़ा-थोड़ा, मक़्तल : वधस्थल, क़त्लगाह, मुंसिफ : न्यायकर्ता, इन्साफ करने वाला, संगसार : पत्थर मार-मारा कर काम तमाम करना

7

होगा नगर में ख़ूब तमाशा गली-गली
दौड़ेगा जब वो आग का दरिया गली-गली

वो एक-इक फ़सील का गिरना नगर-नगर
वो इक अजीब शोर का उठना गली-गली

जब से हुआ है खेल मदारी का शहर में
फिरता है इक हजूम लुटा सा गली-गली

सूरज नगर में एक हवेली में क़ैद है
आज़ाद घूमता है अंधेरा गली-गली

ये एक ख़ौफनाक ख़ामोशी मकां-मकां
वो इक सदा का चीख़ते फिरना गली-गली

दुबके पड़े हैं बंद घरों में नगर के लोग
फिरता है कब से एक दरिन्दा गली-गली

होता अगर मेरा भी किसी घर से वास्ता
'आबिद' मैं यूं न फिरता अकेला गली-गली

फ़सील : नगर के चारों ओर की दीवार, हुजूम : भीड़, खौफनाक : डरावनी

तरक्कीपसंद शायर आबिद आलमी की ग़ज़लगोई

□ ज्ञान प्रकाश विवेक

देश का विभाजन एक न भूलने वाली घटना थी। यह एक ऐसी त्रासदी थी, जिसने भूगोल ही नहीं, अवाम को भी तकसीम करके रख दिया। जो उधर से लोग विस्थापित होकर इधर आए, उन्हें शरणार्थी कहा गया। जो यहां से पाकिस्तान जा बसे वो मोहाज़िरों की तरह जीवन जीने को अभिशप्त रहे। विस्थापन ने अजीब-सी वेदना और बेघरी का दुख दिया। इस विस्थापन ने स्मृतियों की गूंज दी। जौन ऐलिया हिन्दोस्तान से पाकिस्तान जा बसे, लेकिन हिन्दोस्तान की यादें उनमें तड़प पैदा करती रहीं। उन्होंने कहा भी-'क्या मैं तुमको याद नहीं हूं गंगा जी और जमुना जी।' नासिर काज़मी भी पाकिस्तान चले गए, लेकिन हिन्दोस्तान उन्हें हमेशा याद आता रहा। उन्होंने एक शेर में दुखभरे लहजे में कहा-'आए हैं इस गली से तो पत्थर ही ले चलें।'

पाकिस्तान से जो लोग यहां आकर बसे। वो लगभग खाली हाथ आए। वो जान बचाकर, लुट-पिट कर यहां पहुंचे। इसके बावजूद, बेघरी की वेदना के साथ-साथ सैंकड़ों यादें भी थीं, जिन्हें वो मिल-बांट कर शेर करते। यादों को ताजा करते और आंखों को नम करते। कुमार पाशी गहरे जज़्बात के साथ, उन दिनों को याद करते हुए कहते हैं-(वो भी पाकिस्तान से आए थे)

बस कि 'पाशी' न मर सके न जिए
दिल का रिश्ता था टूटता भी क्या

पाकिस्तान से यहां आकर बसने वाले बेशक खाली हाथ आए, लेकिन तीन चीजें अपने साथ जरूर लाए। छोड़ दी गई ज़मीन की यादें, उर्दू ज़बान और शायरी!

यह महज़ इत्तेफाक़ नहीं था, बल्कि परिस्थितियां ज्यादा हाइल थीं कि पाकिस्तान छोड़कर आए अधिकांश लोग पानीपत, करनाल, सोनीपत, अम्बाला, रोहतक, बहादुरगढ़, कुरुक्षेत्र आदि शहरों में बसते चले गए। बहुत सारे लोगों ने दिल्ली में अपनी बस्तियां बसाई।

एक वो वक्त था जब हरियाणा (उस वक्त का पंजाब) उर्दू ज़बान का मर्कज़ था। वो बजुर्ग पीढ़ी जो पाकिस्तान से आई थी, न सिर्फ ख़तो-क़िताबत उर्दू में करती थी, बल्कि शायरी में भी अच्छा ख़ासा दख़ल रखती थी। वो लोग या तो शायरी करते या फिर उर्दू के मोतबर शायरों के शेर, वक़्त-ज़रूरत सुनते-सुनाते।

आबिद आलमी जब अपने माता-पिता के साथ विस्थापितों की तरह हिन्दुस्तान आकर बसे।

शायरी करने की प्रेरणा, उन्होंने कहां से हासिल की होगी, इसका पता नहीं चलता। बेशक, उस दौर का वातावरण भी किसी शायराना फ़ितरत के नौजवान को शायरी की हिस्स पैदा करता रहा हो। ग़ौरतलब है पचास-साठ के दशक में छोटे-बड़े शहरों में नशिस्तें मुनक़्क़द होती रहती थीं, लेकिन आबिद आलमी की जितनी साफ़-शफ़्फ़ाक शायरी है, ज़रूर उनका कोई उस्ताद भी रहा होगा, जिसका ज़िक्र कहीं नहीं। अगर उन्होंने अपने स्तर पर उरूज़ की समझ विकसित की हो, तो यह बात बड़ी असाधारण है और ग़ौरतलब भी। शायरी सी प्रतिभा उनमें जन्मजात थी। बेशक, उर्दू ज़बान की समझ वो पाकिस्तान में हासिल कर चुके थे। उस ज़बान का विस्तार और कलात्मक रंग उन्होंने रफ़्ता-रफ़्ता प्राप्त किया।

ग़ौरतलब है कि उस दौर की शायरी, हरियाणा के जिन इलाकों, जिन ख़ित्तों में हो रही थी, उस शायरी का रंग रवायती ज्यादा था। ग़ज़ल में फ़ारसियत, अल्फाज़ में संगीतात्मकता, इज़ाफ़तें और मफ़हूम में हुस्नो-इश्क़। ग़ज़लों में ख़ास तरह का चमत्कारिक गुण और रवानी!

लेकिन आबिद आलमी ने एक नई रविश को अख़्तियार किया। उनके पास यक़ीनन, तीक्ष्ण दृष्टि थी। अनुभवों की पुनर्रचना का शऊर था।

शुरूआत उन्होंने जदीदियत से की। यह आधुनिकता बोध, आबिद की ग़ज़लों को न सिर्फ़ नौइयत और ताज़गी प्रदान करता है बल्कि देखने, सोचने, समझने और ज़िंदगी और समय और समाज और रिश्तों पर शायरी के ज़रिए तबसरा करने की सलाहियत अता करता है।

आबिद आलमी ने एक नई रविश को अख़्तियार किया। उनके पास यक़ीनन, तीक्ष्ण दृष्टि थी। अनुभवों की पुनर्रचना का शऊर था।

शुरूआत उन्होंने जदीदियत से की। यह आधुनिकता बोध, आबिद की ग़ज़लों को न सिर्फ़ नौइयत और ताज़गी प्रदान करता है बल्कि देखने, सोचने, समझने और ज़िंदगी और समय और समाज और रिश्तों पर शायरी के ज़रिए तबसरा करने की सलाहियत अता करता है।

हैरानी इस बात की है कि आबिद आलमी की आक्रामक, विद्रोही और जुझारू ग़ज़लों पर ही बात होती रही है, जबकि आबिद आलमी की ग़ज़लगोई के तीन मक़ाम हैं। या फिर ये भी कह सकते हैं कि उनकी शायरी के तीन कालखण्ड हैं। पहले कालखण्ड में वो पुरलुत्फ़ जदीद ग़ज़लें कहते हैं। बेशक वो कालखण्ड थोड़े समय का रहा है। दूसरा और उनकी शायरी का सबसे महत्वपूर्ण समय, प्रतिवाद की शायरी का समय है। यहां आबिद आलमी अपने जोशो-ख़रोश के साथ, तंत्र के निषेध का प्रबल भावना से विरोध करते, क्रांतिकारी शायर के रूप में नज़र आते हैं।

तीसरा कालखण्ड जिसमें शायर की निजताएं हैं। दुख है और उसकी मूर्त तथा अमूर्त कथाएं।

हैरानी इस बात की है कि आबिद आलमी की आक्रामक, विद्रोही और जुझारू ग़ज़लों पर ही बात होती रही है, जबकि आबिद आलमी की ग़ज़लगोई के तीन मक़ाम हैं। या फिर ये भी कह सकते हैं कि उनकी शायरी के तीन कालखण्ड हैं। पहले कालखण्ड में वो पुरलुत्फ़ जदीद ग़ज़लें कहते हैं। बेशक वो कालखण्ड थोड़े समय का रहा है। दूसरा और उनकी शायरी का सबसे महत्वपूर्ण समय, प्रतिवाद की शायरी का समय है। यहां आबिद आलमी अपने जोशो-ख़रोश के साथ, तंत्र के निषेध का प्रबल भावना से विरोध करते, क्रांतिकारी शायर के रूप में नज़र आते हैं।

तीसरा कालखण्ड जिसमें शायर की निजताएं हैं। दुख है और उसकी मूर्त तथा अमूर्त कथाएं।

बेशक आबिद आलमी को रोग ने तोड़-फोड़ दिया है। अपने दुख, उदासियां, हताशा, अकेलापन। इन सबके बावजूद, आबिद ने ग़ज़लें इस दौर में भी लिखीं। उनके रोग की छायाएं इन ग़ज़लों पर दिखाई देती हैं। अगर शैली और शिल्प की दृष्टि से देखा जाए, तो ग़ज़लें यहां भी परिपक्व हैं। यहां कथ्य में बेशक निजताएं हैं, लेकिन ग़ज़लों का कलात्मक स्वरूप कहीं भंग नहीं होता।

अक्सर देखा गया है शायर जब रोगग्रस्त हुए तो उनकी शायरी पर मृत्युबोध भी चाहे, अनचाहे व्यक्त होता चला गया। ग़ालिब का यह शेर-'हो चुकीं ग़ालिब बलाएं सब तमाम। एक मर्गे नागहानी और है।' नासिर जब बीमार हुए तो उन्होंने बहुत सारी ग़ज़लें इसी दौर में लिखीं। उनके शेर का एक मिसरा है- 'क्या तुझे हो गया बता तो सही।' इब्ने इन्शा ने अपनी मृत्यु से कुछ दिन पहले एक नज़्म लिखी-'अब उम्र की नक़दी खत्म हुई।'

बहरहाल, इस तरह के बेशुमार उदाहरण दिए जा सकते हैं।

आबिद आलमी की शायरी पर बात करते हैं। - दायरा, नए ज़ाविए तथा हर्फ़े आख़िर को केंद्र में रखते हुए शायर के सरोकारों तक पहुंचने की कोशिश करते हैं।

'दायरा' की ग़ज़लें पढ़ने और महसूस करने से पूर्व उस दौर की यानी पांचवें, छठे और सातवें दशक की उर्दू शायरी पर ध्यान जाता है, जब जहीद उर्दू ग़ज़ल किसी आंदोलन की तरह उभरी। नए प्रतीकों, नए रूपकों, नए अल्फ़ाज़ में ग़ज़लें लिखी जाने लगी। नासिर काज़मी ने जदीद उर्दू ग़ज़ल के दर खोले। फ़ारसी ज़बान के बदले आसान उर्दू ज़बान में ग़ज़लें लिखीं। नए इमेजिस और नई प्रतीकात्मकता से ऐसे शेर कहे कि पाठक/श्रोता हैरान रह गए। उसके बाद, शायरों का जदीदियत के प्रति रूझान निरंतर विकसित होता चला गया।

आबिद आलमी की ग़ज़लों का पहला संग्रह (1971) उसी दौर की काव्य यात्रा है। यहां अजीब किस्म की बेचैनी है। ज़िंदगी को समझने का नया दृष्टिकोण है। बात प्रतीकों में, गूढ़ार्थ पैदा करती हुई-

मैं उसके वास्ते सूरज कहां से आखिर लाऊं
न जाने रात मुझे क्या समझ रही है अभी

रात के पुल को पार कर लेता
नींद का बोझ आंख उठा न सकी

मेरे घर में तड़प रही है रात
ख़्वाब जाने कहां लुटा आई

तीनों अश्आर में रात का प्रतीक केंद्र में है। तीनों अश्आर में अभिव्यक्ति की सघनता है। यहां शायर की अनुभूति को अश्आर में महसूस किया जा सकता है। यहां रूपक की रचना है। बात संकेतों में है। इसलिए जटिल है। रात का तसव्वुर विभिन्न कोणों से व्यक्त हुआ है। रात एक है उसे अनुभव करने के कई सारे रूप! कई बार तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे शायर रात की बात नहीं कर रहा ज़िंदगी की मुश्किलों को रात के पस:मंजर व्यक्त कर रहा है।

जदीद शायर का यह एक सौंदर्य है कि आसान लफ़्ज़ों में गहरी बात की जाए। प्रकृति के शेड्स उठाए जाएं और उन्हें समाज के साथ, आवाम के साथ, व्यक्ति के साथ रिश्ता कायम किया जाए। कुछ शेर ग़ौरतलब हैं-

आसमां रात दरख्तों के करीब आया था
पूछता फिरता था क्या उनमें छुपा है कोई

शायर जब कभी दश्त में, रात गए गुज़रा तो उसे महसूस हुआ कि इन दरख्तों में कोई अज्ञात शै है। अगर वो बात को सीधे तौर से कहता तो शेर सपाट हो जाता। यहां आसमां किरदार का सृजन और उसका दरख्तों से पूछना' शेर को बड़ा बना देता है।

शेर में कथ्य/विचार को किस अनूठे अंदाज में व्यक्त किया जाए, यही शायर की मौलिकता को दर्शाता है। यही शायर के अनुभवों की परिपक्वता का अहसास कराता है। शेर है-

राह की धूल में डूबा हुआ पहुंचेगा
अपने माज़ी का पता लेने गया है कोई

शेर में कोई किरदार है। वो अपने अतीत में रवाना हुआ है, लेकिन शायर का दावा है कि वो जब आएगा तो ग़र्द आलूद होगा। ज़ाद्दिर है, यादें हलाक़ करके रख देती है। स्मृति और अतीत पर बहुत शेर कहे गए हैं। लेकिन इस शेर में अभिव्यक्ति का सौंदर्य है। सादगी से कही बात का अपना रूतबा है।

जदीद शायरी के शुरूआती दौर में कुछ तत्व बड़े मानीख़ेज होकर ग़ज़लों में व्यक्त हो रहे थे। जदीद ग़ज़ल का वो दौर नए-नए तजुर्बों का दौर था। जब अपनी ज़ात (व्यक्ति) से टकराने के अलावा अपनी तलाश भी प्रमुख तत्व था। आत्म निर्वासन और मोहभंग का वो दौर था (वो दौर कमोबेश अब भी है) अपने-अपने ढंग से अपनी 'मैं' को व्यक्त किया जा रहा था। आबिद आलमी के ये शेर इसी सिलसिले में ग़ौरतलब हैं-

मेरी निगाह में दिन है मेरे बदन में है रात
मेरी किताब अधूरी पड़ी है बरसों से।

देखने को है बदन और हक़ीकत ये है
एक मलबा है जो मुद्दत से उठा रखा है

जाने किस दुख के जंगल में सब पहचानें खो आया है
घर का रस्ता पूछ रहा है आबिद घर की दीवारों से

प्रतीक संश्लिष्ट हैं और गूढ़ भी। बदन किताब है बरसों से अधूरी किताब। बदन मलबा है। यहां बदन केंद्र में है। सहर एक फ़िलासफ़ी है। अधूरापन हर शख़्स की नियति है। तीसरे शेर में पहचान का संकट है। महानगरीय जीवन की यह विडम्बना तब भी थी (और अब भी है) कि मनुष्य अपनी पहचान खोता चला गया है।

1971 में उनकी ग़ज़लों का मजमुआ प्रकाशित हुआ। यहां वो अपने समय को जदीद लहजे में व्यक्त करते सशक्त शायर के रूप में नज़र आते हैं। बाद में उनकी शायरी रूझान और सरोकार बदलने लगते हैं। 1990 में जनवादी लेखक संघ (भिवानी) ने उनकी दूसरी किताब 'नए ज़ाविए' प्रकाशित की। 1971 के बाद का समय आबिद आलमी की शायरी की प्रखरता, तीक्ष्णता और आक्रामकता का समय है। यहां वो एक विद्रोही कवि के रूप में न सिर्फ अपनी शिनाख़्त कराते हैं, बल्कि अपना एक ऐसा अंदाज़े-बयां भी विकसित करते हैं, जिसमें कुछ कर गुज़रने का वलवला है और अल्फ़ाज़ में चमक! कुछ शेर-

उसी तड़प से उसी जोश से चलो यारो
सवेरा दूर नहीं है चले चलो यारो

कभी ये लोग हमारी ही राह तकते थे
जगा के साथ इन्हें भी लिए चलो यारो

कोई फ़सीज भी दरिया को रोक सकती नहीं
अंधेरा चीर के आगे बढ़े चलो यारो

यहां आगे बढ़ने का जज़्बा है। यहां जदीद शायरी के गूढ़ प्रतीक नहीं। बात सीधी, सरल, दिल तक पहुंचती।

आबिद मुद्दे की बात करते हैं। या यूं कहें कि उनकी शेरीयत में ठोस कथ्य है जो प्रखर रूप में व्यक्त होता है।

मैं नए दौर की आवाज़ हूं यानी 'आबिद'
एक इक लफ्ज़ का मफ़हूम नया है मुझमें

वो नए मफ़हूम की ग़ज़लें लिखते हैं और इस बात का उन्हें भरपूर अहसास भी है। वो बेवजह शब्द ख़र्च नहीं करते। विचार की शक्ति से अपनी ग़ज़लों में चेतना पैदा करते हैं। कभी-कभी तो ऐसा लगता है जैसे ग़ज़लों के शब्द चकमक पत्थर की तरह टकराकर रोशनी पैदा कर रहे हैं-

जो लिखते फिरते हैं एक-इक मकां पे नाम अपना
उन्हें बता दो कि इक दिन हिसाब भी होगा

हवसपरस्त तंत्र के बरअक्स शायर का कथन जितना तुर्श है उतना मानवीय! आदिब जब कहते हैं-उसी तड़प से उसी जोश से चलो यारो। तो वो दूसरों की नहीं, अपनी तड़प को बयान रहे होते हैं। इसी सिलसिले में उनकी ग़ज़ल का एक शेर है-

इक-एक दर्द से इतना बिला-झिझक कह दो
हमारे दिल में उठेगा जो दायमी होगा

यह शेर दुखों से मुख़ातिब है। अस्थाई और छोटे-मोटे दुखों को शायर ललकार-सा रहा है कि हमारे दिल में उठेगा (दर्द) जो दायमी (स्थायी) होगा। ज़रा ग़ौर करें तो यह शेर लोक जीवन की आवाज़ बनकर उभरता प्रतीत होता है। जहां दुखों के साथ जीना भी एक कला होती है।

ग़ज़ल एक ऐसी पेचीदा और विचित्र सिन्फ़ (विद्या) है जो अपनी संरचना में रूमानियत को छुपाए रखती है। यूं भी कह सकते हैं कि रूमानियत ग़ज़ल का सौंदर्य है और उसकी सीमा भी। बहुत कम शायरों ने ग़ज़ल के रूमान को तोड़ते हुए विद्रोही स्वर पैदा किए। फ़ैज ने क्रांतिकारी जज्बे की बेहतरीन नज़्में लिखीं। लेकिन ग़ज़ल में-'चले भी आओ कि गुलशन का कारोबार चले' जैसा रूमान रचते रहे। मख्दूम की क्रांतिकारी नज़्में तपिश पैदा करती हैं। लेकिन ग़ज़ल की दुनिया में जब आते हैं तो 'बात फूलों की रात फूलों की' जैसी रूमानियत के रूबरू होते हैं।

हबीब जालिब इस लिहाज़ से विद्रोही शायर थे। वो सम्पूर्ण रचनाकर्म स्वर पैदा करने वाले ऐसे शायर थे, जिनकी आधी के क़रीब ज़िंदगी जेल में गुजरी। उनकी ग़ज़ल का एक शेर है-

उसको शायद खिलौना लगी हथकड़ी
मेरी बच्ची मुझे देखकर हंस पड़ी

आबिद आलमी हबीब जालिब की परंपरा को विस्तार देते प्रतीत होते हैं। हबीब जालिब मोहाज़िर थे तो आबिद आलमी शरणार्थी।

विस्थापन की वेदना को व्यक्त करता आबिद का ये शेर-

हम अपने कंधे पे ही अपना घर उठाए फिरे
कहीं भी बस्ती बसाने का हौसला न हुआ

आबिद की ग़ज़लों में साथीपन है। परामर्श है। चुनौतियों से लड़ने का जज़्बा है। हौसलाअफ़ज़ाई है। यथा-

अब इनको काट के बढ़ जाओ देखते क्या हो
पहाड़ कहने से रस्ता नहीं देता

रात के इस पहाड़ को काटो
उस तरफ़ सुबह राह तकती है

उठाए फिरते हो क्यों बोझ तपते लफ़्ज़ों का
सरे-उफ़क़ अब इसे आफ़ताब-सा रख दो

उपरोक्त कुछ अश्आर के ज़रिए आबिद आलमी की ग़ज़लों में समाज के साथ रिश्ते का पता चलता है। यहां पूरी संचेतना के साथ कमज़ोर के भीतर विश्वास पैदा करने की प्रगतिशील सोच है–पहाड़ कहने से रस्ता कभी नहीं देता। आबिद आलमी तपते हुए लफ़्ज़ों को शरारा बनाकर ग़ज़लों में पिरो देते हैं।

लोक की शक्ति का अहसास यहां है। जो अपनी ख़ामोशी को भी हथियार में बदलने का हुनर रखती है। यही लोक शक्ति उनकी ग़ज़ल के इन अश्आर में और अधिक प्रबल भावना से व्यक्त होती है–

यूं बग़ल में दबाए फिरते हो क्या
आग तूफ़ान जलज़ला कुछ है
यूं ही ख़ामोश तो नहीं ये लोग
सोच लो इनका मुद्आ कुछ है
इसको भी शामिले-सफ़र कर लो
राह में ये पहाड़-सा कुछ है

जनसाधारण के पास जो होता है वो 'थोड़ा-सा' होता है। लेकिन उस शक्ति से वो अनजान-से होते हैं। शायर उसे व्यक्त करते हुए कितने हौसलाकुन प्रतीक इस्तेमाल कर रहा है। आग, तूफान, जलजला कुछ है। 'खामोशी' यहां अर्थवान है तो रास्ते का पहाड़ भी। सबसे ज़रूरी बात। रदीफ 'कुछ' है कितना अधिक सांकेतिक है। यही शैली उनके अश्आर की पहचान है। उनके अश्आर में जोक रौशन ख़्याल होते हैं वो दिलासा देते हैं, सकून बख़्शते हैं।

आबिद ग़ज़ल लिखते वक्त हर तत्व के प्रति सचेत रहते हैं–शब्द, विचार, खानी, काफ़िया सब के प्रति सावधान! रदीफ़ के प्रति भी उतनी जिम्मेदारी का निर्वाह। यहां–देखते क्या हो रदीफ़–किसी जनजागरण में गाए जाने वाले गीतों से छनकर आया हो जैसे।

ग़ज़लों में रदीफ़ों का इतना सुंदर, सार्थक प्रयोग करने वाले आबिद आलमी की बहुत सारी ग़ज़लें बिना रदीफ़ के भी हैं। यह कोई ऐब तो नहीं। लेकिन मुकम्मल ग़ज़ल का अहसास रदीफ़ के साथ ही होता है।

आबिद आलमी ने शहर को केंद्र में रखकर बहुत सारे शेर कहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है जैसे वो मुल्यहीनता को व्यक्त कर रहे हों। शहरी तहज़ीब से वो बेज़ार हों, यथा–

चूसते हैं क़दम-क़दम पे लहू
हम तो इस शहर से चले यारो

न जाने कौन-से लफ़्ज़ों को क्या बैठे
ये क़ातिलों का नगर है मियां यहां ख़ामोश!

शहर केंद्रित बहुत सारे शेर हैं। आक्रोश की अभिव्यक्ति है। आबिद आलमी शहर में रहकर शहर के प्रति तल्ख़ शेर कहते हैं। क्या वो गांव की ओर लौटना चाहते हैं। नहीं लौटना चाहते। उनके पास दूसरा कोई विकल्प भी नहीं। शहर की सभी सुविधाएं हासिल करते हुए शहर का प्रतिवाद!

शहर को लेकर आबिद के अश्आर में नकार का भाव बेशक हो, लेकिन उनकी प्रतिवाद की शायरी अपनी तरह की है। यहां सफ़र में निकल पड़ने की तड़प है। यहां तलाश है और तलाश का अपना फ़लसफ़ा है। यथास्थिति का अस्वीकार और व्यवस्था के छल को बेनकाब करने की जुर्रत है। मसलन ये शेर–

रहीन-ए-क़त्लोग़ारत यूं मेरा हिन्दोस्तां कब तक
लुटेंगी अपने के हाथों की इसकी दिल्लियां कब तक
रहेंगी लफ़्ज़ मज़लूमों के आख़िर बेज़ुबां कब तक
रहेंगी बंद गोदामों में इनकी अर्जियां कब तक

इस 'कब तक' की काट ज़रूरी है। इस यथास्थिति को तोड़ना ज़रूरी है। एक नए समाज की ज़रूरत है। जहां जीवन की गरिमा बरकरार रहे। शोषित समाज का सम्मान आहत न हो। एक ऐसे जहान की तलाश और उसके लिए शायर की तड़प ग़ौरतलब है–

रास्ते पर जमी हुई है बर्फ़
अपने पैरों पे आग मल के चलो
राह मक़तल की और जश्न का दिन
सरफ़रोशो मचल-मचल के चलो

आग मलकर चलना नायाब मुहावरा है। यहां चलने की जिद्द है। इस जिद्द में नई दुनिया तामीर करने की ख़्वाहिश है जो ज़ाहिर नहीं, बातिन है।

दूसरा शेर जिसमें न सिर्फ़ क्रांतिकारी गूंजते हुए स्वर हैं, बल्कि ख़ास तरह का जुनून भी है।

यही ज़िद्द यही वलवला, यही तौकीफ़, यही शेर कहने का सलीका, यही वैचारिक ऊर्जा, बग़ावती तेवर और यही कमज़ोर की पक्षधरता और यही सदाकत भरी हसरत आबिद आलमी की शायरी का सरोकार है।

नए ज़ाविए किताब में शायर अपनी प्रबल भावना और तबोताब के साथ, अपनी तरक्कीपसंद सोच को व्यक्त करता है। यही किताब आबिद आलमी के भीतर खड़े विद्रोही शायर से तआरूफ़ करती है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि दायरा और हर्फ़े-आखिर की ग़ज़लें बेमकसद हैं। उस शायरी का अपना मक़सद है। जदीदियत के दौर में लिखी गई ग़ज़लों का अपना सौंदर्य है।

हर्फ़े आख़िर किताब की ग़ज़लें पढ़ते हुए महसूस होता है कि आरंभ में यहां की आक्रामक तेवर हैं, लेकिन बाद में शायर अपनी निजताओं को मार्मिक और भावनात्मक रूप से व्यक्त करता है। ये शायरी न कमज़ोर है न अपरिपक्व। हम कह सकते हैं कि आबिद आलमी की शायरी का (और उनका अपना) तीसरा पड़ाव है। यहां एक शायर की व्याकुलताएं हैं। ये व्याकुलताएं शायर की ही नहीं कमज़ोर पड़ते किसी भी शख़्स की हो सकती हैं। इन व्याकुलताओं के बरअक्स अनात्म समय

और समाज की कारगुज़ारियां हैं। कुछ शेर–

पत्थरों ने मुझे सुना आख़िर
मुझको आख़िर किया गया महसूस

जानकारों ने वो सुलूक किया
हमको हर अजनबी लगा अपना

मुझको नाकामी का पैकर क्यों अभी से कह रहे हो
मेरा जद्दोजहद से रिश्ता अभी टूटा नहीं है

तेरे पास आने में कासिर मैं तो हूं ही ये बता
क्या घड़ी भर मुझसे मिलने तू भी आ सकता नहीं

कुछ दिनों से वाक़ई क्या रंगे-दुनिया और है
या फ़कत मेरी निगाहों का तकाज़ा और है

उपरोक्त अश्आर किसी आईने की तरह है, जहां संबधों के खंडित और विकृत चेहरे हैं। आत्मकेंद्रित लोग, किसी के पास फ़ुरसत के क्षण नहीं कि दुख सांझा कर सकें। इन अश्आर को पढ़ें तो यह बात शिद्दत से महसूस होती है कि हमारा निस्संग समाज सुख के उत्सव मनाता है। ये ग़ज़लें, जो आबिद आलमी ने जीवन के आख़री दौर में लिखीं, ज़रूरी ग़ज़लें इसलिए हैं कि एक दिन हम सब वो मंज़र देखेंगे, जब एक तरफ हम अकेले, अपनी वीरानियों, उदासियों और स्मृतियों के साथ होंगे, दूसरी तरफ़ बेहिस दुनिया अपने जलवों के साथ।

और आख़िर में सघन प्रेम केंद्रित एक शेर जो पूरी किताब में किसी चमक की तरह मौजूद है, स्मृतियों की गूंज दूर तक सुनाई देती है–

तेरे उतरे हुए चेहरे से ज़ाहिर है कि जल्दी में
मुझे ठुकरा के तेरा वक़्त भी अच्छा नहीं गुज़रा।

आबिद आलमी की शायरी में नए समाज और बेहतर दुनिया को तामीर करने की बेचैनी है। यहां जो शायर का विद्रोही स्वर है, उसमें बनावट नहीं, सदाकत है। यहां भाषा साफ़ शफ़्फ़ाक जीवंत और मानीख़ेज़ है। यहां तीन तरह की ग़ज़लें हैं। यानी कथ्यगत बदलाव निरंतर महसूस होता है। लेकिन हर मक़ाम पर हम ए बा–सलीका, बा–अदब शायर से तअरूफ़ करते हैं।

सम्पर्क–1875, सैक्टर–6, बहादुरगढ़, मो. 098134–91654

•

परख

बौद्धिक साहस और कल्पना की उदात्त तीव्रता का स्वर

□ओम प्रकाश ग्रेवाल व दिनेश दधीचि

आबिद आलमी के ग़ज़ल–संग्रह 'नये ज़ाविए' का मुख्य स्वर सीधी टकराहट का, जोखिम उठाने का है। आबिद आलमी के लिए सृजनात्मकता की यह एक अनिवार्य शर्त है कि जाने–पहचाने तौर–तरीकों की हदों से बाहर निकला जाए–

'नज़र से आगे नये फ़ासले तलाश करें।
वो जो खयाल में हैं रास्ते तलाश करें।।'

चूंकि जीवन के अंतर्विरोध विस्फोटक बिंदु तक पहुंच गए हैं, इसलिए खतरे उठने और साहस दिखाने की अनिवार्यता से बचकर नहीं रहा जा सकता – यह अहसास आबिद आलमी में ज्यादा स्पष्ट और शिद्दत के साथ उभर कर आया है।

आबिद आलमी पाठक का ध्यान यथार्थ के उन पहलुओं की ओर खींचते हैं, जिन्हें वे आमतौर पर देख नहीं पाते। आबिद आलमी पाठक के लिए चीजों को आसान नहीं बनाते, बल्कि उसे झकझोरते और बेचैन करते हैं–

'यूं चुभ रहा है आंख में मंजर ज़रा–ज़रा।
तिनका हो जैसे ज़ख्म के अंदर ज़रा–ज़रा।।
पाया कदम–कदम पे दरिंदों को खेमाज़न
डाली नज़र जो शहर के अंदर ज़रा–ज़रा।
बस्ती में बैठ जाती है टोलों के रूप में,
आती है रेत दर्द की उड़कर ज़रा–ज़रा।।'

हस्तक्षेप की पहली शर्त यही है कि पाठक को यथार्थ के वे पहलू दिखाए जाएं, जिन्हें भुला देना अब खतरे से खाली नहीं रहा। मात्र 'सुबह के ऐलान' से भ्रमित होकर झूठा उत्साह दिखाना आबिद आलमी को हास्यास्पद लगता है और 'ठंडा सूरज' भी उनके किसी काम का नहीं है। आम आदमी जिस हिंसा और आतंक के माहौल में आज 'गूंगी छांव' की तरह जी रहा है, उसमें यह सवाल पैदा होता है–'कौन सी बस्ती है यारो! ये नगर किसका है?' शायर जानना चाहता है–

'घर के आंगन में खिली धूप को भी छू न सकें
काश, समझाए कोई मुझको, ये डर किसका है?'

इस शहर में 'सदा पे बर्छियां टूट के पड़ती हैं' लेकिन साथ ही यह स्पष्ट है कि अब फैसले की घड़ी आ गई है। इस अहसास के चलते आबिद आलमी की ग़ज़लों का तेवर राजनीतिक हो जाता है। स्थिति जैसी हमारे सामने है, उसे वैसा किसी ने बनाया है। उस दुश्मन की उपस्थिति को दार्शनिक स्तर पर ही नहीं, बल्कि राजनीतिक स्तर पर पहचाना गया है। यहां शालीनता की अपेक्षा बौद्धिक साहस और कल्पना की उदात्त तीव्रता मौजूद हैं, खिलवाड़ करने का सहज विश्वास है, चुनौतियों के सामने डट कर खड़े होने का इरादा है–

'जब तलातुम से हमें मौजें पुकारें आगे।
क्यों न हम खुद को ज़रा खुद से उभारें आगे?'

'छुपती फिरती है यूंही राह धुंधलकों में क्यों?
हम नहीं बीच में यूं लौट के जाने वाले।'

आबिद आलमी के कलाम के राजनीतिक तेवर का एक अनिवार्य पक्ष यह भी है कि यहां टकराहट की कल्पना व्यक्ति और दुनियां के बीच नहीं, बल्कि समूहों के बीच की जाती है तथा यह मानकर चला जाता है कि इस टकराहट का अंजाम क्या होना है–बाकी सब बातें इसी सवाल के आधार पर तय होंगी–

'बस्ती के हर कोने से जब लोग उन्हें ललकारेंगे।
आवाज़ों के घेरे में वो कैसा वक़्त गुज़ारेंगे?
सब कुछ लुटवा बैठे हैं हम बाक़ी है अब काम यही
यानी अब रहज़न के सर से अपना माल उतारेंगे।'

कारवां के साथ जुड़ने में, व्यक्ति की समस्याओं को समूह के साथ जोड़ने के किसी भी प्रयास में कवि की वैयक्तिक अस्मिता को ठेस पहुंचने का खतरा बना रहता है। आबिद आलमी के रचनाकार को अपनी खुद्दारी से इतना लगाव है कि सामूहिक संघर्ष की ललकार देते हुए वे अपने स्वर की विशिष्टता और अपनी चेतना की स्वतंत्रता बनाये रखते हैं–

खुद को 'आबिद' काफ़िले से बांध कर
टूट जाओगे अकेले राह में।

'उसकी ये शर्त कि हर लफ्ज़ फ़क़त उसका हो।
मुझको ये ज़िद्द कि जो मानी हो मेरा अपना हो।।'

वस्तुत: आबिद का संबंध उर्दू शायरी में इक़बाल और फ़ैज़ की परम्परा से है, जिसमें संगीतात्मक सौंदर्य की अपेक्षा ओज, नाटकीयता और व्यक्ति की उदात्तता पर अधिक बल दिया जाता है। ग़ज़लों को पढ़ते ही यह अहसास होता है कि यह रचनाकार आंतरिक संघर्षों में से गुज़र कर उनकी आग में झुलस कर निकला हुआ जिजीविषा–सम्पन्न शायर है। यह आधुनिकतावाद में निहित मूल्यों के विखण्डन, अनिश्चय, नैराश्य, अस्पष्टता आदि की सी विडंबनाओं को झेल कर उन्हें पीछे छोड़ चुका है। उसके शे'रों में 'मानी के सिवा भी कुछ है'; नकार, कसाब और बेचैनी के साथ उन तीव्र अंतर्विरोधों का चित्रण है, जिनके बीच में से अपनी राह बनाते हुए शायर नये सिरे से सृजन करता है, सिर्फ पुराने आदर्शों को बचाए रखने की जिम्मेदारी नहीं निभाता।

खतरनाक स्थितियों से आबिद गंभीर तो होते हैं, पर उनसे आतंकित होने की बजाय वे खिलवाड़ या शरारत के लहजे में पाठकों को सचेत करते हैं–

न जाने कौन-से लफ़्ज़ों को क्या समझ बैठें
ये क़ातिलों का नगर है, मियां! यहां खामोश।

इस आत्मविश्वासपूर्ण खिलवाड़ के लहजे और बौद्धिक साहसिकता की स्वाभाविक अभिव्यक्ति ऊर्जा से भरी क्रियाओं, पाठक को भौंचक्का कर देने वाली भाषा की वक्रताओं के रूप में होती है। शैली की इसी वक्रता के अंतर्गत आबिद आलमी कई बार दृश्य–स्पर्श–गंध से संबंधित शब्दों को उनके अपेक्षित संदर्भों से हटा देते हैं ताकि पाठक की प्रतिक्रिया में ज्यादा सजगता और जागरूकता आ सके।

रहनुमाओं के हाथों छले जाने का तीखा अहसास मौजूद है। चूंकि वे पथप्रदर्शक ताकतें, जिन पर भरोसा था, असफल हो गई या अपर्याप्त साबित हुई, स्थिति और विकट हो गई है। अब नये सिरे से व्यूह रचना करनी होगी। रहनुमाओं की साख गड़बड़ा गई है। इस बात में निराश होने की बजाए कवि दृढ़ संकल्प का आह्वान करते हुए जनसाधारण की काहिली को तोड़ने की कोशिश करते हैं। उन्हें झूठी सांत्वना नहीं देते, न ही कोई यूटोपियन समाधान सुझाते हैं। उनके लिए ग़ज़लगोई आम लोगों के साथ जुड़ने का एक ताकतवर साधन है। इनके बयान की सादगी भी इसी जुड़ाव की पुखतगी का सबूत पेश करती है।

साभार-जतन अंक-20-21, वर्ष-6

आबिद आलमी की ग़ज़ल

रात का वक़्त है संभल के चलो
ख़ुद से आगे ज़रा निकल के चलो

रास्ते पर जमी हुई है बर्फ़
अपने पैरों पै आग मल के चलो

राह मक़्तल की और जश्न का दिन
सरफ़रोशों मचल-मचल के चलो

खाइयां हर कदम पे घात में हैं
राहगीरों संभल-संभल के चलो

दायें-बायें है और सा माहौल
राह 'आबिद' बदल-बदल के चलो

मक़्तल : वधस्थल, सरफ़रोश : जान की बाज़ी लगा देने वाला

संस्मरण

कुछ यादें

'आबिद आलमी' यानी रामनाथ चसवाल की

□ महावीर शर्मा

मैं जब आबिद आलमी से पहली बार मिला तो मुझे नहीं पता था कि प्रोफ़ेसर आर.एन.चसवाल आबिद आलमी भी थे। मुलाकात 1968 में गवर्नमेंट कॉलेज, रोहतक में हुई थी जहां सरकार ने उन्हें अंग्रेजी विभाग में प्राध्यापक नियुक्त किया था। मेरा भी उन्हीं के बैच में चयन हुआ था। चसवाल साहब मुझ से 11 साल बड़े थे। कॉलेज केडर में आने से पहले वे दिल्ली में किसी अन्य विभाग में नौकरी करते थे और नौकरी करते करते उन्होंने गाजियाबाद से अंग्रेजी में एम.ए.किया और पंजाब के किसी गैर-सरकारी कॉलेज में पढ़ाना शुरू किया। बाद में सरकारी नौकरी मिलने पर वे रोहतक आए और डी.एल.एफ.कालोनी में किराये पर घर ले लिया। उन दिनों मैं गवर्नमेंट कॉलेज, हिसार में था और रोहतक मेरा काफी आना-जाना लगा रहता था।

मेरी चसवाल साहब से घनिष्ठता प्रोफेसर एस.के.विज और प्रोफेसर एस.एस.ऐलावादी की मार्फत हुई। ऐलावादी साहब डी.एल.एफ. कालोनी में चसवाल जी के पड़ोस में रहते थे। मैं जब ऐलावादी जी के यहां जाता तो हम चसवाल साहब के यहां जरूर जाते और उनके साथ चाय पीते। यहां उनकी चाय की ख़ासियत का जिक्र करना बहुत जरूरी है। उनकी चाय में पत्ती तेज, दूध मात्र 3-4 बूंद और चीनी भी कम होती थी। प्रोफेसर शशिकांत (जो बाद में प्रिंसिपल हो गए)कहा करते थे कि चसवाल साहब की चाय में चम्मच दूध में उलटा डुबो कर छिड़क दो! लेकिन वे इस बात का ध्यान रखते थे कि मेरी चाय के प्याले में दूध और चीनी मेरे स्वाद के मुताबिक हों। चाय पीने के हम सभी शौकीन थे।

बात शायद 1971 की है। मैं हिसार से तबादला होकर गवर्नमेंट कॉलेज, रोहतक आ चुका था। चसवाल साहब के संकलन 'दायरा' का भी प्रकाशन हो चुका था। आबिद साहब दिल्ली में एक साहित्यिक सम्मेलन में शिरकत करने गए थे। उनके साथ मैं भी था। बलबीर राठी और कुंदन गुड़गांवी पहले ही मौजूद थे। ये जमावड़ा ज़्यादातर 'साहित्य के लिए साहित्य' वाले लोगों का था - यानी अदब का काम समाज में बदलाव लाना नहीं बल्कि बात को निखार कर कहना है। आबिद भी बोले। उन्होंने कहा -

सुना कर अपनी अपनी जाने वालों
सुनो मेरा तो किस्सा रह रहा है।

उन्होंने 'लिटरेचर फॉर लिटरेचर' के हामियों को लताड़ते हुए कहा कि लिटरेचर का काम सोसाइटी में हलचल पैदा करते हुए रेवोल्यूशनरी ताकतों को मजबूत करना है। उनका ये बोलना था कि इजलास में तूफान आ गया और लिटरेचर फॉर लिटरेचर के दीवाने वॉक-आउट कर गये। गौरतलब बात है कि दायरा को साहित्य अकादमी, हरियाणा का अवार्ड भी मिला था।

जब वे रोहतक आये तब उनके परिवार में बेटी उपमा थी। जल्दी ही एक बेटा और कुछ वक्फे के बाद एक और बेटा। वे दो बेटों और एक बेटी के बाप थे। भाई लोग समझते थे कि परिवार पूरा हो गया। लेकिन झटका तब लगा जब एक-एक करके उनके परिवार में दो पुत्र-रत्नों की और बढ़ोतरी हो गयी। आखिर इस मसले पर दोस्त डॉक्टर अश्वनी जोशी के साथ आबिद साहब से गुफ्तगू की गई। पता चला कि आबिद साहब छोटा परिवार तो चाहते थे लेकिन इतने शर्मीले थे कि केमिस्ट के यहां जा कर कंडोम खरीदने की हिम्मत नहीं जुटा पाते थे। डा. अश्वनी उनकी नसबन्दी करवाने के लिए मान गए लेकिन शर्त रखी कि नसबन्दी के एवज में जो रुपये मिलेंगे उसकी दारू पार्टी की जाएगी। आबिद साहब तुरन्त तैयार हो गए और रोहतक से बाहर नसबन्दी कैम्प में उनका आपरेशन करवा दिया गया।

आबिद आलमी अपने निजी जीवन में बिल्कुल सादा और हर प्रकार के आडम्बर और दिखावे से दूर, वे अंग्रेजी के समर्पित प्राध्यापक थे। अंग्रेजी व्याकरण पर उनकी गजब की पकड़ थी। अपने कर्तव्य का पूरी निष्ठा और लगन से निर्वहन करने वाले चसवाल साहब ने हरियाणा के भिवानी, महेन्द्रगढ़, रोहतक, गुड़गांव आदि स्थित राजकीय महाविद्यालयों में अध्यापन किया।

उनका सबसे बड़ा सामाजिक सरोकार शिक्षा और शिक्षकों के हितों के लिये संघर्ष रहा। वे कई वर्षों तक हरियाणा राजकीय प्राध्यापक संघ (HGCTU) के महासचिव और प्रधान रहे। उनके जुझारू नेतृत्व में राजकीय महाविद्यालयों के इस संघ ने 1972 में गैर-सरकारी हरियाणा कॉलेज टीचर्स यूनियन के हरियाणा बनने के बाद हुए बड़े आन्दोलन को पूरा समर्थन दिया। याद रहे कि 1972 के उस समय के हरियाणा के मुख्यमंत्री के शिक्षक-विरोधी और तानाशाही रवैये के विरुद्ध यह गैर-सरकारी प्राध्यापकों का यह पहला आंदोलन था। इस समर्थन के कारण सरकार ने उन्हें चार्जशीट किया और सजा भी दी। 1978 के महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय के अध्यापकों के आंदोलन में भी उनके योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। स्कूल अध्यापकों तथा अन्य कर्मचारियों के आन्दोलनों का भी उन्होंने खुल कर समर्थन किया। इन सब पहलकदमियों में उनकी यह पुख्ता समझदारी झलकती है कि काम करने वाला चाहे किसी भी स्तर का हो, सब एक ही बिरादरी के हैं - शिक्षा-क्षेत्र में लगे हुए सब लोगों की बिरादरी - और सब के लिए न्याय होगा तब ही प्रत्येक को भी न्याय मिलेगा। चसवाल साहब ने न केवल नेतृत्व प्रदान किया बल्कि साथियों के रोजमर्रा के संघर्षों में खुल कर साथ दिया । सिर्फ राजे रजवाड़े ही फ्यूडल मानसिकता से ग्रस्त नहीं होते बल्कि हर छोटा बड़ा अफ़सर एक रजवाड़ा होता है जो अपनी ताक़त का नाजायज अहसास कराता है। कुछ प्रिंसिपल अपने ओहदे की वजह से अपने मातहतों को परेशान करने में ही अपनी शान समझते थे

। ऐसे परेशान साथियों के आड़े वक्त में चसवाल साहब उनके साथ खड़े होते थे। वे रोजमर्रा की छोटी छोटी लड़ाइयों में सहकर्मियों को सहारा देते थे। प्रोफेसर वी के शर्मा 1973 में गवर्नमेंट कॉलेज रोहतक से गवर्नमेंट कॉलेज, नारनौल में ट्रांसफर हो कर आये थे । उनका ट्रांसफर नितांत असामयिक हुआ था । असली बात यह थी कि 1972 में उस समय की बंसीलाल सरकार को निजी कॉलेजों के टीचर्स का जबरदस्त आंदोलन का सामना करना पड़ा । वे हड़ताल पर थे और कई प्रोफेसर्स को सरकार ने जेल में बंद कर दिया था। हड़ताल और आंदोलन के कारण उन कॉलेजों में पढ़ाई बिल्कुल ठप थी और छात्र सड़कों पर भटक रहे थे। सरकार को डर था कि कहीं ये छात्र भी अपने टीचर्स के समर्थन में आंदोलन न शुरू कर दें। इसलिए सरकार ने प्राइवेट कॉलेज के छात्रों को पढ़ने के लिए कुछ कोचिंग सेन्टर खोले। इन सेंटर्स में सरकार गवर्नमेंट कॉलेज के प्राध्यापकों को भेजना चाहती थी। हरियाणा गवर्नमेंट कॉलेज टीचर्स एसोसिएशन ने सरकार के इस कदम का विरोध किया। गवर्नमेंट कॉलेज, रोहतक की स्टाफ मीटिंग में प्रोफेसर वी के शर्मा और मैने खुल कर सरकार के इस कदम का विरोध किया और इस के परिणामस्वरूप मेरा और उनका ट्रांसफर तुरत-फुरत तार द्वारा झज्जर और नारनोल कर दिया गया। इसके कुछ ही दिन बाद उच्चतर शिक्षा के निदेशक का नारनौल कॉलेज में आना हो गया और वी के शर्मा ने स्टाफ मीटिंग में उनसे पूछ लिया कि भाईजान मेरा तबादला अचानक नारनौल कैसे हो गया ? शर्मा जी का ये पूछना था कि निदेशक महोदय आग बबूला हो गए और बोले कि तुम्हारी ये जुर्रत कैसे हुई कि मुझे भाईजान कहो? I am not your bhaijan .I am your boss. और मीटिंग बर्ख़ास्त हो गयी। तीन दिनों के बाद उन्हें नोकरी से हटाने का नोटिस आ गया। इस नोटिस से सब सकते में आ गये । लेकिन हिम्मत थी चसवाल साहब की कि उन्होंने शर्मा जी की नोकरी बहाल करवाने के लिए दिन रात एक कर दिया अपने सभी साथियों को इकट्ठा किया और वी के की नोकरी बचाओ अभियान छेड़ दिया और उनको दोबारा नोकरी पर बहाल करवाया।

ख़ासियत ये कि जो भी किया पूरे दिल से किया। शायरी की, तो अपना दिल-ओ-दिमाग़, जज़्बात-ओ-सोच-ओ-फिक्र जैसे उसमें उड़ेल ही दिये हों, पूरी जिम्मेदारी के साथ सामाजिक सरोकार की ऐसी शायरी, जो उनके गुजर जाने के इतने साल बाद भी हमें राह दिखाने की ताकत रखती है।

नज़र से आगे नए फ़ासले तलाश करें
वो जो ख़याल में हैं, रास्ते तलाश करें।

जब ये मालूम है कि बस्ती की हवा ठीक नहीं
फिर इस को अभी बदल लेने में क्या ठीक नहीं।

जानते हैं कि काम बहुत मुश्किल है। मगर अपनी शायरी के जरिये उम्मीद बनाए रखने की ही नहीं, नए रास्ते तलाशते रहने की, खुद को सुधारने की बात कहते हैं:

काम न आएंगे अब चूने-मिट्टी के पैबन्द
चप्पा-चप्पा टूट चुकी है अन्दर से दीवार।

राहों की एक भीड़ थी घेरे हुए उसे
वो फिर भी कह रहा था कोई रास्ता नहीं।

अपनी महरूमियों पे पर्दा न डाल
अपनी महरूमियों की वजह टटोल।

इस सोच और ख़याल के पीछे मौजूदा हालात का वो खाका नजर आता है जिसमें आमजन ही नहीं, सामाजिक बदलाव की कोशिश में लगे लोग भी हौंसलापस्त दिखत हैं, उन्हें रस्ते नहीं सूझते, लेकिन असलियत शायद ये है कि वे उन रस्तों को टटोलने-तलाशने में कहीं कोई नब्ज नहीं पकड़ पा रहे, जबकि

राह हमारी ही तकते थे इस बस्ती के लोग
दस्तक देते ही सब बोले हम तो हैं तैयार।

प्रतिकूल हालात में भी चुनौती स्वीकारने का, आस बनाए रखने का जो माद्दा रामनाथ चसवाल अपने सामाजिक सरोकारों में दिखाते थे, वही 'आबिद आलमी' की शायरी में मौजूद रहा -

ज़िद तो हालात बहुत करते हैं लेकिन 'आबिद'
आदमी उनको सुधारे तो सुधर जाते हैं

'आबिद' इक बार ज़रा नापें तो इसके क़द को
ऐन मुमकिन है कि यूं ही सबसे बड़ा लगता हो

यही जन-हितैषी सोच चसवाल साहेब के सांस्कृतिक सरोकारों में दिखाई देती है। वे हरियाणा जनवादी सांस्कृतिक मंच के संस्थापकों में से थे। हरियाणा जनवादी लेखक संघ के प्रधान भी रहे। उस समय की जनवादी पत्रिका 'प्रयास' (जो बाद में 'जतन' के नाम से छपी) में वे सम्पादन-सहयोगी रहे। भिवानी स्थित 'शहीद भगत सिंह अध्ययन केंद्र' की स्थापना में भी उनकी सक्रिय हिस्सेदारी रही।

हमें रामनाथ चसवाल में 'आबिद आलमी' और आबिद आलमी में रामनाथ चसवाल दिखाई देते हैं। दोनों एक हैं। कोई दोहरापन नहीं है। जो कहा वही जीया भी। व्यवस्था में बदलाव की हसरत और इस बदलाव के लिए जमीनी स्तर की जद्द-ओ-जहद शायर और व्यक्तित्व, दोनों के रोम-रोम में रचे बसे हैं। यह शायर-प्रोफ़ेसर 9 फ़रवरी 1994 को एक असाध्य बीमारी से जूझते हुए इस जहान से उठ गया:

दे गया आख़िरी सदा कोई
फ़ासिलों पर बिखर गया कोई।

सम्पर्क-94160-50645

संस्मरण

चसवाल साहेब सिद्धांत के आदमी थे

□ शशिकांत श्रीवास्तव

मैं अपने-आपको बहुत खुश-किस्मत समझता हूं कि मुझे प्रो. रामनाथ चसवाल के साथ कुछ साल काम करने का मौका मिला। पहले जी.सी. भिवानी और फिर जी.सी. रोहतक में। वह भी अंग्रेजी विभाग में थे और कई बार मैंने उनके साथ क्लास शेयर की। ऐसा अक्सर होता था कि मैं कोई कविता पढ़ा कर आया, तो वह मुझसे पूछते थे कि बरखुरदार, इस पैरे या उसका क्या अर्थ बताया विद्यार्थियों को? उन्हें पता था कि मेरा हाथ कविता को Properly appreciate करने में तंग था, फिर वह मुझे समझाते कि बी.ए. फाईनल तक आते-आते विद्यार्थियों को कविता के finer points भी समझा देने चाहिएं, सिर्फ paraphrasing से काम नहीं चलता। इसी तरह वह ग्रामर पर भी कभी-कभी मेरी क्लास लगाते और बहुत कुछ बताते। उनके सान्निध्य में मैंने भी भरपूर कोशिश की कि मैं अच्छा अध्यापक बन पाऊं। निस्संदेह वह एक बहुत polished और complete teacher थे, जिनकी Grammer, poetry, Prose, plays etc. सब पर पकड़ थी और गहरी समझ थी। उम्र में प्रो. चसवाल मुझसे 7-8 साल बड़े थे, लेकिन काबलियत में वह मुझ से बहुत, बहुत ही बड़े थे।

अत्यंत धीर, गम्भीर चसवाल साहेब सिद्धांतों के आदमी थे, बल्कि यह कहना ज्यादा ठीक होगा कि वह सिद्धांतों के नहीं, बल्कि एक ही सिद्धांत के आदमी थे। उसी सिद्धांत ने उनकी तमाम शायरी को प्रेरित किया और वह उनकी सभी गतिविधियों के पीछे दिखाई देता था। चसवाल साहेब किसी भी शक्ल में किसी का भी, कहीं भी कोई शोषण नहीं सह पाते थे और उसके विरुद्ध आवाज उठाना वह अपना पहला इन्सानी फर्ज समझते थे।

मैं चसवाल साहेब के व्यक्तित्व के एक-दूसरे-बिल्कुल भिन्न-पहलू को दिखाने वाली कुछ यादें शेयर करना चाहता हूं। वह अपने दोस्तों के साथ बैठकर (उस सीमित दायरे में) एक अलग ही इन्सान हो जाते थे - हंसी, मजाक, खिलखिला कर हंसना, जोक्स शेयर करना - ये सब भी उनकी परसनेलिटी में शामिल था। हमारे घर जब पहली बार आए तो श्रीमती जी ने उनसे पूछा - भाई साहेब, आप चाय लेंगे या कुछ ठंडा? चसवाल साहेब ने थोड़ा बनावटी सीरियस होते हुए कहा था कि मुझसे आईन्दा यह सवाल मत पूछना और मुझे देखते ही चाय बना दिया करना और हां मेरी चाय में दूध एक चम्मच होना चाहिए, वह भी उल्टा (जितना भी दूध उस उल्टे चम्मच के साथ, लिपटा आ जाए) दूसरी बात, जब मुझे तुम 'भाई साहेब' कह रही हो तो मेरी छोटी बहन जैसी हुई। इसलिए कभी-कभी पकौड़ी भी चलेगी। ये बातें तकल्लुफ की किसी भी दीवार को तोड़ने के लिए काफ़ी थी। उसके बाद तो अक्सर बैठक जमती, उनकी सिगरेट के कश, चाय की चुस्की के साथ गप्पबाजी। कभी-कभार ताश भी जमती थी।

कालेज में मैंने कई बार कोशिश की कि वह अपनी कोई गज़ल सुनाएं। लेकिन वह कतराते रहे। उनका मानना था कि शायरी सिर्फ knowledgeable audience के सामने सुनाई जानी चाहिए, शायरी तब ही कामयाब है जब सुनने वाले उसे समझें और appreciate करें।

वह कला के लिए कला में ज्यादा विश्वास नहीं करते थे, उनका मानना था कि शायर भी समाज में रहता है, वह समाज में व्याप्त अच्छाइयों-बुराइयों से प्रभावित होता है। ऐसे में शायर का यह फर्ज है कि वह इन बुराइयों को चिह्नित करे, जो सुधार के लिए पहला जरूरी कदम है। हां, शायर के लिए यह भी जरूरी है कि वह डायरेक्ट उपदेश न देकर अपनी बात इशारों में, प्रतीकों के द्वारा कहे, ताकि ग़ज़ल की 'ग़ज़लियत' बनी रहे और ग़ज़ल गद्य न होने पाए पर ऐसी बातें आबिद आलमी बहुत कभी, कभी अपनी कुछ दोस्तों के साथ या मुशायरे में ही किया करते थे। वरना आम तौर पर वह शायरी खास तौर पर अपनी शायरी पर चुप्पी साधे रहते थे।

इतने बरसों के साथ में एक बार मुझसे गुस्ताखी हुई और मैं उनसे पूछ बैठा भाई साहेब आप इतनी शराब क्यों पीते हैं, धीरे-धीरे कम करने की कोशिश क्यों न हीं करते। उन्होंने मुझे देखा और बोले मैं शराब पीता नहीं हूं में उसकी इबादत करता हूं और उसके साथ ही उन्होंने पहली बार वह भी बिना कहे एक शेर कहा :

यह मय-नोशी सही, मय-परस्ती कहते हैं
जहां टपका कोई कतरा, वहीं मैंने जबां रख दी।

उस मौके पर मुझे चुप कराने के लिए चसवाल साहेब के पास इससे अच्छा शेर शायद और कोई नहीं हो सकता था। लेकिन मुझे आज तक यकीन नहीं हुआ कि यह शेर उनका अपना था या किसी और का। यह शेर बहुत अच्छा होते हुए भी आबिद आलमी साहेब की सोच और स्टाईल से मैच नहीं करता।

आखिरी दिनों में आबिद साहब ने शराब और सिगरेट दोनों ही छोड़ने की कोशिश की थी और कुछ हद तक छोड़ भी दी थी, लेकिन तब तक देर, शायद बहुत देर हो चुकी थी। शरीर हड्डियों का ढांचा मात्र रह गया था (मैं उनके शरीर त्यागने से कुछ दिन पहले ही भिवानी उनके घर मिलने के लिए गया था। आंगन में उनका बेटा उन्हें नहला रहा था। उनके कहने पर बेटे ने मुझे वहीं आंगन में कुर्सी रख कर बैठा दिया था) कुछ दिनों बाद ही वह खबर आई जो कोई सुनना-जानना नहीं चाहता था।

•

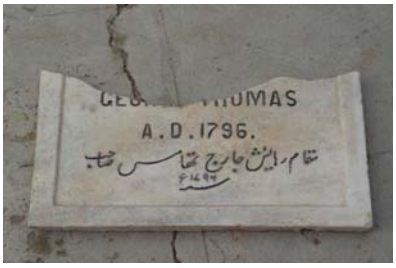

-जार्ज थॉमस प्रकरण के बहाने-

हरियाणा के इतिहास में राजनीतिक अराजकता की एक तस्वीर

□ सुरेन्द्रपाल सिंह

हरियाणा का इतिहास दिल्ली के इतिहास के साथ एकदम जुड़ा रहा है। औरंगजेब के बाद करीब 100 वर्षों तक हरियाणा के इलाकों में सत्ता के नए दांव पेंच, उथलपुथल, अराजकता, लूटपाट आदि की एक तस्वीर को जॉर्ज थॉमस का उभार के माध्यम बनाया गया है। जॉर्ज का व्यक्तिगत जीवन और उसका दुस्साहस भरा रणकौशल अपने आप में चर्चा का एक बड़ा विषय हो सकता है। इस आलेख में उस दौर के राजनैतिक घटनाक्रम को अधिक महत्व दिया गया है ताकि इतिहास के उस दौर से कुछ विशेष सीख पाएं। क्या वजह थी कि इतने लम्बे अर्से में कोई भारतीय शक्ति सत्तासीन नहीं हो पाई और किस प्रकार हमारी आंतरिक कमजोरियों ने ही ब्रिटिश राज के रास्ते स्वत: ही बना दिये। मुग़ल साम्राज्य के पतन के दौर में जॉर्ज थॉमस के जीवन के बहाने तत्कालीन राजनीतिक उथल पुथल और अराजकता के दौर को समझने की कोशिश है।

हिसार में एक स्थान का नाम है जहाजपुल। इसके बगल में ही एक इमारत है जिसमें एक टूटे हुए पत्थर की प्लेट पर अंग्रेजी और फ़ारसी में लिखा है जॉर्ज थॉमस 1796। फ़िलहाल इस इमारत में पुरातत्व विभाग द्वारा एक अजायब घर बनाया हुआ है। इसी प्रकार झज्जर जिले में बेरी के नज़दीक एक गांव का नाम है जहाजगढ़।

जहाजपुल नामक स्थान पर कोई पुल नहीं है और ना ही जहाजगढ़ गांव में कोई किला। इन स्थानों का संबंध रहा है आयरलैण्ड से आए हुए एक ऐसे साहसी नौजवान से जो अपनी हिम्मत, दुस्साहस और तत्कालीन परिस्थितियों की वजह से हरियाणा के एक बड़े हिस्से का स्वघोषित राजा बन बैठा था और उसने हांसी को अपनी राजधानी बनाया था।

जॉर्ज थॉमस आयरलैण्ड के टिपरेरी गांव के एक गरीब परिवार में सन 1756 में पैदा हुआ था। समुद्री जहाज में मजदूरी करते हुए वह सन 1781 में मद्रास आ पहुंचा। इसीलिए उसे जहाजी के नाम से भी जाना जाता है। जॉर्ज शब्द के देसीकरण या उसके जहाजी के कारण हो जहाजपुल, जहाजगढ़ और जहाज कोठी जैसे नामकरण हुए।

सन 1707 में औरंगजेब की मृत्यु के बाद बहादुरशाह, शाह आलम, जहाँदारशाह, फरुखसियर, रफीउद्दोला और मुहम्मद शाह के शासनकाल में विशाल मुगल साम्राज्य के तेजी से टुकड़े होते रहे और सन 1739 में ईरान के बादशाह नादिरशाह के आक्रमण के बाद तो सारा साम्राज्य छिन्न भिन्न हो गया।

सन 1750 के दशाब्द में हरियाणा पर तीन तरफ से छीना-झपटी हुई। दक्षिण दिशा से भरतपुर के जाट राजा सूरजमल ने फरीदाबाद और आसपास के इलाकों पर, पश्चिम दिशा से जयपुर के राजा माधोसिंह ने कानोड (महेंद्रगढ़) तथा नारनौल के क्षेत्रों पर, रिवाड़ी के अहीर चौधरी ने रिवाड़ी और शाहजहांपुर पर, फरुखनगर के बिलोच सरदार ने गुड़गांव, झज्जर और रोहतक के क्षेत्रों पर, रुहेला सरदार कुतुबशाह ने पानीपत और सरहिंद के इलाके अपने कब्जे में कर लिए। इसी प्रकार असदुला खां ने तावडू, बहादुरखां ने बहादुरगढ़, नजाबत खां ने कुरुक्षेत्र, पिपली, इंद्री, अजीमाबाद, शाहबाद पर, मुहम्मद अमीर और हसन खां भट्टी ने फतेहाबाद, राणियां और सिरसा पर अपना अधिकार जमा लिया। और इस प्रकार पूरा हरियाणा मुग़लों के प्रभाव से मुक्त हो गया।

इसी दौरान मराठों ने बादशाह आलमगीर से 1754 में कुरुक्षेत्र का इलाका ले लिया और जल्द ही 1756-57 तक उन्होंने रोहतक, हिसार, रिवाड़ी आदि पर कब्जा करते हुए लगभग पूरे हरियाणा प्रदेश पर प्रभुत्व कायम कर लिया। सन 1761

में पानीपत की तीसरी ऐतिहासिक लड़ाई में मराठों को अहमदशाह अब्दाली के हाथों हार का मुंह देखना पड़ा। इसके बाद अब्दाली ने अम्बाला, कुरुक्षेत्र, करनाल तथा जींद के इलाके सरहिंद में उसके गवर्नर जैनखां के हवाले करते हुए बाकी का सारा इलाका दिल्ली के सर्वेसर्वा रुहेला सरदार नजीबुद्दौला के हवाले कर दिया गया।

1764 में सिक्खों ने सरहिंद के दुर्रानी गवर्नर जैनखां को हरा कर अम्बाला, कुरुक्षेत्र, जींद, करनाल और पानीपत को अपने अधिकार में ले लिया। सन 1772 में मराठा सेनापति महादजी सिंधिया इलाहाबाद में अंग्रेजों की शरण रह रहे मुग़ल बादशाह शाह आलम को दिल्ली लिवा लाने में सफल हो गया और उसे गद्दी पर बिठा कर स्वयं दिल्ली का सर्वेसर्वा बन गया।

कुछ समय बाद अफ़गान सरदार नजफखां ने मराठों को दिल्ली से बाहर कर दिया और जाटों से रिवाड़ी, गुड़गांव और झज्जर, राजपूतों से कानोड (महेंद्रगढ़) और नारनौल, बिलोचों से सोनीपत, रोहतक तथा भिवानी, भट्टियों से हिसार और सिरसा तथा सिक्खों से करनाल और अम्बाला छीनकर सन 1782 में अपनी मृत्यु तक फिर से मुगल आधिपत्य कायम करने में सफल रहा।

उसकी मृत्यु के बाद फिर से महादजी सिंधिया मुगल बादशाह शाह आलम के रक्षक के तौर पर दिल्ली का मुख्य प्रशासक बन गया और इस प्रकार हरियाणा के अधिकतम हिस्से का वाली वारिस। अंततः 30 दिसम्बर 1803 के दिन एंग्लो-मराठा युद्ध में मराठाओं की पराजय के फलस्वरूप सजिअजनगांव की सन्धि के अनुसार अंग्रेजों को दौलतराव सिंधिया से उसके अधिकृत अन्य इलाकों के अलावा हरियाणा प्रदेश भी मिल गया।

इस प्रकार ईस्ट इंडिया कम्पनी ने पानीपत, सोनीपत, समालखा, गन्नौर, हवेली पालम, नूह, हथीन, तिजारा, सोहना, रिवाड़ी, इंद्री, पलवल, नगीना आदि के परगने एक रेजिडेंट के माध्यम से गवर्नर जनरल के अधीन रखे और एंग्लो मराठा युद्ध में अंग्रेजों की सहायता देने वालों को बाकी इलाक़े इस प्रकार बाँट दिए:

फरुखनगर- नवाब इस्से खां, बल्लभगढ़- राजा उमेद सिंह, पटौदी - फ़ैज़तलब खां, लोहारू और फिरोजपुर झिरका- अहमदबख्श खां, रिवाड़ी- राव तेज सिंह, नजफगढ़- भवानी शंकर, झज्जर, दादरी, कानोड, नारनौल और बावल- निजावत अली खां, रोहतक, हिसार, हांसी, महम, बेरी,अग्रोहा, तोशाम, बरवाला, जमालपुर- बम्बू खां, करनाल और गुड़गांव के कुछ परगने- बेगम समरु, अम्बाला, लाडवा, थानेश्वर, जींद, कैथल आदि- सिक्ख सरदारों को पूर्ववत।

नए प्रशासकों के प्रति स्थानीय जनता के विरोधस्वरूप आखिरकार सन 1809-10 तक लगभग समस्त हरियाणा प्रदेश पर अंग्रेजों का प्रत्यक्ष प्रशासन हो गया।

इस पूरी उथल पुथल के दौर में जार्ज थॉमस का प्रकरण पाठकों को विशेष रुचिकर लगेगा। अराजकता और लूटपाट की तत्कालीन परिस्थितियों में यूरोप से आए दुस्साहसी लड़ाकों की प्राइवेट आर्मी की मांग यकायक बढ़ गई थी। ठेके पर लड़ाई करवाना आम बात हो गई थी। मद्रास से चलकर जार्ज थॉमस निजाम हैदराबाद के यहां कुछ महीने फौज में रहा लेकिन उसके बाद लूटपाट करने वाले पिंडारी गिरोह का हिस्सा बन गया। और इस प्रकार लड़ाइयों के अनुभव से पक कर आत्मविश्वास से भरपूर जॉर्ज सन 1786 में दिल्ली आ पहुंचा। वहाँ आकर मेरठ के नजदीक सरधना की जागीरदार बेगम समरू की फौज का कमाण्डर बन गया। सन 1788 में जॉर्ज और बेगम समरू ने शाह आलम द्वितीय की बागी नजफ़ कुली खां से जान बचाई। बेगम समरू से मतभेदों के चलते सन 1792 में जॉर्ज ने महादजी सिंधिया के विश्वासपात्र और कमांडर अप्पा खांडेराव का हाथ थाम लिया और मराठों की ओर से सहारनपुर को सिक्ख जत्थों के हमलों से बचाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। 1793 में उसे अप्पा खांडेराव की ओर से मेवात की जिम्मेवारी दे दी गई। इसी दौर में उसने गुडगांव, बेगम समरू की जागीर बादशाहपुर, बहादुरगढ़ और झज्जर तक लूटपाट की। उसकी बहादुरी से प्रभावित होकर मराठा अप्पा खांडेराव ने उसे झज्जर, दादरी, बहादुरगढ़, रोहतक और नारनौल के इलाके दे दिए। इनके अलावा पानीपत, सोनीपत और करनाल के परगनों की जागीरदारी भी उसे सेना के खर्च के लिए दे दी गई। सन 1797 में महादजी सिंधिया की मृत्यु के पश्चात उनके भतीजे दौलतराव सिन्धिया ने कमान संभाल ली और 1797 में अप्पा खांडेराव की मृत्यु के बाद उनका भतीजा वावन राव उसका उत्तराधिकारी बन गया।

अपने स्वतन्त्र राज्य की इच्छास्वरूप जॉर्ज थॉमस ने 1798 के मध्य में हांसी शहर को अपनी राजधानी बनाते हुए वहाँ के असीरगढ़ किले की मरम्मत करवाई और शहर की जनसंख्या को बढ़ाने हेतु आसपास के इलाकों से 5-6 हजार व्यक्तियों को बसाने की व्यवस्था की। अपने नाम के सिक्के चलाए और पानी के लिए अनेकों कुंए खुदवाए। उस समय के अराजक दौर में दूसरे राज्यों पर हमला करना और हर्ज़ाना वसूल करना वक्त का दस्तूर था।

जॉर्ज ने मराठा मुखिया वावन राव के साथ मिलकर जयपुर के शेखावटी पर हमला किया और जयपुर की भारी भरकम सेना को हराकर मोटी वसूली की। बाद में बीकानेर के राजा ने सुलह करते हुए हर्ज़ाना दे दिया। इसके बाद जॉर्ज ने 1799 में जींद पर हमला किया और किले की लंबे समय तक घेराबंदी के बाद वापसी पर नारनोंद में जींद की फौज को हरा दिया जिसका नेतृत्व पटियाला के महाराजा साहिब सिंह की बहन साहिब कौर कर रही थी। साहिब कौर ने संधि पर हस्ताक्षर किए तो पटियाला के महाराजा को ये नागवार लगा और उसने साहिब कौर को गिरफ़्तार कर लिया। जॉर्ज ने हमलों का सिलसिला जारी रखते हुए उदयपुर, शाहपुरा, लुधियाना, सुनाम, मलेरकोटला, फतेहाबाद, भटिंडा, शाहबाद, बादली,सफीदों, कैथल आदि रियासतों पर हमले किये। पटियाला से उसने ना केवल 1,35,000 रुपये वसूल किये बल्कि साहिब कौर को 7 महीने की कारावास से छुड़वाया।

सन 1801 में बहादुरगढ़ में मराठा कमांडर फ्रेंच जनरल पैरों के साथ एक महत्वपूर्ण बैठक में जॉर्ज ने 50 हजार रुपये मासिक पेंशन के बदले झज्जर को मराठों के हवाले करने का प्रस्ताव ठुकरा दिया। अब तक जॉर्ज के अनेकों दुश्मन पैदा हो

चुके थे। उसकी असली ताकत उसका दुस्साहस और युद्धकला थी ना कि बड़ी फौज और खूब सारे हथियार। जॉर्ज की फ़ौज में 8 बटालियन थी यानी 6000 सिपाही जिनमें से 1000 घुड़सवार, 1500 रोहिल्ला सिपाही, 2000 किलों की सुरक्षा करने वाले थे। उसके पास केवल 50 तोपें थी।

जॉर्ज को खत्म करने के लिए मराठा, सिक्ख और अंग्रेज भी एकजुट हो गए। और शुरू होता है जॉर्ज थॉमस के जीवन का आखिरी पड़ाव। जहाजगढ़ किले की घेराबन्दी करने वालों में शामिल थे – मराठा सरदार बापू सिंधिया, सिक्ख सरदार गुरदुत्त सिंह, बुंगा सिंह, रणजीत सिंह, भरतपुर का शासक, हाथरस का राजा, राजा रामदयाल, रामदीन, नीन सिंह, आगरा छावनी का ब्रिटिश कमांडर। इनकी सम्मिलित फौज में 30 हजार सिपाही और 110 तोपें शामिल थे।

एक लम्बी घेराबंदी के बाद जॉर्ज थॉमस की फौज असहाय हो गई और उसके बहुत से सिपाहियों ने किले को छोड़ना शुरू कर दिया। आखिरकार एक रात को जॉर्ज जहाजगढ़ किले को छोड़ अपने खास ईरानी घोड़े पर चढ़कर 120 मील लम्बे रास्ते से लगातार 24 घंटे की सवारी करते हुए हांसी पहुंचा। अब जॉर्ज थॉमस के लिए परिस्थितियां इतनी विपरीत हो चुकी थी कि उसे मराठों के फ्रेंच जनरल पैरों के सामने आत्म समर्पण करना ही पड़ा। आत्म समर्पण की शर्तों के अनुसार जार्ज को वापस आयरलैंड लौटना था जिसके लिए जनवरी 1802 में वह ब्रिटिश इंडिया की सीमा में जा पहुंचा और अगस्त 1802 में बीमारी के चलते 46 वर्षीय जॉर्ज के अवशेष मुर्शिदाबाद जिले में बहरामपुर स्थान पर एक कब्र में हमेशा के लिए दफ़न हो गए।

संदर्भ :

1. 'Military memoirs of George Thomas' द्वारा विलियम फ्रेंक्लिन, 1805.

2. हरियाणा: ऐतिहासिक सिंहावलोकन, द्वारा के सी यादव एवं एस आर फोगाट।

3. हरियाणा का रियासती इतिहास, द्वारा यशपाल गुलिया।

सम्पर्क-98728-90401

आलेख

गोदान के होरी का समसामयिक संदर्भ

□ आदित्य आंगिरस

गोदान प्रेमचंद का एक ऐसा उपन्यास है जिसमें उनकी कला अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँची है। गोदान में भारतीय किसान का संपूर्ण जीवन – उसकी आकांक्षा और निराशा, उसकी धर्मभीरुता और भारतपरायणता के साथ स्वार्थपरता और बैठकबाजी, उसकी बेबसी और निरीहता का जीता जागता चित्र उपस्थित किया गया है जिसमें उसकी गर्दन जिस पैर के नीचे दबी है उसी को वह सहलाता, अपनी पीड़ा, क्लेश और वेदना को झुठलाता, 'मरजाद' की भावना पर गर्व करता, ऋणग्रस्तता के अभिशाप में पिसता, तिल तिल शूलों भरे पथ पर जीवन यापन करते हुऐ दिखाया है। वास्तव में भारतीय अर्थव्यवस्था का मेरुदंड यह किसान कितना शिथिल और जर्जर हो चुका है, यह गोदान में प्रत्यक्ष देखने को मिलता है। गोदान वास्तव में, 20वीं शताब्दी की तीसरी और चौथी दशाब्दियों के भारत का ऐसा सजीव चित्र प्रस्तुत करता है वैसा साहित्य की किसी भी अन्य शैली में मिलना दुर्लभ है। नगरों के कोलाहलमय चकाचौंध ने गाँवों की विभूति को कैसे ढँक लिया है। जमींदार, मिल मालिक, पत्र-संपादक, अध्यापक, पेशेवर वकील और डाक्टर, राजनीतिक नेता और राज कर्मचारी जोंक बने कैसे गाँव के इस निरीह किसान का शोषण कर रहे हैं और कैसे गाँव के ही महाजन और पुरोहित उनकी सहायता कर रहे हैं। गोदान में ये सभी तत्व प्रेमचन्द के इस उपन्यास में हमारे सामने स्वत: ही प्रत्यक्ष हो जाते हैं। गोदान में बहुत सी बातें एक साथ कही गई हैं। जान पड़ता है प्रेमचंद ने अपने संपूर्ण जीवन के व्यंग और विनोद, कसक और वेदना, विद्रोह और वैराग्य, अनुभव और आदर्श सभी को इसी एक उपन्यास में एक साथ भर देना चाहा है। अत: कई आलोचक इसी कारण यदि उसमें शिथिलता की बात करते हैं तो वे गलत नहीं हैं क्योंकि उसका कथानक शिथिल, अनियंत्रित और स्थान-स्थान पर अति नाटकीय जान पड़ता है। ऊपर से देखने पर पाठकगण निश्चित रूप से महसूस करते हैं परंतु यदि सूक्ष्म रूप से देखें तो गोदान में लेखक का अद्भुत उपन्यास-कौशल दिखाई पड़ेगा क्योंकि उन्होंने जितनी बातें कहीं हैं उनक प्रखरता के माध्यम से कहीं न कहीं निर्वहन किया गया है। सभी बातें कहने के लिये उपयुक्त प्रसंगकल्पना, समुचित तर्कजाल और सही मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रवाहशील, चुस्त और दुरुस्त भाषा और वणर्नशैली में उपस्थित कर देना प्रेमचंद का अपना विशेष कौशल है और इस दृष्टि से उनकी तुलना में शायद ही किसी उपन्यास लेखक को रखा जा सकता है। यह तो निश्चित रूप से मान्य तथ्य है कि जिस समय प्रेमचन्द का जन्म हुआ वह युग सामाजिक-धार्मिक रुढ़िवाद से भरा हुआ था और भारतवर्ष पराधीन होने के साथ साथ न केवल मूल्य संक्रमण के दौर से गुजर रहा था अपितु भारतीय अर्थव्यवस्था का ढांचा भी बदल रहा थ जिसमें भारत परम्परागत कृषि को त्याग कर पश्चिमी औद्योगिक नीतियों को स्वीकार कर रहा था।

यह तो निश्चित रूप से सर्वमान्य तथ्य है कि उपन्यासकार प्रेमचंद के द्वारा सन 1936 में रचा गया गोदान हिंदी साहित्य की एक ऐसी महत्वपूर्ण उपलब्धि है जिसने भारतीय संस्कृति की आधारशिला कृषक का मार्मिक वर्णन मिलता है। यद्यपि प्रेमचंद ने इससे पहले भी उपन्यास लिखे जो अपनी दिशा व उद्देश्य के अभाव में या तो केवल उपदेशवादी और सुधारवादी स्वरों को अभिव्यक्त करने वाले बन गये अथवा गांधीवादी विचारधारा का परिपोषण करने वाले बन गये थे। गोदान में देखने को मिलता है जहां वें उपदेशात्मकता के अभाव में यथातथ्य भारतीय सामाजिकता का स्वरूप प्रकट करते हैं।

हिन्दी साहित्य में गोदान को किसान जीवन की समस्याओं, दुखों और त्रासदियों को द्योतित करता हुआ महाकाव्य माना जाता है और इस महाकाव्य की कथा में गांव और शहर के आपसी द्वंद्व ,भारतीय ग्रामीण जीवन के दुख, गांवों के बदलने टूटने बिखरने के यथार्थ और जमींदारी के चक्र में उलझ कर आतंकित किसानों की पीड़ा का मार्मिक एवं विशद चित्रण एवं विश्लेषण है जिसको पढ़कर सहृदय पाठक न केवल भारतीय किसान की विषम स्थिति के बारे में करुणापूर्वक विचार करता है अपितु सामाजिक परिस्थितियों में भी परिवर्तन की अपेक्षा करता है जिसके परिणामस्वरूप किसान की आर्थिक दशा में सुधार हो सके।

इस उपन्यास की कथा का मूल होरी नामक किसान है जो एक अति साधारण प्रकार का मनुष्य है जो भारतीय कृषि में अनुस्यूत व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करता है। यदि होरी का व्यक्तिगत साक्षात्कार करने की आकांक्षा हो तो उस व्यक्ति को केवल धूप से झुलसी, सांवली और सूखी पड़ी त्वचा, पिचका हुआ मुंह, सिर पर अन्दर की ओर धंसी हुई निस्तेज आंखें और कम उम्र में ही अकारण ही संघर्ष की मार से मुरझाया हुआ मुख की मात्र कल्पना करना ही उचित होगा। होरी के इस बिंब से किसी भी भारतीय किसान का चेहरा बरबस सामने आ जाता है। होरी के जीवन की आर्थिक दुर्दशा का चित्र प्रस्तुत करते हुए प्रेमचंद लिखते हैं – 'घर का एक हिस्सा गिरने को हो गया। द्वार पर केवल एक बैल बंधा हुआ था। वह भी नीमाजान। अब इस घर के संभलने की क्या आशा है। सारे गांव पर यही विपत्ति थी। एक भी आदमी नहीं था जिसकी रोनी सूरत न हो। चलते फिरते थे, काम करते थे, पिसते थे,घुटते थे, इसलिए कि पिसना और घुटना उनकी तकदीर में लिखा था। जीवन में न कोई आशा और न कोई उमंग, जैसे उनके जीवन के सोते सूख गए हों और सारी हरियाली मुरझा गई हो, भविष्य अंधकार की भांति उनके सामने है।'

प्रेमचन्द का इस रचना में गांधीवाद से मोहभंग इसीलिये हुआ है क्योंकिं गांधीवाद किसी भी प्रकार से होरी जैसे किसानों की समस्या का निदान देने में असमर्थ रहा था और इसी कारण गोदान में आकर यथार्थवाद नग्न रुप में हमारे सामने अपने को प्रस्तुत करता है। भारतीय नेता किसानों की समस्याओं का निदान ढूंढने में असमर्थ रहे हैं और कृषि संबंधी समस्याओं ने वर्तमान युग में विकराल रूप धारण कर लिया है जिसके परिणामस्वरूप वर्तमान समय में किसान आत्महत्या करने के लिये बाध्य हो जाता है।

'गोदान' एक भारतीय कृषक की ऐसी कथा है जिसमें कृषक जीवन भर अथक प्रयास करता है कि उसकी आर्थिक स्थिति बेहतर हो सके, इसी कारण वह अनेक कष्ट सहता है ताकि वह मर्यादा की रक्षा कर सके। वह दूसरों को प्रसन्न रखने का प्रयास भी करता है, किंतु उसे इसका फल नहीं मिलता और अंत में लुटने के लिये मजबूर होना पड़ता है और अपनी उस मर्यादा को बचा नहीं पाता जिसका वह बात-बात में उद्धरण देता रहता है। परिणामत: वह जप-तप के अपने जीवन को ही 'मरजाद' की रक्षा के लिये होम कर देता है। यह होरी की कहानी नहीं, उस काल के हर भारतीय किसान की आत्मकथा है।

होरी के शोषण के ऐतिहासिक कारण हैं । रामविलास शर्मा इन्हीं संदर्भों में अपना मत अभिव्यक्त करते हुए कहते हैं कि ''गोदान में किसानों के शोषण का रूप ही दूसरा है। रायसाहब के कारिंदे सीधे होरी का घर लूटने नहीं जाते, मगर होरी लुट जाता है कचहरी कानून के सीधे हस्तक्षेप के अभाव में भी उसकी जमीन छिन जाती है। होरी जैसा किसान शोषण के औपनिवेशिक तंत्र के सामने अकेला और निरीह है। होरी कहता है गांव में इतने आदमी तो हैं, किसी पर बेदखली नहीं आई, किस पर कुड़की नहीं आई । धनिया के पारिवारिक जीवन का अनुभव यह है कि कितनी भी कतर ब्योंत करो, लगान बेबाक होना मुश्किल है। इसी मुश्किल और असंभवता को प्रेमचंद ने गोदान का सार बना डाला है। गोदान अंतत: दो सभ्यताओं का संघर्ष है। एक ओर किसानी सभ्यता है जिसका प्रतिनिधित्व होरी करता है जबकि दूसरी ओर महाजनी सभ्यता है। यह स्वाभाविक है कि सामंती सभ्यता से महाजनी सभ्यता के इस बदलाव में आखिरकार होरी पराजित होता है। मरजाद की जिद के साथ होरी का मरना गोदान के अंत को एक त्रासद बिंदु बना देता है । इस यथार्थवादी उपन्यास के नायक होरी का यह त्रासद अंत पाठक को देर तक और दूर तक अपनी जद में लिए रहता है।

होरी कितने भी कष्ट सहकर मरजाद का मोह नहीं छोड़ पाता है। उसके जीवन का आधार मरजाद है और उस पर धर्म, संस्कारों , नैतिकता और आदर्शों का दबाव भी बहुत गहरा है। एकाध स्थान पर जब वह अपनी नैतिकता से डगमगाता भी है तब भी वह अपने नैतिक द्वंद्व और दर्द का अनुभव करता है कि उसे जो नहीं करना चाहिये वह वही कर रहा है क्योंकि वह सदा से ही दूसरों के दबाब में है। होरी जैसे मामूली से किसान को भी लेखक ने निम्न मध्यवर्गीय ऐसी नैतिकता का शिकार दिखाया है जो दूसरा इस द्वंद्व के कारण न तो वह नैतिकता का पूरी तरह से पालन कर पाता है और न अपने स्वार्थों की पूर्ति कर पाता है।

होरी की यह नैतिकता एक आम आदमी की अपरिभाषित और ओढी हुई नैतिकता का एक ऐसा जामा है जो भारतीय मनुष्य को धर्म भीरू बनाए रखता है। होरी की जिंदगी की यही ओढी हुई नैतिकता जन्य नियति आज भी आम किसानों की नियति बन जाती है जहां वह अपने जीवन को गौरवपूर्ण बनाना चाहता है परन्तु अनथक प्रयासों के परिणामस्वरूप वह अपने जीवन को सामाजिक मर्यादा के अनुसार चलाने के लिये बाध्य हो जाता है। गरीबी और शोषण के बावजूद मर्यादा से साधारण जीवन जीने की इच्छा और जिद में पिसता हुआ होरी भारतीय समाज के सामने आज भी उद्धृत किया जाता है । सारे गांव के सामने अपनी पत्नी को पीटने में उसकी इज्जत नहीं जाती और अकारण ही पुलिस द्वारा उसके घर की तलाशी से जाती है। ठाकुर जी की आरती के लिए वह इसलिए नहीं उठ सकता क्योंकि उसके पास चढ़ावे के लिए तांबे का एक भी पैसा नहीं है और ऐसी स्थिति में वह सबकी आंखों के सामने हेठी होगी, जब ग्रामीण

समाज को उसकी आर्थिक स्थिति का पता चलेगा। अपनी जान पर खेलकर कुल मर्यादा की रक्षा करने वाला होरी परम्पराओं, रुढ़ियों और धार्मिक कुरीतियों का निरीह शिकार दिखाई देता है। शोभा द्वारा पूछे गए सवाल कि इन महाजनों से कभी पीछा छूटेगा या नहीं के उत्तर में होरी कहता है 'इस जनम में तो आशा नहीं है भाई । हम राज नहीं चाहते , भोग विलास नहीं चाहते , खाली मोटा झोटा खाना और मरजाद के साथ रहना चाहते हैं'। होरी गृहस्थ का आधार केवल जमीन को मानता है। अपने भाइयों से और फिर अपने बेटे गोबर से अलगोझे का आघात भी उस जैसे मरजाद पालक के लिए बहुत बड़ा आघात है ।

सम्पूर्ण गोदान में किसानों का खून चूसने वाली महाजनी सभ्यता का क्रूर शोषण चक्र दिखाई देता है जिसमें होरी और उस जैसे असंख्य गुमनाम किसान साधन विहीन किसान फंसे हुए हैं। व्यवस्था के शोषण के शिकार ये किसान अपमान और पीड़ा से भरी जिंदगी को मर मर कर अपना जीवन जीते हैं। महाजनी सभ्यता द्वारा किये जा रहे शोषण और संत्रास को वह चुपचाप सहता है। वह इस लंबी परम्परा को न उलटता है और न पलटता है केवल बर्दाश्त करता है। वह मानता है कि जिन तलवों के नीचे गर्दन दबी हो उनको सहलाने में ही उसकी कुशलता है।

होरी के चरित्र में विद्रोह और क्रांति की इच्छा न दिखाकर प्रेमचंद ने होरी को एक आम किसान का प्रतिनिधि बनाए रखा जो निर्द्वन्द्व भाव से सभी कष्ट सह कर भी अपनी ओढ़ी हुई मर्यादा को प्रमुखता देता है। इसे लेखक का यह यथार्थवादी नजरिया कह सकते हैं कि जिसके चलते होरी क्रांतिकारी नायक नहीं बन पाता अथवा शोषण करने वालों का हृदय परिवर्तन नहीं दिखता, क्योंकि महाजनी सभ्यता में यदि कुछ भी प्रमुख है तो वह केवल पैसा है जो होरी के पास नहीं है। प्रेमचंद ने औपन्यासिक कथा को दुखांत रूप दिया है। इसी सोच के कारण प्रेमचन्द सामाजिक व्यवस्था पर एक ऐसा प्रश्नचिन्ह लगाते है जो समसामयिक समय में भी वैध है। इन्हीं संदर्भों में उपन्यास का अन्तिम भाग द्रष्टव्य है:

'क्या करे, पैसे नहीं हैं, नहीं किसी को भेज कर डाक्टर बुलाती। हीरा ने रोते हुए कहा - भाभी दिल कड़ा करो। गोदान करा दो, दादा चले। धनिया ने उसकी ओर तिरस्कार की आंखों से देखा। अब वह दिल को और कितना कठोर करे? अपने पति के प्रति उसका जो धर्म है, क्या यह उसको बताना पड़ेगा? जो जीवन का संगी था, उसके नाम को रोना ही क्या उसका धर्म है? और कई आवाजें आईं - हाँ, गोदान करा दो, अब यही समय है। धनिया यंत्र की भांति उठी, आज जो सुतली बेची थी, उसके बीस आने पैसे लाई और पति के ठंडे हाथ में रख कर सामने खड़े मातादीन से बोली - महराज, घर में न गाय है, न बछिया, न पैसा। यही पैसे हैं, यही इनका गोदान है। और पछाड़ खा कर गिर पड़ी।' उपन्यास का यह अन्त पाठको के मन में गहरी संवेदना भर देती है।

प्रेमचंद ने गोदान को संक्रमण की पीड़ा का दस्तावेज बनाया है। इस उपन्यास में होरी ही एकमात्र ऐसा पात्र है जो समयानुसार परिवर्तित नहीं होता है। होरी का समयानुसार अपने को न बदल पाना ही उसके व्यक्तित्त्व का अहम पक्ष है । भारतीय सामाजिक बदलाव के युग में सामंतवाद से पूंजीवाद की ओर बदलते युग में होरी का बेटा गोबर किसान से मजदूर बन जाता है। यह भी महत्त्वपूर्ण है कि यद्यपि गोबर का भी शोषण चलता रहता है लेकिन उसमें प्रतिरोध का स्वर बना रहता है अत: वह बच जाता है। यहां तक कि धनिया भी विद्रोहिणी है, वह गांव भर के सामने सबसे लोहा लेती है । किंतु केवल एक होरी ही है सामंतवादी प्रथा के मूल्यों को ही ढोता रहता है ,वह न तो अपनी मरजाद को छोड़ पाता है न ही गांव को, न जमीन को और न कृषि को। अंतत: वो मरता भी है गांव को शहर से जोड़ने वाली सड़क को बनाते हुए, वही सड़क जो अंतत: गांव पर शहर के आधिपत्य की घोषणा है। यह सड़क सामंतवाद के पतन की और पूंजीवाद की जीत की निशानी है।

गोदान में शोषण के अबाध चक्र को प्रस्तुत कर उसके प्रति जनजीवन को सावधान करते और अंत में वर्गहीन समाज मे सामंजस्य का संदेश दिया है। ●

वीई.बी.आई.एस. एण्ड आई.एस., साधु आश्रम, होशियारपुर

सिनेमा का बदलता स्वरूप

□ पवन कुमार शर्मा

2014 से सिनेमा मे क्रान्ति का बिगुल बज चूका है। अब फिल्म बनाने से पहले के सवाल खत्म हो चुके है। जैसे फिल्म बनाने के लिए पैसा कहाँ से आएगा बस इस सवाल का उत्तर जानते जानते आदमी की पूरी उम्र निकल जाती थी। आज सिनेमा के डिजिटल होने से इस सवाल का महत्व ही कम हो गया। शूटिंग में और साउंड में नेगेटिव का खत्म हो जाने से फिल्म बनाने के बजट पर बड़ा असर पड़ा है। फाइनल प्रिंट भी नहीं बनाना है बस्स हार्ड डिस्क मे लेकर seta light में lode करना है और जितने मर्जी थिएटर मे एक ही समय में देख सकते है। कैमरा में भी बहुत बड़ा परिवर्तन आया है। बड़े-बड़े कैमरा की जगह छोटे कैनन मार्क 3 और ब्लैक मैजिक जैसे कैमरे पर सम्पूर्ण फिल्म बनाई जा रही है।

आज इंडिया मे 50 और 100 करोड़ की फिल्म बन रही है वहीं दूसरी तरफ 10 और 20 लाख की फ़िल्म भी बन रही है जो राष्ट्रीय और अंतराष्ट्रीय स्तर पर सराही जा रही है।

निर्देशक राजीव भाटिया की निर्देशित फिल्म पगड़ी इस का जीवंत उदारण है। जिसे 2014 की बेस्ट हरयाणवी फिल्म और उस की कलाकार बलविंदर कौर को राष्ट्रीय पुरस्कार से नवाज़ा गया। निर्देशक और कैमरामैन ने हरयाणा के एक गांव मे जा कर स्थानीय कलाकारों के साथ इस फिल्म का निर्माण किया। कम से कम साधनों से बनाई ये फिल्म आज के फिल्म निर्माण का जीता जागता प्रमाण है।

आज फ़िल्म बनाने के लिए एक जज्बे की जरूरत है। हर वो नौजवान जो फिल्म बनाने का जज्बा रखता है वो किसी बजट मे फ़िल्म बना सकता है।

फिल्म बनाने के पोस्ट प्रोडक्शन लैब भी बंद से होते जा रहे है। स्टूडियो में ही फिल्म का पूरा काम हो जाता है।

स्त्री-चिंतन मार्फत
'गूंगे इतिहासों की सरहदों पर'

□ अंकित नरवाल

दुनिया की आधी आबादी होने के बावजूद स्त्रियों की अपनी स्वतंत्रता, समानता और सत्ता के लिए तथाकथित लैंगिक नियमों, संस्कृतियों और पितृसत्तावादी मानदण्डों से जद्दोजहद जारी है। शताब्दियों से विवाह, विज्ञापन, सौंदर्य-प्रसाधन और सामंती सारणियों के तमाम प्रयोजन उसे माल में तब्दील कर उसकी खरीद-फरोत पर आमदा हैं। स्त्री-जीवन की इसी जद्दोजहद के भावबोध से भरी सुबोध शुक्ल की अनूदित पुस्तक 'गूंगे इतिहासों की सरहदों तक' नारी-जीवन के पाश्चात्यी दृष्टिकोण को सामने लाती है, जिससे मुख्यत: अमेरिका और यूरोप का बीसवीं शताब्दी का स्त्रीवादी-चिंतन हमारे सामने आता है। बेट्टी फ्रीडन, केट मिलेट, शुलामिथ फायरस्टोन, एंड्रिया डुआर्किन, नवल अल सादवी, ग्लोरिया जां वॉटकिंस 'बेल हुक्स', नाओमी वुल्फ और फ्रिस्टीना हॉफ सॉमर्स नामक आठ स्त्री-चिंतकों की प्रमुख पुस्तकों से कुछ चुने हुए लेख इस पुस्तक में शामिल किए गए हैं, जो स्त्री-जीवन के संघर्षों की ओर हमारा ध्यान ले जाते हैं।

इस पुस्तक ने पाश्चात्य परिवेश की पितृसत्तावादी मानसिक जद पहचानी है और लिंगवादी समाज के ताने-बाने में स्त्रियों से होते शोषण की तहों को खंगाला है। पितृसत्तावादी ठसक के कारण स्त्री का सौंदर्य कब विज्ञापन में बदल दिया जाता है? तथा उसकी निजता कब मॉलवादी संस्कृति में नीलामी पर उतर आती है?, इसका यह पुस्तक पढ़कर सहज ही अंदाजा लगाया जा सकता है। पाश्चात्य चिंतन की पिछली दो शताब्दियों के नारीवादी इतिहास को समेटे यह पुस्तक पितृसत्ता के उन सभी संदर्भों तक पहुँची है, जहां स्त्रियां रोजगार, स्वप्न, आकांक्षा और योग्यता की सभी सूचियों से नदारद हैं। एलिजाबेथ कैडी स्टेंटन, लूसी स्टोन, ग्रिम्स बहनें, ल्यूक्रीटिया माट, सूजन बी. एंथनी, सिमोन दा बाउवार जैसी प्रथम पंक्ति की नारीवादी आलोचकों के संदर्भों से लेकर रूसो, मार्क्स, फ्रायड, मिल, रस्किन, डार्विन तक के समाज-मनोवैज्ञानिक एवं भौतिक वैज्ञानिकों के संदर्भों से भरी यह पुस्तक इतिहास, विज्ञान, राजनीति, दर्शन और पूंजीवादी षड्यंत्र में गुमराह किए जा रहे स्त्रीवादी विमर्श को समझने का अवसर प्रदान करती है। पाश्चात्य परिवेश में पूंजी और पितृसत्ता की सियासत स्त्री को भिन्न-भिन्न पहलुओं में उलझाकर मुख्य बिन्दु से दूर करती रही है। स्त्री की समानता और स्वतंत्रता के वास्तविक प्रश्न गुमराह किए जाते रहे हैं। उसका वास्तविक प्रश्न कि वह जीवित क्यों है? किसी भी प्रकार सामने आने से रोका गया है। यह पाश्चात्य परिवेश और भारतीय स्त्रीवादी चिंतन के तुलनात्मक संदर्भों के लिए भी अनेक अवसर जुटाती है और एकबारगी हम अपने स्त्रीवाद की नींव पहचानने लगते हैं।

बेट्टी फ्रीडन की पुस्तक The Feminine Mystique के दो अध्यायों Problem That Has no Name और Crisis in the Woman's Identity के अनुवाद हमें 1960 ई. के अमेरिकी समाज के स्त्रीवादी परिप्रेक्ष्य को समझने का अवसर प्रदान करते हैं। यह लेख बताते हैं कि तत्कालीन अमेरिकी समाज में महिलाएँ अपने परिवारों में घरेलू महिला के सारे काम करती हुई एक गहरी ऊब से भर गईं थीं। बहुतेरी महिलाओं के साक्षात्कारों से भरे ये लेख दर्शाते हैं कि इन महिलाओं के परिचय या तो 'अमुक की मां' या 'अमुक की पत्नी' के संबोधनों द्वारा होते थे, जिसके कारण वे अपने वास्तविक परिचय तक की मोहताज थीं। एक कॉलेज की कुछ लड़कियों के साक्षात्कारों का उदाहरण देती हुई फ्रीडन लिखती हैं, 'त्रासदी यह थी कि किसी ने हमारी आंखों में झांककर यह नहीं कहा कि इसका फैसला तुम्हें करना है कि तुम अपनी जिन्दगी के साथ, अपने पति की पत्नी और बच्चों की मां बनने के अलावा क्या करना चाहती हो। मैं इसे छत्तीस साल तक कभी सोच ही नहीं पाई। और मेरे पति अपने काम में इतने व्यस्त थे कि वह हर रात मेरे पास हो भी नहीं पाते थे। तीनों बच्चे दिनभर के लिए स्कूल में होते थे। मैंने लगातार और बच्चों के लिए प्रयास किए...रक्त-संबंधी विकारों के बावजूद। दो गर्भपातों के बाद मुझे कहा गया कि मुझे रुक जाना चाहिए तो ऐसा लगा जैसे मेरा विकास और बढ़ाव ही खत्म हो गया था। एक बच्चे के

त्रासदी यह थी कि किसी ने हमारी आंखों में झांककर यह नहीं कहा कि इसका फैसला तुम्हें करना है कि तुम अपनी जिन्दगी के साथ, अपने पति की पत्नी और बच्चों की मां बनने के अलावा क्या करना चाहती हो। मैं इसे छत्तीस साल तक कभी सोच ही नहीं पाई। और मेरे पति अपने काम में इतने व्यस्त थे कि वह हर रात मेरे पास हो भी नहीं पाते थे। तीनों बच्चे दिनभर के लिए स्कूल में होते थे। मैंने लगातार और बच्चों के लिए प्रयास किए...रक्त-संबंधी विकारों के बावजूद। दो गर्भपातों के बाद मुझे कहा गया कि मुझे रुक जाना चाहिए तो ऐसा लगा जैसे मेरा विकास और बढ़ाव ही खत्म हो गया था। एक बच्चे के तौर पर मैं यह जानती थी कि मैं बड़ी हूंगी, कॉलेज जाऊंगी, फिर शादी होगी...और वहां तक जहां तक एक लड़की सोच सकती है। इसके बाद आपका पति आपके जीवन का संचालक होता है, उसे निश्चित करता है और पूर्ण करता है। यह तब तक नहीं था जब तक मैं एक चिकित्सक की पत्नी के तौर पर बुरी तरह अकेला महसूस नहीं करने लगी। बच्चों पर चिल्लाती रहती क्योंकि वे मेरे जीवन को वैसे नहीं भरते थे जैसे मैं अपने जीवन को चाहती थी। मुझे अभी भी निर्णय करना था कि मैं क्या होना चाहती थी। मेरा बढ़ना अभी भी रुका नहीं था। पर इसे भली-भांति समझने में मुझे दस साल लग गए।

तौर पर मैं यह जानती थी कि मैं बड़ी हूंगी, कॉलेज जाऊंगी, फिर शादी होगी...और वहां तक जहां तक एक लड़की सोच सकती है। इसके बाद आपका पति आपके जीवन का संचालक होता है, उसे निश्चित करता है और पूर्ण करता है। यह तब तक नहीं था जब तक मैं एक चिकित्सक की पत्नी के तौर पर बुरी तरह अकेला महसूस नहीं करने लगी। बच्चों पर चिल्लाती रहती क्योंकि वे मेरे जीवन को वैसे नहीं भरते थे जैसे मैं अपने जीवन को चाहती थी। मुझे अभी भी निर्णय करना था कि मैं क्या होना चाहती थी। मेरा बढ़ना अभी भी रुका नहीं था। पर इसे भली-भांति समझने में मुझे दस साल लग गए।'[1] फ्रीडन को अमेरिकी पितृसत्ता के संबंध में लगता है कि वह स्त्री-अस्तित्व के मूल प्रश्न को रोजगार, घरेलू कामकाज और बहुत हद तक यौन-स्वतंत्रता जैसी दूसरी चीजों में परिवर्तित कर रहा है। वे दर्शाती हैं कि 1960 ई. के आसपास तक अमेरिकी महिलाएं एक अदद औरत के रूप में ही जी रही थीं, बावजूद उन्हें कुछ राजनीतिक अधिकार मिले हुए थे, जिनका अधिकतर प्रयोग उनके पति ही करते थे। फ्रीडन को लगता है कि इस प्रकार की व्यवस्था ने महिला के सामने उसकी पहचान का संकट खड़ा किया है। वे लिखती हैं, 'मेरी मान्यता यह है कि आज औरतों की समस्या का केन्द्रबिंदु यौनगत नहीं, बल्कि अस्तित्वगत है। प्रौढ़ता से बचाव या पलायन स्त्री-अबूझपन के द्वारा बनाए रखा जाता है। यह मेरा मानना है कि जैसे विक्टोरिया संस्कृति ने औरतों और उनकी बुनियादी यौन-जरूरतों को स्वीकार अथवा तृप्त करने की इजाजत नहीं दी थी। हमारी आज की संस्कृति, स्त्रियों को मनुष्य की भांति अपने व्यक्तित्व को प्रौढ़ और संपूर्ण बनाने की बुनियादी आवश्यकताओं को स्वीकार अथवा संतुष्ट करने की अनुमति नहीं देती है और यह एक ऐसी आवश्यकता है जो उनके लिए एकमात्र तय कर दी गई यौन-भूमिका के जरिये परिभाषित नहीं की जा सकती है।'[2] अर्थात् फ्रीडन का मत स्पष्ट है कि अमेरिकी स्त्री के सामने आज प्रमुख समस्या अपने होने के संबंध में एक स्पष्ट धारणा बना लेने की अनुपलब्धता है और तमाम तरह की मानसिकता उसे इस प्रश्न से दूर ही रहने की ओर प्रेरित कर रही हैं।

केट मिलेट की पुस्तक The Sexual Revolution के दो शुरुआती खण्डों Political और Polemical के अनुवाद अमेरिकी यौन-क्रांति के इतिहास को समझने का अवसर प्रदान करते हैं। लिंगवादी समाज द्वारा स्त्री के शरीर को विवाह के तथाकथित आवरण में उलझाकर अपनी मलकियत में किस प्रकार बदला गया तथा रोजगार, शिक्षा और वेश्यावृत्ति जैसी अनेक सारणियों में उसे नियमित करने के अनेक प्रयोग लगातार किए गए आदि जैसे विविध विषयों को ये लेख बड़ी गहराई से सामने लाते हैं। मिल, रस्किन, एंगिल्स आदि की मान्यताओं और अनेक रिपोर्टों का हवाला देकर मिलेट ने इन लेखों में स्त्री-संघर्ष के 50 वर्षों का एक मुकम्मल कैनवस तैयार किया है। मिलेट ने अपने लेखों में यौन-क्रांति का सम्पूर्ण इतिहास, स्त्री-शिक्षा, रोजगार, वेश्यावृत्ति जैसे विषयों की ऐतिहासिक रूपरेखा प्रकट की है और पितृसत्ता की जड़ों तक पहुँचने का प्रयास किया है। पति और पिता का सामंती संस्कार मिलेट की आलोचना का केन्द्र रहा है। वे विवाह को सामंती व्यवस्था का अंग मानती हैं, जिसके आवरण में पुरुष स्त्री को अपनी बपौती बना लेता है। धार्मिक कानून भी पितृसत्ता को ही मजबूत करते हैं। अमेरिकी कानून के संबंध में मिलेट लिखती हैं, 'पति कितना भी गैर-जिम्मेदार क्यों न हो, बच्चों के प्रति चाहे जितना लापरवाह हो, फिर भी कानून उसे अपने ही आश्रितों की जिंदगी की कीमत पर, कभी, किसी भी वक्त पत्नी की सेवाएँ लेने की अनुमति देता था। परिवार का मुखिया होने के नाते पति ही पत्नी और बच्चों का स्वामी था तथा पत्नी को तलाक देकर या परित्यक्त करके भी उसके बच्चों को अपने पास रख सकता था। एक पिता, कानून को आदेशित कर सकता था कि अपने रिश्तों की संपत्ति को वह गुलामों के मालिक की तरह प्रयोग कर सके। पत्नियों की अपनी कोई इच्छा नहीं हो सकती थी। उन्हें मजबूरन कैद किया जा सकता था; अंग्रेज पत्नियों को पतियों के साथ जाने को मना करने पर जेल में रहना पड़ता था।'[3] मिलेट का वैवाहिक संस्था की ही भांति रोजगार के संबंध में भी यही मानना है कि इंग्लैंड और अमेरिका में महिलाओं के लिए रोजगार के अवसर उन ही जगहों पर उपलब्ध थे, जहां शरीर के प्रयोग की आवश्यकता थी, बजाय दिमाग के। मिलेट मिल और रस्किन के अंतर्विरोधों के माध्यम से स्त्री के संबंध में पितृसत्तावादी मानसिकता को साफ कर देना चाहती हैं। मिल को विश्वास था कि स्त्रियों को अपने अस्तित्व के लिए विवाह, रोजगार और शिक्षा की तथाकथित सारणियों को उखाड़ फैंकना चाहिए, जबकि रस्किन पितृसत्ता का ही हिमायती था। मिल का दृष्टिकोण बताती हुईं मिलेट लिखती हैं, 'मिल के लिए विवाह की संस्था नारी को बंधुआ मजदूर बनाती है। इस संस्था का इतिहास विक्रय और शक्ति पर आधारित रहा है, जहां पत्नी की जिंदगी और मौत की डोर पति के हाथ में होती है।...तलाक देने का अधिकार पति को था, पत्नी को नहीं, अंग्रेजी कानून पति-हत्या को लघु देशद्रोह मानता था(जो उग्र देशद्रोह से अलग था) क्योंकि पति का स्थान पत्नी के लिए सम्राट की तरह था, जिसकी हत्या की सजा जलाकर मार डालना थी।'[4]

अमेरिकी कानून के संबंध में मिलेट लिखती हैं, 'पति कितना भी गैर-जिम्मेदार क्यों न हो, बच्चों के प्रति चाहे जितना लापरवाह हो, फिर भी कानून उसे अपने ही आश्रितों की जिंदगी की कीमत पर, कभी, किसी भी वक्त पत्नी की सेवाएँ लेने की अनुमति देता था। परिवार का मुखिया होने के नाते पति ही पत्नी और बच्चों का स्वामी था तथा पत्नी को तलाक देकर या परित्यक्त करके भी उसके बच्चों को अपने पास रख सकता था। एक पिता, कानून को आदेशित कर सकता था कि अपने रिश्तों की संपत्ति को वह गुलामों के मालिक की तरह प्रयोग कर सके। पत्नियों की अपनी कोई इच्छा नहीं हो सकती थी। उन्हें मजबूरन कैद किया जा सकता था; अंग्रेज पत्नियों को पतियों के साथ जाने को मना करने पर जेल में रहना पड़ता था।'

शुलामिथ फायरस्टोन की पुस्तक The Dialectic of Sex : The Case For Feminist Revolution का अध्याय Dialectics In Cultural History सांस्कृति इतिहास के लिंग-भेद को उजागर करता है। फायरस्टोन का मानना है कि विविध जैविक उदाहरणों को कला और संस्कृतियों ने विभाजनपरक ढंग से प्रयोग किया है और लैंगिक असमानता की गहरी

खाई खोदी है। वे लिखती हैं, 'हम मानते हैं कि लिंग-विभाजन इस बुनियादी सांस्कृतिक विभाजन की जड़ है। पुरुषवादी तकनीकी प्रणाली और स्त्रीवादी सौंदर्यशास्त्री प्रणाली, इन दोनों की सांस्कृतिक अनुक्रियाओं के बीच की पारस्परिक क्रिया कुछ दूसरे तरह के लैंगिक द्वंद्ववाद को पुनरुत्पादित करती हैं और साथ ही साथ इसकी बहिर्संरचना, जातिगत और अर्थशास्त्रीय द्वन्द्वात्मकता को भी।'[5] फायरस्टोन का मानना है कि लिंग आधारित सांस्कृतिक ध्रुवीकरण तमाम घटनाओं की जड़ में मौजूद सबसे बड़ा कारण है। स्त्री-संघर्ष का अगला अध्याय इस ध्रुवीकरण को पहचानने और इसके विरोध में खड़ा होने से संबंधित हो सकता है।

एंड्रिया डुआर्किन की पुस्तक Woman Hating : A Radical Look at Sexuality का अध्याय Fairytales अमेरिकी परिकथाओं में मौजूद लैंगिक असमानता को सामने लाता है। विभिन्न संस्कृतियां किस प्रकार हमें लैंगिक रूप से पैदा होने और फिर उसी में जीने, सपने देखने और मरने के लिए विवश करती हैं, यह अध्याय इसी पितृसत्तावादी सांस्कृतिकता को उजागर करता है। सिंड्रेला की मां द्वारा अपनी पुत्रियों का राजकुमार से विवाह के लिए पैरों को छीलवाना, उंगली कटवाना स्त्री-सौंदर्य की पितृसत्तावादी अधिनायकवाद को सामने लाता है। डुआर्किन लिखती हैं, 'सिंड्रेला, सोती सुंदरी, स्नो-व्हाईट, रपुंजल-ये सभी जड़ता, सौंदर्य, अबोधपन और उत्पीड़न के आधार पर रूपायित चरित्र हैं। वे अच्छी औरतों के आद्यरूप हैं-अपनी मौलिकता में उत्पीड़न। वे न कभी सोचती हैं, न कुछ करती हैं, न पहल करती हैं, न सामना करती हैं, न विरोध करती हैं, न चुनौती देती हैं, न कुछ महसूस करती हैं, न परवाह करती हैं, न सवाल करती हैं। बस कभी-कभी उन्हें मजबूर करके घरेलू कामकाज में लगा दिया जाता है। उनके मार्ग का एक निश्चित परिदृश्य है। जड़ पदार्थ की तरह मां के घर से राजकुमार के घर तक। पहले वे कपट और दुर्भावना की विषयवस्तु होती हैं फिर रोमानी भक्तिभाव की।'[6] अर्थात् एक ओर जहां स्त्री सौंदर्य के संबंध में पितृसत्ता सारे निर्णय अपनी इच्छा पर केन्द्रित करती है, वहीं दूसरी ओर उसका इसके विशेष प्रयोजन से प्रताड़ना भी मिलती है। सौंदर्य-संबंधी दोगले मानदण्ड डुआर्किन की आलोचना के केन्द्र में रहे हैं।

नवल अल सादवी की पुस्तक The Hidden Face of Eve : Women in the Arab World के अध्याय Distorted Notions About Feminity Beauty and Love और Obscurantism and Contradiction अरबी समाज के सामंती संदर्भों को सामने लाते हैं। सादवी का मानना है कि अरब देशों में एक ओर जहां विज्ञापनों के रूप में स्त्री-सौंदर्यवर्धन और अर्द्धनग्न चित्रों से दिवारें भरी होती हैं, वहीं दूसरी ओर महिलाओं को बुरके में रहने के सख्त निर्देश दिए जाते हैं। सादवी अरबी समाज की महिलाओं के संबंध में लिखती हैं, 'वे अब पूरी तरह मनुष्य नहीं हैं बल्कि पूंजीवादी पुरुष-प्रभुत्वशाली समाज के क्रूर और हिंसक दबाव के तले रूपांतरित हो गई हैं-माल में, एक जोड़ी दस्ताने और जांघिये में, कंगन या स्तनों में, जांघों में, या सबसे अच्छा होगा यह कहना कि योनी में और गर्भाशय में।'[7] सादवी का मानना है कि अरबी समाजों में स्त्री पूंजीवादी पितृसत्ता के दोहरे मानकों से लगातार शोषित हुई है। एक अरबी पुरुष की शादी-संबंधी चुनाव के संबंध में लिखती हैं, 'अगर शादी को औरतों के खिलाफ शोषण और विभेद से बनी संस्था की तरह चलाये रखना है और पति तथा पत्नी के अजनबीपन को जिंदा रखना है, बढ़ाते रहना है और जारी रखना है तब एक ही उत्तर है कि भोली-भाली, अनपढ़ और जड़ औरत से शादी कर ली जाये। एक अरब पुरुष जब शादी का फैसला करता है तो लगभग समान रूप से एक ऐसी अनुभवहीन बच्चे जैसी मासूमियत से भरी, जड़, अशिक्षित और गुड़िया जैसी जवान कुंवारी लड़की को चुनता है जिसे अपने अधिकारों का आभास तक नहीं होता या फिर एक औरत के रूप में अपनी यौन इच्छाओं का या फिर इस तथ्य का कि उसके मस्तिष्क की अपनी जरूरतें, स्वप्न या आकांक्षाएं होनी चाहिए।'[8] पितृसत्ता लड़की के कौमार्य और उसके सौंदर्य को अपनी सामंती सारणी में इस प्रकार ढालती है कि उसके जीवन के वास्तविक लक्ष्य बदल जाते हैं। वह उपकरण में तब्दील होकर, विलासिता का नजराना बनकर रह जाती है। अरबी समाज में स्त्री के अस्तित्व को दर्शाती हुई सादवी लिखती हैं, 'स्त्रियां उपकरण हैं, वस्तु हैं, मात्र औजार। वे व्यावसायिक विज्ञापनों में इस्तेमाल होने वाली, बिना वेतन घर में काम करने वाली या बाहर काम करने वाली, घर के बाहर के वेतन वाले काम के जरिये अंदर के बिना पैसे वाले काम को संयोजित करने वाली या फिर समाज की प्रजनन संबंधी प्रयोजनों की पूर्ति के लिए बच्चों को जन्म देने के लिए इस्तेमाल होने वालीं या पुरुषों की इच्छा को संतुष्ट करने वाली वस्तु हैं।'[9] सादवी का मानना है कि इस प्रकार की व्यवस्था सौंदर्य, रोजगार और व्यापार का ऐसा तिलिस्म खड़ा करती है, जिसमें बच्चा लिंग की नियामक सत्ता के साथ पैदा होता है। सादवी इस व्यवस्था को बदलना चाहती हैं।

ग्लेरिया जां वॉटकिंस बेल हुक्स की पुस्तक Ain' t I a Woman? : Black

सादवी अरबी समाज की महिलाओं के संबंध में लिखती हैं, 'वे अब पूरी तरह मनुष्य नहीं हैं बल्कि पूंजीवादी पुरुष-प्रभुत्वशाली समाज के क्रूर और हिंसक दबाव के तले रूपांतरित हो गई हैं-माल में, एक जोड़ी दस्ताने और जांघिये में, कंगन या स्तनों में, जांघों में, या सबसे अच्छा होगा यह कहना कि योनी में और गर्भाशय में।' सादवी का मानना है कि अरबी समाजों में स्त्री पूँजीवादी पितृसत्ता के दोहरे मानकों से लगातार शोषित हुई है। एक अरबी पुरुष की शादी-संबंधी चुनाव के संबंध में लिखती हैं, 'अगर शादी को औरतों के खिलाफ शोषण और विभेद से बनी संस्था की तरह चलाये रखना है और पति तथा पत्नी के अजनबीपन को जिंदा रखना है, बढ़ाते रहना है और जारी रखना है तब एक ही उत्तर है कि भोली-भाली, अनपढ़ और जड़ औरत से शादी कर ली जाये। एक अरब पुरुष जब शादी का फैसला करता है तो लगभग समान रूप से एक ऐसी अनुभवहीन बच्चे जैसी मासूमियत से भरी, जड़, अशिक्षित और गुड़िया जैसी जवान कुंवारी लड़की को चुनता है जिसे अपने अधिकारों का आभास तक नहीं होता या फिर एक औरत के रूप में अपनी यौन इच्छाओं का या फिर इस तथ्य का कि उसके मस्तिष्क की अपनी जरूरतें, स्वप्न या आकांक्षाएं होनी चाहिए।'

Women and Feminism का अध्याय The Imperialism Of Patriarch[4] अमेरिकी समाज की नस्ली टकराहटों में अश्वेत महिलाओं के साथ होने वाले अत्याचारों को समझने का अवसर प्रदान करता है। एक और सम्पूर्ण समाज में दोयम दर्जे की नागरिक होने का दंश झेलती स्त्री अपने अश्वेत पति से भी प्रताड़ित होती है। बेल हुक्स मानती हैं कि अश्वेत पुरुष नस्लवाद का शिकार होने के साथ-साथ अश्वेत महिलाओं का लैंगिग स्तर पर भी उत्पीड़न करते रहे हैं। मार्टिन डिलैनी, मेरी चर्च टेरेल, सॉजोरनर ट्रुथ, हैरियट टबमन और रिचर्ड राइट जैसे अनेक लेखकों के उदाहरणों से भरा यह लेख अमेरिकी नस्लवाद में पिसतीं अश्वेत महिलाओं के दोहरे शोषण को उजागर करता है। शिया नामक महिला के निबंध का उदाहरण देकर बेल हुक्स अमेरिकी समाज में अश्वेत महिला की स्थिति दर्शाती हुई लिखती हैं, 'अमरीकी समाज में अश्वेत औरतें सबसे कम कीमत वाला स्त्री-समूह है। लिहाजा वे पुरुषों की असीमित प्रताड़ना और क्रूरता का शिकार रही हैं। चूंकि अश्वेत स्त्रियां गोरे और अश्वेत दोनों तरह के पुरुषों द्वारा परंपरागत तौर पर बुरी मानी जाती रही हैं, इसलिए वे किसी भी समूह के पुरुष के द्वारा दूसरे पुरुष से सुरक्षा प्राप्त करने के लिए सहयोग लेने में असमर्थ रही हैं। न ही किसी समुदाय ने उन्हें सुरक्षा के लायक समझा है। निम्न आयवर्ग के अश्वेत स्त्री-पुरुष संबंधों के एक समाजशास्त्रीय अध्ययन ने बताया कि बहुतेरे युवा अश्वेत पुरुष अपनी स्त्री साथियों के मूलत: शोषण लायक एक वस्तु समझते हैं। अध्ययन में ढेरों लड़कों ने अश्वेत औरतों को साली कुतिया वह छिनार कहकर संबोधित किया। अश्वेत स्त्रियों को एक तुच्छ यौन वस्तु समझने का उनका बोध, गोरे मर्दों द्वारा अश्वेत स्त्रियों को समझने के बोध के बराबर है।'[10] बेल हुक्स का मानना है कि एक अश्वेत पुरुष एक श्वेत स्त्री को पाने के लिए लालायित रहता है, क्योंकि वह उस प्रत्येक वस्तु को पाना चाहता है, जो गोरों के पास है। उसकी नज़र में अश्वेत स्त्री के लिए सम्मान का कोई स्थान नहीं है। बेल हुक्स इसका सारा दोषी पितृसत्तावादी मानसिकता को मानती हैं, जो पिताओं को दानव की तरह व्यवहार करने और पतियों को बलात्कारी होने की खुली छूट देता है।

नाओमी वुल्फ की पुस्तक The Beauty Myth का अध्याय Work हमें स्त्रियों के रोजगार संबंधी संदर्भों को समझने और उस कुचक्र की तह में पहुँचने का अवसर प्रदान करता है, जहां एक निश्चित सारणी में आबद्ध सौंदर्य रोजगार का प्रथम पैमाना बनता है। वुल्फ अपने लेख में अनेक रिपोर्टों का हवाला देते हुए बताती हैं कि यदि महिला के घरेलू कार्य का औसत निकाला जाए तो वह पुरुष के औसत कार्यों से दोगुना होता है और इस कार्य से संबंधित उसके लिए कोई पारिश्रमिक नहीं होता है। अपितु सामंती समाज इसे उनकी नैतिकता का हवाला देकर जोर से लागू करता है। एन्न ओकली नामक लेखिका का उदाहरण देती हुई वुल्फ लिखती हैं, 'घरेलू काम आधुनिक स्थितियों में कोई काम ही नहीं है। एक हालिया अध्ययन बताता है कि एक ब्याहता स्त्री के घरेलू कामकाज का वेतन अगर मिलने लगे तो परिवार की आय साठ प्रतिशत तक बढ़ जाये। घरेलू काम फ्रांस की कुल श्रमशक्ति का चालीस मिलियन घंटे है। अमेरिका में महिलाओं के ऐच्छिक कार्य, प्रतिशत अठारह बिलियन डॉलर की राशि पैदा करते हैं। औद्योगिक राष्ट्रों की अर्थव्यवस्था चरमरा जाये अगर औरतें वे काम करना बंद कर दें जो वे मुफ्त में करती हैं।'[11] बावजूद इसके औरतों को कामकाज के लिए एक विशेष सौंदर्यपरक नजरिये से भी गुजरना पड़ता है। अमेरिका के न्यायिक फैसले और कुछ अन्य कानूनों का उदाहरण देते हुए वुल्फ दर्शाती हैं कि स्त्री के वजन और सौंदर्य को एक ओर जहां उसकी रोजगार-गारंटी के रूप में पेश किया जाता है, वहीं व्यावसायिक स्थानों पर उसके साथ हुए बलात्कार जैसी घटनाएँ दूसरे ढंग से पेश की जाती हैं। इस प्रकार के उत्पीड़न-संबंधी शेपर्ड नामक लेखिका का संदर्भ देती हुई वुल्फ लिखती हैं, 'रेडबुक की खोजबीन करने पर ज्ञात हुआ कि 88 फीसदी औरतें जो उसकी प्रतिवादिनी भी थीं, नौकरी के चलते लिंग-उत्पीड़न का शिकार हुई थीं। इंग्लैंड में तो 86 फीसदी प्रबंधन करने वालीं और 66 फीसदी कर्मचारी महिलाएँ इसकी भुक्तभोगी थीं। ब्रिटिश नागरिक सेवा ने पाया था कि इसकी 70 फीसदी प्रतिवादी स्त्रियों ने यह सब झेला था। स्वीडिश महिला संगठन की 17 फीसदी महिलाएँ उत्पीड़ित की गईं। आंकड़े तो यह भी कहते हैं कि तीन लाख स्वीडिश महिलाओं का राष्ट्रीय स्तर पर उत्पीड़न हुआ है।'[12] अत: इस प्रकार वुल्फ को लगता है कि जहां रोजगार का मानदण्ड पितृसत्ता में यदि सौंदर्य को ही संदर्भित होगा और काबिलियत कहीं पीछे छूटेगी, तो वह यौनाकर्षण के नए संघर्ष पैदा करेगा और स्त्री-उत्पीड़न के आंकड़े उससे लगातार बढ़ेंगे ही।

उत्पीड़न-संबंधी शेपर्ड नामक लेखिका का संदर्भ देती हुई वुल्फ लिखती हैं, 'रेडबुक की खोजबीन करने पर ज्ञात हुआ कि 88 फीसदी औरतें जो उसकी प्रतिवादिनी भी थीं, नौकरी के चलते लिंग-उत्पीड़न का शिकार हुई थीं। इंग्लैंड में तो 86 फीसदी प्रबंधन करने वालीं और 66 फीसदी कर्मचारी महिलाएँ इसकी भुक्तभोगी थीं। ब्रिटिस नागरिक सेवा ने पाया था कि इसकी 70 फीसदी प्रतिवादी स्त्रियों ने यह सब झेला था। स्वीडिश महिला संगठन की 17 फीसदी महिलाएँ उत्पीड़ित की गईं। आंकड़े तो यह भी कहते हैं कि तीन लाख स्वीडिश महिलाओं का राष्ट्रीय स्तर पर उत्पीड़न हुआ है।'

किस्टीना हॉफ सॉमर्स की पुस्तक Who Stole Feminism & How Women Betrayed Women का अध्याय New Epistemologies हमें ऐसा ज्ञान-मीमांसा से अवगत कराता है, जहां दमन और विचार पर्याय बनकर सामने आए हैं। सॉमर्स का आलोचना के केन्द्र में यह तथ्य रहा है कि क्या दमित होना किसी को अधिक विचारवान या अनुभवी बना सकता है? इस प्रश्न को उन्होंने अनेक संदर्भों के साथ व्याख्यायित करने का प्रयास किया है। प्रोफ़ेसर हाक का उदाहरण संदर्भित करती हुई लिखती हैं, 'जिन स्त्रीवादी सिद्धांतकारों ने यह दलीलें दी हैं कि उत्पीड़न लाभ पहुँचाता है, वे स्वयं कभी उत्पीड़ित नहीं रही। वह पूछती हैं यदि उत्पीड़न और मुफलिसी इतनी ही

लाभप्रद है तो क्यों सर्वाधिक सुविधाग्रस्त, मध्यवर्गीय औरतें स्वयं को ज्ञानमीमांसीय रूप से सबसे अधिक प्रतिष्ठित और जरूरी मानती हैं।'[13] सामर्स ऐसी ज्ञान-पद्धति को आलोचित करती हैं, जो लिंग-भेद के संदर्भों से भरी हुई हो। वे भावनात्मक रूपांतरण के संदर्भों को भी अनावश्यक मानती हैं। वे लिखती हैं, 'कोई ऐसी कार्यशाला के लिए पूँजी नहीं देगा जो अपने प्रतिभागियों को यह सिखाये कि स्त्री और पुरुषों में ऐसा कोई अंतर नहीं है या कि स्त्री-केंद्रियतावाद में विश्वास रखने वाले विचारकों द्वारा पारंपरिक मापदंडों को अरूपांतरित छोड़ दिया जाये या फिर छात्र ऐसे वैश्विक पाठ्यक्रमों को सीखें जो लैंगिक विभेदी नहीं हैं।'[14]

अत: इस पुस्तक के संबंध में समग्रत: यह कहा जा सकता है कि इसमें स्त्री-संघर्ष के प्रारंभिक सोपान से लेकर 21वीं सदी के प्रारंभ तक का ऐतिहासिक दृष्टिकोण सहज ढंग से उजागर हुआ है। इसमें पितृसत्ता के तमाम प्रयोजन अनेक रिपोर्टों और अध्ययनों द्वारा खुलकर सामने आए हैं। यह पुस्तक अमेरिकी और अरबी समाज में जीवनयापन कर रही औरतों के मानसिक संघर्ष को जानने का अवसर उपलब्ध कराती हुई नई बनती पूँजीवादी सभ्यता के पितृसत्तावादी षड्यंत्र का पर्दाफाश करती है। सुबोध शुक्ल का चयन और अनुवाद एक काल को समझने और एक संघर्ष की जड़ों को समझाने में सफल माना जा सकता है।

संदर्भ-

1. शुक्ल, सुबोध, गूंगे इतिहासों की सरहदों पर, पंचकूला आधार प्रकाशन, 2016, पृष्ठ - 34
2. वही, पृष्ठ - 41
3. वही, पृष्ठ - 52
4. वही, पृष्ठ - 85
5. वही, पृष्ठ - 132
6. वही, पृष्ठ- 158
7. वही, पृष्ठ - 167
8. वही, पृष्ठ - 168-169
9. वही, पृष्ठ - 182
10. वही, पृष्ठ - 218-219
11. वही, पृष्ठ - 222-233
12. वही, पृष्ठ - 254
13. वही, पृष्ठ - 273
14. वही, पृष्ठ - 276

सम्पर्क-शोधार्थी, हिंदी-विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंढ़ीगढ़

मीडिया

न्यू मीडिया से बदलती समाचारी दुनिया

□ अनिल कुमार पाण्डेय

देश में आयी उदारीकरण की बयार ने बहुत कुछ बदला है जिससे मीडिया भी अछूता नहीं रहा। टेलीविजन चैनलों की संख्या तकरीबन एक हजार की संख्या पार कर चुकी है। वहीं पत्र-पत्रिकाओं की संख्या लाखों में पहुंच रही है। इन सबके चलते ही सामाजिक जनसंवाद का बड़ी तेजी से विस्तार हुआ है। फेसबुक, ट्विटर समूहों के आपसी प्रतिभाग के बड़े प्लेटफार्म साबित हुये हैं। एक दशक पहले दिन की पहली खबर रेडियों, टी.वी.और समाचार पत्रों से मिलती थी लेकिन अब परिस्थितियां पहले से अलग हैं। दुनिया के सभी देशों के बड़े नेता,अभिनेता सोशल मीडिया से जुड़े हैं परिणामत: वे अपनी बात संवाददाता सम्मेलन में न रखकर ट्विटर पर देते हैं।

सूचना क्रांति के इस दौर में सोशल माध्यमों का क्षितिज निरंतर विस्तारित हो रहा है। आज सोशल माध्यम मुख्यधारा के संचार माध्यमों का विकल्प मात्र न होकर इनका प्रतिस्पर्धी हो गया है। सोशल माध्यम एक ऐसा नवाचार है जिसके माध्यम से हम विश्व के किसी भी कोने में बैठे व्यक्ति से जुड़ सकते हैं। कुछ साल पहले विकीलीक्स नाम का धमाका हुआ था। विकीलीक्स ने खोजी पत्रकारिता के क्षेत्र में न्यू मीडिया का सार्थक उपयोग किया था।

सही मायने में खबरों तक सभी की पहुंच समान रूप से हो गई है। पहले जहां सरकारी खबरें सिर्फ गिने-चुने पत्रकारों को ही मिलती थी वहीं आज हम सभी की सरकारी सहित अन्य सूचनाओं पर एक समय पर, एक साथ पहुंच है। ऐसे में यहां पर एक बात उभरकर सामने आती है कि क्या मीडिया लोगों को नहीं बताएगा तो लोग नहीं जान पायेंगे? लेकिन ऐसा नहीं है। सोशल मीडिया आज सबसे तेज संचार माध्यम के रूप में उभरा है जो लाइव से भी तेज है। यहां पर यह लिखने का तात्पर्य है जनमाध्यम क्या कवर करने वाले हैं क्या लाइव होने वाला है ये सब भी इस माध्यम से पता चल जाता है।

कई ऐसी बातें है जिन्हें मीडिया सामूहिक रुप से छिपाने का कार्य करता है जैसा कि नीरा राडिया प्रकरण में हुआ था। जिसे हमारा पारंपरिक मीडिया छुपा रहा था और सोशल मीडिया उसे उघाड़ रहा था। मीडिया मिक्स के इस दौर में चली आ रही परंपरागत पत्रकारिता मुश्किल दौर में नजर आ रही है। जिस मीडिया से हम इस बात की अपेक्षा रखते हैं कि इनमें प्राप्त होने वाली खबरें सत्यापित और विश्वसनीय होगी। उसकी विश्वसनीयता अन्य माध्यमों से परखी जा सकती हैं। विभिन्न जनमाध्यमों से प्रसारित खबरों की सत्यता जांचना पहले से ही कहीं ज्यादा सरल एवम् सुलभ है। सूचना स्रोत असंख्य है जिनसे हम सूचनाएं चुन सकते हैं,अपने विचार बना सकते हैं।

संचार प्रक्रिया को पहले एकतरफा माना जाता था, जिसे बाद में संचार वैज्ञानिकों ने द्विमार्गी प्रक्रिया करार दिया, लेकिन सूचना क्रांति के चलते वर्तमान समय में सूचना का प्रवाह बहुदिशीय हो गया है। इस सूचना प्रवाह में हम हस्तक्षेप के साथ ही खबरों को अस्वीकार भी कर सकते हैं। ऐसी स्थिति में जनमाध्यमों में गलत जानकारियां देकर बच निकलना मुश्किल है। यह स्थिति तब है जब देश के एक चौथाई जनता तक ही स्मार्ट फोन पहुंचा है। कल्पना की जा सकती है कि जब सभी के पास इंटरनेट वाले फोन होगें तब मीडिया का परिदृश्य कैसा होगा? लेकिन पारंपरिक मीडिया घरानों (अखबार, पत्र-पत्रिकाओं, टीवी, रेडियो) को इससे घबराने की जरुरत नहीं है। यही वह विचार है जो सोशल मीडिया को परम्परागत मीडिया के प्रतिद्वंदी के रूप में नहीं, बल्कि परस्पर पूरक बनने के लिए आतुर कर रहा है। ऐसे समय में मीडिया का मीडिया से परिचय हो रहा है। होने दीजिए बाधक मत बनिए! क्योंकि ये होकर ही रहेगा हम सब नहीं चाहेंगे, तब भी होगा।

सम्पर्क-राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सेक्टर-1, पंचकूला में पत्रकारिता एंव जनसंचार विषय में सहायक प्राध्यापक, मो. 8319462007

अंतोन चेखव का जन्म 19 वीं शताब्दी के रूढ़िवादी रूस में हुआ था। इनकी मां के पास कहानियों का भण्डार था जिनको वो नियमित तौर पर बड़े रोचकपूर्ण तरीके से अपने बच्चों को सुनाती थी। मां द्वारा सुनाई गयी इन्हीं कहानियों से चेखव जैसे कल्पनाशील लेखक का जन्म हुआ। पेशे से डॉक्टर चेखव ने सैकड़ों कहानियाँ एवं चार नाटक लिखे जिनकी गणना विश्व की उत्कृष्ट साहित्यिक रचनाओं में होती है। चेखव मानवीय भावनाओं एवं संभावनाओं के सक्षम चित्रकार थे। अपनी कहानियों में मानव जीवन के हर रंग को उकेरा है। चेखव लघु-कथाओं को हर देश में हर आयु एवं वर्ग के लोग पढ़ते एवं सराहते हैं। मैलड़फेक्टर, द लेडी विद द डॉग, बिशप, द रनअवे, द प्रिंसेस आदि चेखव की वो कहानियां हैं जिनके प्रशंसक सिर्फ आम पाठक ही नहीं, बल्कि टॉलस्टॉय, हेमिंग्वे, नैबोकोव, जी. बी. शॉ, जेम्स जॉयस एवं वर्जीनिया वुल्फ जैसे प्रसिद्ध साहित्यकार भी रहे हैं।

चेखव की मैलड़फेक्टर का हरयाणवी अनुवाद प्रस्तुत है, जिसमें 19 वीं सदी के रूसी किसान के भोलेपन एवं उसकी दुर्दशा का वर्णन के साथ असवेंदनशील न्याय व्यवस्था के क्रियाकलापों पर करारा व्यंग्य है। - सं.

अंतोन चेखव (1860 -1904)

कसूरवार

□अंतोन चेखव अनु. राजेन्द्र सिंह

बात कचेहड़ियां की है। एक जमा मरियल देहाती, जिसके गात मैं को राम दिक्खे था, जज के स्यामी खड़्या था। उसने फट्टे का भुण्डा सा कुड़ता अर टांकियां आळा पजामा पहर राख्या था। सारे मुँह पै को चेचक के दाग थे अर डाढ़ी बी झाड़ की तरां बद्द री थी। माथै पै सैली इतनी मोटी-मोटी थी के आंख बी जमा मड़ी-मड़ी दिक्खें थी। न्यू लाग्गे था जणूं कचेहड़ी मैं डरेवा खड़्या था। सिर के बाळ बी न्यू उळझ-पुळझ थे जणूं जंगळी मकड़ी के जळेवा ऊठ रया हो। अर हां, उभाणे पैरें था।

'डेनिस ग्रिगोरियफ,' जज नै बोलणा सुरु करया, 'थोड़ा आग्गे सी हो ले अर मैं जो बी पुछूँ उसका जबाब दे। चढ़दे साम्मण की आठम नें जय्ब रेलवाई का संतरी, इवान एकिनफोफ, गश्त पै था तो उसने देख्या के तूं एक सो इकतालीस मील क खम्बे धोरै रेल की पटड़ी मैं तै ढिबरी (पेंच) खोलण लागर्या था, जो पटड़ी अर तख्तै नै जोड़्या करै। या रह्इ वा ढिबरी, जो तैरै धोरै तै बरामद होइ, जय्ब तूं मौके पै थ्याया। या बात साच्ची सै ?'

'क क ....के ?'

'मन्नै न्यू बता जो बात एकिनफोफ नै कह्ई, वा साच्ची सै ?'

'हां जी, जमा न्यू की न्यू, सोळह आने।'

'बोहत बढ़िया ! इब न्यू बता के पटड़ी पै तै ढिबरी खोलण का तेरा मकसद के था?'

'क क ....के कह्या?'

'या के के बन्द कर। अर मेरी बात ध्यान तै सुण। ढिबरी तन्ने क्यूँ खोली?'

'जै मन्ने इसकी चाहन्ना नीं होन्दी, तो मैं इसने खोल्दा ए क्यूँ,' छात कानी लखांदा होया डेनिस मैं ए मैं बरड़ाया।

' इसकी इसी के चाहन्ना पड़गी थी?'

'चाहन्ना ? हआम इस लोह की ढेभरी नै डोबणी कह्वें। अर इसने मच्छी पकड़न की डोरी पै बोझ बणाण खात्तर बांध्या करां।

''हआम तै मतलब?'

'हआम ! मतबल ... सारा ए गाम।'

'कान खोल कै मेरी बात सुण; मन्ने मूरख बणाण की कोसिस न करै। सीधे सीधे जबाब दे। या डोबणी-डाबणी की तेरी झूठ उरै नीं चालेगी।'

'मन्ने जाम के आज तक झूठ नीं बोली सै, आज बोलूंगा के...' डेनिस बड़ाया। 'लेकिन जज साब त्हाम खुद ए बताओ, डोबणी के बिना कोए मच्छी पकड़ सकै है के ? जै त्हाम कांडै मैं कोई पटबिजणा या कीड़ा टांग द्यो, बिना डोबणी ओ तळी तक जावेगा के ? ... अर न्यू कह्वे के मैं झूठ बोलूं सूं !' डेनिस बोल्या अर थोड़े से दांदरे पाड़े। 'ऐकले पटबिजणे का फैदा के, ओ तो पाणी के ऊपर ए तैरदा रवैगा ! सारी बढ़िया मच्छी तो तळी मैं रह्वें। ऊपर-ऊपर कोए समुन्दरी मच्छी तो फंस सकै, अर उसकी बी कोई तस्सली कोनी। अपणे लौवै-धोरै समुंदरी मच्छी मिलदी बी कोनी। उन्ने तो खूल पसँद होवै।'

'ये तूं समुंदरी मच्छियों की बात क्यूँ कर्र्या है ?'

'कमाल है ! त्हामनै ए पुच्छ्या था। म्हारै तो बड़े-बड़े चौधरी बी न्यू ए मच्छी पकड़ैं। छोटे तै छोटा बाळक बी डोबणी का जुगाड़ करे बिना मच्छी पकड़न कोनी जावै। हां, जै कोए निरा बोळी-बूच हो, ओ ए बिना डोबणी के जा सकै है। लेकिन मूरख तो मूरख होवै, उसका के इलाज?'

'इसका मतलब यू के तन्ने ढेभरी डोबणी बणाण खात्तर खोली?'

'और मन्ने इसकी चाहन्ना बी के थी ? कन्चे खेलण खात्तर तो खोली कोनी।'

'लेकिन डोबणी खात्तर तू सिस्सा, गोळी या फेर कील या चौभा बी ले सकै था?'

'सिस्सा पेडयां पै तो लाग्दा कोनी; ओ तो खरीदणा पड़ै। कील किसे काम की होंदी कोनी। डोबणी बणाण का जो सुआद ढेभरी मैं आवै, ओ किसे और चीज मैं सै ए कोनी। एक तो इसमें बोझ खूब होवै, अर गैल ऐं मोरा बी है।'

'देख, बोळा होण का के फंड रच रया सै ! तू तो न्यू नाटक करै जणूं कैल ए जाम्या हो, या फेर सीधा कास मैं तै पड़्या हो। गधे, तन्ने न्यू कोनी बेरा के पटड़ी पै तै ढेभरी खोलण का के नतीज्जा हो सकै है। जै संतरी नै तू नीं पकड़्या होंदा, कोए न कोए रेल पटड़ी पै तै तळै उतरदी अर घणे लोग मरदे। उन सबकी

मौत का जिम्मेदार तू होंदा।'

' सुणिये, हे लिल्ली छतरी आळे ! मैं किसे नै बी क्यूँ मारूंगा ? जज साब, ह्आम कोए जल्लाद हां के ? ऊपर आळे की दया तै आज तक कोए मारणा तो दूर इस तरां की बात सोची बी कोनी । हे दादा बड़ आळे, तेरा ए सहारा ! त्हामनै या बात सोच बी क्यूकर ली!'

डेनिस ने दांद काढ़ कै थोड़ी सी खिर-खिर करी अर फेर आधी आंख मीच कै नराजगी के लहजे मैं जज तै बोल्या- 'हूं ! कितने साल हो लिए म्हारा सारा गाम ढेभरी खोलण लागर्या, आज तक तो कोए घटना होइ नीं सै। जै मैं पटड़ी ए पाड़ लेज्यूँ, या फेर कोए पेडे का मोटा सा ढाळा लैन पै आर-पार धर दयूँ, फेर तो, हो सकै सै, रेल ढह बी पड़ै, पर न्यू कहणा के एक ढेभरी तै ... हूं!'

'तेरे एक बात समझ मैं क्यूँ नीं आंदी के पेंच अर ढेभरी पटड़ी नै तखत्यां गैल जूड़ के राखें।'

'ह्आम सब समझैं जज साब, ज्यां ए तै तो कदै बी सारी ढेभरी नीं खोल्दे। ह्आम बड़े ध्यान तै काम करैं। आधी ढेभरी बंधी-बंधाई ए छोड़ देवां। ह्आम के बोळे हां!'

डेनिस ने पूरा मुहँ पाड़ के जम्भाई ली, अर दो बार माथा चुचकार्या।

'पिछली साल ओड़ै ए लोवै-धोरै रेल पटड़ी पै तै उतर गी थी, ईब बात मेरी समझ मैं आई,' जज बोल्या।

'क क ....के कह्या?'

'मन्ने कह्या, ईब मैं समझ्या पिछले साल रेल पटड़ी तै क्यूँ उत्तरी थी।'

'हां हां जज साब, थ्हारे पढ़े-लिखे होण का यू ए फैदा सै; त्हाम तो हरेक बात समझ सको हो। बेमाता रूप अर गुण तो सोच-समझ के बांडै। लेकिन संतरी तो मोलड़ है, उसने कुछ नीं बेरा। उसने मेरा गळा पकड़ लिया अर खरड़-खरड़ खींच कै लाया। पहले आदमी बात तो समझै, फेर ए खींचैगा। लेकिन गधे नै तो बस लात ए मारणी आवै। जज साब त्हाम लिखो या बात, उसने मैरै दो घूंसे मारे - एक मुहं पै अर एक छाती पै।'

'जय्ब तेरे घर की तलासी होइ तो एक ढेभरी और मिली। वा कित तै खोल्ली, अर कद?'

'त्हारा मतबल वा ढेभरी जो लाल सन्दूक के तळै मिली थी?'

'मन्ने नीं बेरा कड़अ मिली, लेकिन मिली तेरे घर पै। वा कित तै खोल्ली थी?'

'वा मन्ने नीं खोल्ली; वा तो इगनाशका ने दी थी, जो साइमन काणै का छोरा है। मैं उस ढेभरी की बात करर्या हूं जो सन्दूक तळै मिली थी; जुणसी ढेभरी बाहर गाड्डी मैं मिली, वा मन्ने अर मितरोफैन नै मिल कै खोल्ली थी।'

'इब यु मितरोफैन कूण सै?'

'मितरोफैन पेत्रोव ... त्हाम उसने जाणदे ए कोनी ! ओ ए तो एक आदमी सै जो गाम मैं मच्छी पकड़न के जाळ बनावै अर बेच्चै। उसने तो बोह्त ढेभरियां की जरूरत पड़ै। न्यू ला ल्यो के हरेक जाळ खातर एक दरजन तो चाहियें ए चाहियें।'

'सुणो ! दण्ड संहिता की धारा 1081 न्यू कह्वै सै के जै कोई जाण-बूझ के रेल की पटड़ी का नुकस्यान करेगा, रेल अर सवारियां खात्तर खतरै के हलात पैदा करेगा - सुणर्या सै ना मेरी बात ? 'जाण-बूझ के' - उस तईं करड़ी तै करड़ी सजा दी जावैगी। अर यूं हो नीं सकदा के तन्ने बेरा ना हो के ढेभरी खोलण तै के नुकस्यान हो सकै सै। सजा है काळा पानी अर जी तोड़ मेहनत।'

'सह्ई बात सै जी, त्हारै तै फालतू किसनै बेरा ! ह्आम ठहरे अणपढ़-गवांर। ह्आमनै इन बातां का के हिसाब?'

'तन्ने एको-एक बात का बेरा है। तू झूठ बोल्लै सै अर घणा स्याणा बणै है।'

'ले बोल ! मैं झूठ क्यूँ बोलूंगा ? जै मेरी बात नीं जचदी तो गाम में किसे नै बी पूछ ल्यो। बिना ढेभरी कोए माई का लाल मच्छी पकड़ कै दिखा द्यो। इब देखो, चूरा मच्छी तै घटिया तो कोए बी मच्छी कोनी, बिना ढेभरी लाएं तो वा बी कोनी फंसदी।'

'ईब तूं समुंदरी मच्छियां की बी बात करेगा,' मुस्कान्दा होया जज बोल्या।

'देखो जी, समुंदरी मच्छी तो आपणै इलाकै मैं सैं ए कोनी ... जै आपां एक कीड़ा बान्ध कै पाणी मैं फेंकांगे, बिना डोबणी तो ओ पाणी कै ऊपर ए तरदा रवेगा; हो सकै है एक-आध झींगा मच्छी फंस बी जावै, लेकिन व बी कदे-कदे।'

'ईब थोड़ी सी हाण अपणा जुबान बंद राख।'

पूरी कचेहड़ी मैं चूं-चां-चप। भींत बोल्लै तो कोए आदमी बोल्लै। जज की मेज पै देख्दा होया डेनिस कदे एक टांग पै खड्या हो जे, कदे दूसरी पै। उसकी आंख तोळी-तोळी न्यू झपकी मारैं थी जणूं जज की मेज पै हर्या कपड़ा ना हो कै सूरज लिकड़र्या हो। जज तोळा-तोळा बेरा नी के लिखण लागर्या था।

'फेर, इब मैं जाऊं?' कई हाण चुपचाप खड्या रहें पाछै तंग हो कै डेनिस नै पूछ्या।

'ना, तेरे को गिरफ्तार कर्या जावेगा अर जेळ मैं भेज्या जावेगा।'

डेनिस की आंख एकदम झपकणी बंद हो गी। उसने अपणी मोटी-मोटी सैली ठाई अर बांगा-बांगा जज कानी देखण लाग्या।

'के मतबल ...जेळ मैं ? जज साब, मेरे धोरै इतना फ़ालतू टेम नीं सै। मन्ने मेळे मैं बी जाणा सै, ओड़ै ग्रेगरी बी आवेगा, उसपे तीन रपइये लेणे हैं। ओ घी लेग्या था म्हारे तै।'

'चुप रहो, बीच मैं ना बोल।'

'जेळ मैं! कोए कसूर हो तो मैं जेळ जाऊँ, लेकिन न्यू बिना बात क्यूं? कोए चोरी करी हो, किसे गैल जूत बजाया हो ! जै त्हारे मन मैं माळ-गुजारी बाबत कोए सक हो तो पटवारी की बात का बिस्वास ना करियो। नंबरदार तै पुच्छो मैं किसा आदमी हूं। पटवारी तो सौ चोरां का एक चोर है, जज साब!'

'चुपचाप खड्या रह।'

'मैं तो चुप ए ख्ड्या हूं', डेनिस बड़्या। 'पर मैं न्यू बता दयूं के पटवारी बेईमान सै। उसके खाते मिला कै देख ल्यो, गड़बड़ पावैगी। मैं सूं खाण नै तैयार हूं। ... ह्आम तीन भाई हां - कुजमा ग्रिगोरियफ, ग्रेगरी ग्रिगोरियफ अर में डेनिस ... '

'तू मेरे को काम नीं करणे देगा ? साइमन !' जज चीख्या। 'ले जाओ इसनै पकड़ कै।'

'परिवार मैं ह्आम तीन भाई हां,' दो लाम्बे-तगड़े सिपाही डेनिस नै बाहर खींचण लाग गे, पर डेनिस बरडांदा ए रह्या। 'नानी खसम करै, अर द्योता डंड भरै। एक भाई कसूर करै, तो दूसरै की के जिम्मेदारी ! कुजमा नै तो कर्जा ले कै नीं भर्या, रगड़ द्यो इब डेनिस नै। अर इन्नें लोग जज कह्वें सैं ! उप्पर आळा बी कड़अ मरग्या जै इन्नें थोड़ी-बोह्त बुद्धि दे देंदा तो! इब न्या तो आदमी ढंग तै करै। न्यू थोड़ा ए के कुछ बी ... सजा तो दे द्यो, पर कोए खोट बी तो होणा चाहिए ..'

अनुवादक-राजेन्द्र सिंह, जीन्द
मो. 9729751250

मंगतराम शास्त्री की रागनियां

बाबत हरियाणा

देशां में सुण्या देश अनोखा वीर देश हरियाणा है।
मैं टोहूं वो हरियाणा जित दूध-दही का खाणा है।।
था हरियाणा हिन्दू-मुस्लिम मेलजोल की कहाणी का
पीर-फकीरों संतों की गूंजी यहां निर्मलवाणी का
उर्दू-पुरबी-पंजाबी-बृज-बागड़ी-बांगरू बाणी का
जमना घाघर बीच ठेठ तहजीब की फिजा पुराणी का
आज दंगे हों जात-धर्म पै नफरत का ताणा-बाणा है।
पहलम दूध बिना पैसे भी आपस में थ्याज्या करता
गऊ-भैंस-बकरी-भेड़ों का रेवड़ चर आज्या करता
सस्ते में होज्या था गुजारा हिल्ला भी पाज्या करता
गरीब आदमी भी डंगवाराकर काम चलाज्या करता
आज डंगर की कीमत बढ़ग्यी सस्ता मनुष निमाणा है।
पहलम तै ज्यादा उत्पादन बढ़्या देश में आज दिखे
अन्न धन के भण्डार भरे होया आत्मनिर्भर राज दिखे
बेशक होया विकास मगर रूजगारहीन बेलिहाज दिखे
क्यों के सबके हिस्से में नहीं आता दूध-अनाज दिखे
आम आदमी नै तो मुश्किल होर्‌या काम चलाणा है।
फौज बहादुरी के किस्से भी खूब सुणे हरियाणे के
जय जवान और जय किसान के नारे जोश जगाणे के
मरदां के संग महिलाओं के जुट कै खेत कमाण के
लेकिन आज सुणो किस्से सरेआम कत्ल करवाणे के
बेट्‌टी घटैं रोज मात का गर्भ बण्या शमशाणा है।
कुछ गाम्मां में भी शहरों जैसी चकाचौंध तो फैली है
एक हिस्सा तो गाम्मां का भी होया धनी और बैल्ली है।
पर मजदूर किसानों को तो होवै बहोत सी कैली है
आड़ै औरत और दलित विरोधी बहती हवा विषैली है
कहै मंगतराम कर्ज में डूब्या ज्यादातर किरसाणा है।

इब सुणले मेरी बात

बहोत घणे दिन भरमाई तेरे झुट्‌ठे लप्पे लार्‌यां नै।
कह्‌या करै था ल्यादूंगा तेरी खात्तर चांद अर तार्‌यां नै।।
इब सुणले मेरी बात में आप्पै ए, आसमान पै जाऊंगी
अपणे हिस्से का चंद्रमा, आप जमीं पै ल्याऊंगी
ना देक्खूं मैं बाट तेरी, ना तेरी ओड़ लखाऊंगी
ना चंदा की ड्योढ़ी पै मैं खुद झंडा फहराऊंगी
बहोत नचाली ईब तै आग्गै पलटूं तेरे इशार्‌यां नै।
ढके ढकाए ढोल उघाडूं खोलूं तेरे पिटार्‌यां नै।।
पढ़ लिखूं और आग्गै बढ़कै आपणा काम संभाळूंगी
अपणी किस्मत की खेत्ती मैं आप कमा कै हाळूंगी
कुंदन होण तईं तपकै मैं सोरण-काया गाळूंगी
खुद पै करूं यकीन मैं झूठा बहम कति न पाळूंगी
ज्ञान की डोरी पकड़ लेई अब तजकै चुल्हे हार्‌यां नै।
ईब तै आग्गै तरसैगा मेरे घूंघट के फटकारयां नै।।
मैं तेरे तै घाट नहीं तेरी जड़ म्हैं पीढ़ा ढाऊंगी
तेरे फैले फतव्यां में मैं आपणा दखल बढ़ाऊंगी
के सोच्चै सै सदा-सदी तेरी दासी बण रह ज्याऊंगी
तेरी भव्या में दही भळाखै ईबना रूई खाऊंगी
एक-एक करकै परखूंगी तेरे लुभाणे नार्‌यां नै।
कितने ए ऊंचे महल चिणाले ढाऊं महल चोबार्‌यां नै।।
मैं भी सूं इन्सान तेरे ज्यूं मैं भी जीणा चाहूंगी
अपणे पैरां चाल कै आपणी खुद मंजिल पै जाऊंगी
जो तूं चाह्‌वै आग्गै बढ़णा सुणले तनै सुणाऊंगी
मनै बराबर समझेगा तो साथ खड़ी मैं पाऊंगी
नहीं तो बांधी नहीं बंधूंगी तोडूंगी काण्ठार्‌यां नै।
मंगतराम तेरे बणवाए फोडूं रूढ़ खटार्‌या नै।।

सम्पर्क-94165-13872

एक बै एक आदमी ने बस खरीद ली अर चलाण खात्तिर एक ड्राईवर राख लिया। ओ मालिक था घणाए बेईमान, सारी हाठा न्यूं सोचदा अक् कड़े यू ड्राईवर किमे न किमे राछ ना बदल ले। ड्राईवर ने बस चलाण तांही गेर लाया तो ओ पास में एक खड़या था-न्यूं बोल्या-के करै सै? ड्राईवर बोल्या-गेर बदलूं सूं। मालिक फट बोल्या-देख्या, मैं पहल्यां ए सोच्चूं था तूं किमे न किमे जरूर बदलेगा।

एक बै एक गादड़ अर एक गादड़ी रैहट पै पाणी पीण चले गए जब गादड़ी पाणी पीण लागदी तो रैहट की कटा-कट की आवाज तै पाणी पीणा छोड़ देंदी। गादड़ बोल्या-के बात सै? गादड़ी बोली अक् जब मैं पाणी पीण लागूं सूं या कटा-कट होण लागज्या सै। गादड़ नै समझाया अक् बावली इस कटा-कट म्हैं ए पी गी तो पी गी ना तो तिसाइये रह ज्यागी।

खान मनजीत भावड़िया की रागनी

हमेशा चिंता में गात रहा न्यूए दसौटा काट्या,
कद आया बचपन कद आई जवानी कोन्या बेरा पाट्या (टेक)

घास ल्याणा सान्नी-सपान्नी सदा काम में हाथ बटाणा,
गधे चराके, घोड़ी चराके, फेर खेलन न जाणा,
बैठ खाट पै दादा गेल्या, अपणा फर्ज पुगाणा,
रोटी का ब्यौंत करण नै, पड़ग्या सै मुसळ रोज बजाणा,
होक्का भर ल्याणा घेर बेठ्या न्यू बैठ्या दादा कहानी सुनाणा,
जै मिलज्या टेम शाम-सवेरे, फेर स्कूल काम का निपटाणा,
मैं आपणा फर्ज निभाऊं सू, नहीं ठीक सै सिर पै उल्हाणा,
जो मिलज्या ओढ़-पहर लिया ना कदें, आछा भूण्डा छांट्या,
कद आया बचपन कद आई जवानी कोन्या बेरा पाट्या।

पढ़कै आया बस्ता फैंका आकै रूखी सुखी खा ली,
बस्ते मैं तैं काढ़ तख्ती मन्नै चाक्की धौरे ला ली,
आरने चुग के ल्याऊं खेत तै हाथ में बोरी ठा ली,
बिटोड़ा धरवाऊं अर गोस्से बणवाऊ फेर मगरी ऊपर ठा ली,
घणी करड़ी तिस लागरी जिब जान मरण मैं आ ली,
लामणी, करां खेत ज्याकै, मां ज्वारा सिर तै ठा ली,
छाले पड़गे फेर फुटगे, पाया के न्यूए जवानी जा ली
मेरे हाण के खूब खेल्या करते, मेरा काम नै काळजा काट्या,
कद आया बचपन कद आई जवानी कोन्या बेरा पाट्या।

इब तक मैं पैर तुड़ाऊ दखे ना नौकरी ठ्यायी,
ना चाचा, ना ताऊ, ना रिश्तेदारी न राह दिखायी,
कर्जा क्यूकर लेऊं घणा, इसने तारण मैं सामत आयी,
ब्याह होग्या फंसी गृहस्थी, सिर पै आण चढ़ी करड़ायी,
कदे ब्याह म्हं, कदे मुकाण म्हं सदा जाणा पड़े सै भाई,
घरां कोन्या पिस्सा धेल्ला, ना बेबे तीळ कदे समायी,
नूण तेल ने घेर लिया मैं, मन्नै कोन्यी राहत पाई,
सारा ओट्या बोझ खुद, ना कदे मन्नै बांट्या,
कद आया बचपन, कद आई जवानी कोन्या बेरा पाट्या।

जितणी गरीबी उतणा रोणा, इसतै न्यारी बात नहीं,
कमा कै हाड़ तुड़ा लिये भाई ना बणी कोए बात सही,
ना रोटी, ना कपड़े, सिर कै ऊपर तक छात नहीं,
ये लकीरें हाथ की भाई, आज ये तेरे काम नहीं,
तेरा सारा कुछ ठीक ना, तेरे ऊपर छान नहीं,
टपज्या तेरी जवानी बाई-पास माणस या तेरे हाथ नहीं,
खान मनजीत तू हिम्मत राखै, कदे पावै ना मात नहीं,
चलता रहा सदा मन्नै ना हार मानी, ना काम तै कदे नाट्या,
कद आई जवानी कद आया बचपन कोन्या बेरा पाट्या।

सम्पर्क-9671504409

लोक कथा

गादड़ का चौंतरा

एक गादड़ था, वो अपणा चौंतरा बणा कै, लीप-पोत कै, साफ-सुथरा राख्या करता। वो अपणा रोब भोत राख्या करता। वो न्यू जाणता के सारा जंगल तेरा कह्या मानै। एक दिन वो खूब सज-धज कै अपणे चौंतरे पै जा बैठा। जो कोये आवे उसे त बूझे मैं किसा लागू सूं? सब न सराह दिया। बस फेर के था भाई के पांह धरती प न पड़ैं। उसके चौंतरे तले एक बडबेरी थी, जिसके बेर बड़े मीठे थे। जंगल के बाकी जन्तु बेर खाण की मारी उसकी खूब झूठी-झूठी बड़ाई कर दिया करते। जिस त उसका दीमाग सातमें आसमान में चढ़या रहता था। एक खरगोश था जो उसकी नहीं मानता था अर ना वो उसकी चापलूसी करता था। पर वो भी पक्का चार सौ बीस। जब उस न बेर खाणे होते त मीठा-मीठा बोलता ना त उल्टा-सीधा बोल क भाज जाता। एक दिन गीदड़ सज-धज अपणे चबूतरे पै बैठा था। सब त बतावण लाघ रहया था के देखो मैं कितना सुथरा लागुं सूं-बोल्या-चांदी का मेरा चौंतरा, सूने त लीपा स। कानाां में मेरे हीरे। जण राजा बैठा सै।

सब न हां में हां मिलाई अर बेर खाण लागगे। सोच्या म्हारा के जा सै। आच्छा से इसकी झूठी-साची कर कै मीठे-मीठे फल खाण न मिल जां सै। जब तक तै बेर खाणे थे, खूब बड़ाई करी। पर बेर खाये पाछे लागा चिड़ावण। माटी का तेरा चोंतरा गोबर त लीपा सै, काना मैं तेरे लीतरे जणूं चु.. बैठा सै। गादड़ भाज्या सब के पाछे। आगे-आगे खरगोश अर साथी अर पाछे गादड़। एक जंघा खड्डा था। गादड़ धम देसी उसमें जा पड़या। वो उड़ै पड़या-पड़या चिल्लाता रह्या अर सब उसके बेर तोड़-तोड़ कै खागे। किसे तरिया उस उस खड्डे में त लिकड़ा। सहज-सहज अपने घर कैन्हा चाल्या और उसकी हालत खसता हो रही थी। घरां देखा बड़बेरी के सब बेर खत्म। इब मुफ्त मैं क्यू सब खड़े रहते। सब अपणे-अपणे घरा चले गये। गादड़ के बो अकल आगी। आगे त किसे ना गलत कहतां अर ना गलत चालता।

आवाज़ें और चुप्पी

□ मानव प्रदीप वशिष्ठ

27 नवम्बर, 2018 को कुरुक्षेत्र के सावित्री बाई-जोतिबा फुले पुस्तकालय तथा शोध संस्थान में इंडियन फाउन्डेशन फॉर आर्ट तथा देस हरियाणा ने एक संयुक्त संगोष्ठी का आयोजन किया। भगवती प्रसाद ने अपनी चित्रकला से एक विशेष शैली में शहर के निर्माण में लगे विभिन्न कारीगरों के औजारों के माध्यम से शहर प्रदर्शित किया तथा अनुराधा ने हरियाणवी रागनी में दलितों तथा महिलाओं की उपस्थिति बारे अपना शोधकार्य प्रस्तुत किया। इस संगोष्ठी की अध्यक्षता प्रो.टी.आर. कुंडू तथा डा.ओमप्रकाश करुणेश ने की। कार्यक्रम का संचालन देस हरियाणा के सम्पादक डॉ. सुभाष चंद्र ने किया।

इंडियन फाउन्डेशन फॉर आर्ट के प्रतिनिधि तनवीर अजशी ने अपने संगठन के बारे में बताया कि इंडियन फाउन्डेशन फॉर आर्ट एक गैर सरकारी संगठन है जो समाज में मौजूद विभिन्न आवाजें जिन्हें दबा दिया गया है उनके उभारने के लिए काम कर रहा है। बिना किसी भाषाई बाध्यता के देश भर में लोक कला, संस्कृति तथा साहित्य के क्षेत्र में शोध करने के लिए आर्थिक तथा बौद्धिक सहयोग प्रदान करता है।

संगोष्ठी में भगवती प्रसाद ने अपने शोधकार्य की प्रस्तुति चित्रकला के माध्यम से प्रस्तुत की। उन्होंने शहर को निर्माण में लगे विभिन्न कारीगरों के औजारों के माध्यम से दर्शाया। उन्होंने निर्माण कार्य में लगे एक मजदूर के तसले के माध्यम से शहर को दर्शाया यह चित्रकारी उस मजदूर द्वारा उस शहर को देखने का नजरिया थी कि किस तरह हर इमारत की तरफ देखते हुए वह तसलों की गिनती के हिसाब से इमारत की भव्यता को आंकता है।

शहर के बीच में बैठे मोची के औजारों के माध्यम से शहर में मोची की भागीदारी और उपस्थिति और बिजली के काम में लगे कारीगर की नजर में शहर तारों, बल्बों के एक जाल के रूप में दर्शाने वाली चित्रकारियां दिखाई। अपने काम के बारे में बात करते हुए भगवती ने कारीगर तथा उसके औजारों के बीच के जीवंत सम्बन्ध के बारे में चर्चा की।

अनुराधा ने अपने शोध के बारे में बातचीत परम्परागत रागनी में महिलाओं तथा दलितों की उपस्थिति से शुरू की । अनुराधा ने कहा कि परम्परागत रागनी तथा सांगों में ये दोनों ही वर्ग एक किरदार के तौर पर तो उपस्थित नजर आते हैं लेकिन यह कहीं भी मुख्य नायक या नेतृत्वकारी भूमिका में नजर नहीं आते। महिलाओं के सौन्दर्य के बारे तो बहुत सी रचनाएं मिल जाती हैं लेकिन महिला की हालात को सम्बोधित करती हुई रागनियाँ कम हैं। महिला किरदारों को अक्सर या तो नकारात्मक त्रिया चरित्र की भूमिका में दिखाया जाता है या फिर अति आदर्शवादी पतिव्रता के रूप में स्थापित करने वाला।

दलित किरदार हमेशा सहायक, नौकर के रूप में दिखाया गया है या फिर ओच्छे चरित्र के साथ दिखाया गया है। दलितों की पैरवी करने वाली रचनाएं कम नजर आती हैं। अनुराधा ने कहा कि गायन की कला को विकसित करने में दलितों और महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही है लेकिन एक वक्त के बाद गायन में सवर्ण जातियों के पुरुषों का आधिपत्य हो गया। दलित जहां वादन तथा सहायक की भूमिका की तरफ धकेल दिए गये और महिलाएं दर्शकदीर्घा से भी गायब।

अनुराधा ने महिलाओं और दलितों की रागनियों में भागीदारी के क्रांतिकारी बदलाव को जनवादी आन्दोलन की बदौलत बताया। लैंगिक भेदभाव तथा जातीय उत्पीडन को अभिव्यक्त करने वाली प्रतिरोध की रागनियों ने जगह बनाई। महिला और दलित लेखकों ने अपनी जोरदार उपस्थिति दर्ज करवाई ।

संगोष्ठी में मौजूद विभिन्न बुद्धिजीवी, युवा, साहित्यकारों ने अपने सवालों और सुझावों के साथ चर्चा को नई दिशा देते हुए विभिन्न आयाम खोले। कायक्रम अध्यक्ष प्रोफेसर टी. आर. कुंडू ने अध्यक्षीय टिप्पणी करते हुए कहा कि बेतरतीब ढंग से हो रहे विकास ने इन मेहनतकश आवाजों को अभिव्यक्ति देने का काम किया है। उनकी शैली गजब है और ये एक नया नजरिया पेश कर रहे हैं जो काबिलेगौर है। अनुराधा ने हरियाणवी रागनी के क्षेत्र में उपेक्षित आवाजों को उभारने का काम किया है। आज के कथित सांस्कृतिक उत्सव के दौर में सृजन करने वाले इन तबकों को नजरअंदाज किया जा रहा है । यह शोध इन दबी हुई आवाजों को उभारने की दिशा दिखाने का काम करेगा। डॉ.ओमप्रकाश करुणेश, हरपाल शर्मा, महावीर दहिया, विपुला, अश्वनी, प्रवीन, राजेश, विकास, सुनील आदि इस संगोष्ठी में शामिल रहे ।

सम्पर्क : 98123-43319

देस हरियाणा सृजनशाला

गुरू रविदास की महानता चमत्कारों में नहीं विचारों में है : डा. सुभाष चंद्र

□ अरुण कैहरबा

गांव नन्हेड़ा स्थित राजकीय प्राथमिक पाठशाला के सुंदर प्रांगण में 31जनवरी को गुरू रविदास जयंती के उपलक्ष्य में देस हरियाणा सृजनशाला में 'गुरू रविदास के सपनों का समाज' विषय पर सेमिनार हुआ।

सेमिनार में मुख्य अतिथि के रूप में सेवानिवृत्त आईएएस अधिकारी आर.आर. फुलिया ने शिरकत की और मुख्य वक्ता के तौर पर कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के प्रोफेसर एवं देस हरियाणा के सम्पादक डा. सुभाष चन्द्र तथा वरिष्ठ सृजनकर्मी डा. ओम प्रकाश करुणेश ने अपने विचार व्यक्त किए। मंच संचालन पाठशाला प्रभारी महिन्द्र खेड़ा व देस हरियाणा से जुड़े अरुण कुमार कैहरबा ने किया।

कार्यक्रम का संयोजन अध्यापक उधम सिंह, दयाल चंद, नरेश मीत, मान सिंह व नरेश सैनी ने किया। कार्यक्रम की शुरूआत राजकीय कन्या वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय इन्द्री की छात्राओं शीला, प्रीत कौर, प्रीति के बाबा साहब भीम राव अंबेडकर के गीत के साथ हुई। हिन्दी प्राध्यापक दयाल चंद जास्ट ने गुरू रविदास की रचना – 'बेगमपुरा शहर को नाउं' को सुरीले अंदाज में गाकर सुनाया।

आर.आर. फुलिया ने कहा कि गुरू रविदास के विचारों को समझना सबसे महत्वपूर्ण है। वंचित समुदायों के आगे बढ़ने में शिक्षा क्रांतिकारी औजार है। गुरू रविदास जी ने समाज के वंचित समुदायों को स्वाभिमान बख्शा है। उनकी रचनाओं को गुरू ग्रंथ साहिब में स्थान मिला है, जोकि उनकी प्रतिभा का प्रमाण है। उन्होंने कहा कि गुरू रविदास और डा. भीम राव आंबेडकर के विचारों को जन-जन तक पहुंचाना भी हमारा कर्त्तव्य है। अपने जीवन संघर्षों और प्रशासनिक अनुभवों के माध्यम से वंचित समाज के लोगों को अपने बच्चों को पढ़ाने का आह्वान किया।

डा. सुभाष चन्द्र ने कहा कि महान समाज सुधारकों के साथ अनेक प्रकार की किवदंतियां और चमत्कार जुड़ जाते हैं। जिन पाखंडों व बुराईयों का उन महापुरूषों ने विरोध किया था, उन्हीं पाखंडों से उनका संबंध जोड़ दिया जाता है। रविदास जी के चित्रों में भी उन्हीं के हाथ में माला पकड़ा दी गई है, उनके माथे पर तिलक भी लगा दिया। वे बनारस में पैदा हुए। कबीर और रविदास का एक ही समय है। वे हाथ से काम करते थे और बिना किए खाने वाले मुफ्तखोर लोगों द्वारा फैलाई जा रही बुराईयों का विरोध करते थे। उन्होंने पूर्व जन्म, पुनर्जन्म और आने वाले जन्म की दकियानूसी सोच और कुतर्कों का खंडन किया। उन्होंने जातपात, ऊंच-नीच और सामाजिक भेदभाव को समाप्त करके समानता, न्याय और आजादी के मूल्यों पर आधारित बेगमपुर का सपना देखा था। लेकिन आज उनको मानने वाले लोग उनके मंदिर बनाने और मूर्तियां स्थापित करने के काम में लगे हैं। जिस विचारधारा का रविदास जी ने आजीवन विरोध किया, आज उसी को पोषित किया जा रहा है। उन्होंने कहा कि गुरू रविदास की महानता उनके चमत्कारों में नहीं है, उनके विचारों में है। रविदास जी की रचनाओं में सच्चाई प्राप्त करने और न्याय स्थापित करने का संघर्ष है।

सेवानिवृत्त कॉलेज प्रिंसिपल डॉ. ओमप्रकाश करुणेश ने गुरू रविदास के सपनों पर आधारित जातिमुक्त समाज बनाने के लिए लोगों से एकजुट होने का आह्वान किया। उन्होंने कहा कि आज कर्मकांडों की बजाय हमारे समाज को सृजनशालाओं व अच्छी किताबों की जरूरत है। इस मौके पर सामाजिक कार्यकर्ता बलिन्द्र कांबोज, अध्यापक जसविन्द्र पटहेड़ा, करनाल कोर्ट में लिपिक बंसी लाल, सामाजिक कार्यकर्ता सुभाष पिंगली, अध्यापक सुनील अलाहर, बाबू राम, देवीशरण, देव कश्यप, समय सिंह जैनपुर, अशोक रंगा, राजेश रंगा, अर्जुन खुखनी, हरियाली युवा संगठन के प्रदेशाध्यक्ष सूरजभान, रवि समौरा, दीपमाला, रजनी राजेपुर, नेहा, नीरू, कमलेश, विनोद कांबोज, सरजू, जगदीश, नंबरदार रोशनदीन, रज़ा अब्बास, शंटी, नरेन्द्र बंटी, कैलाश, अभिषेक व सुरेन्द्र उपस्थित रहे।

सम्पर्क-94662-20145

सिरसा में शहीद पत्रकार रामचन्द्र छत्रपति की स्मृति में 'छत्रपति सम्मान समारोह'

□ विरेन्द्र भाटिया

19 नवंबर 2017 को सिरसा के पंचायत भवन में साहित्यिक सामाजिक सरोकारों को समर्पित संस्था संवाद, सिरसा द्वारा शहीद पत्रकार रामचन्द्र छत्रपति की स्मृति में 'छत्रपति सम्मान समारोह' का आयोजन किया गया। राज्यसभा टीवी के पूर्व संपादक, द वायर के 'मीडिया बोल' कार्यक्रम के चर्चित और प्रतिबद्ध पत्रकार और लेखक उर्मिलेश ने 'छत्रपति सम्मान 2017' से सम्मानित होते हुए स्थानीय पंचायत भवन में भावुक होते हुए कहा कि सम्मानों की भीड़ से मैं अक्सर बचता हूँ लेकिन छत्रपति सम्मान के लिये जब मुझे फोन आया तो मैंने खुद को सम्मानित महसूस किया और पाया कि सिरसा बेशक छोटा शहर है लेकिन रामचन्द्र छत्रपति की शहादत से पत्रकारिता का बड़ा तीर्थ स्थल हो गया है। मैं यहां आकर अभिभूत हूँ। उनके वक्तव्य का संपादित अंश अगले पन्नों पर प्रकाशित है

कार्यक्रम में पूर्व महाधिवक्ता पंजाब एवं सर्वोच्च न्यायालय के अधिवक्ता आर एस चीमा जिन्होंने रामचंद्र छत्रपति के केस की उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय में पैरवी की, 'आम आदमी और न्याय' विषय पर बोलते हुए कहा कि न्याय और संवेदना एक दूसरे के पूरक होने चाहिए। बेशक न्याय लोकतंत्र का महत्वपूर्ण भाग है लेकिन जितनी समानता संविधान में है उसे लागू करने वाले उतने समानता पसंद नहीं थे ठीक यही स्थिति न्याय को लागू करने वालों की है। न्याय संविधान और व्यवस्था तब तक बेहतर रूप में लागू नहीं होगी जब तक जन संवेदनशील नहीं होगा। आर एस चीमा ने छत्रपति केस में जुड़े रहने का श्रेय इसी संवेदना को दिया।

पंजाब दंगे के अनुभव सांझा करते हुए बताया कि एक गवाह को हमने अदालत में बुलाना था। उस गवाह के आने से पहले केस लगभग नीरस था और जज अपना मन बना चुके थे। महिला दंगों के बहुत बरसों बाद गवाही देने अदालत में हाजिर थी। उसने अपनी संक्षिप्त गवाही में बरसों पुराना वाक्या जैसा हुआ था वैसा दोहरा दिया। सच वह होता है कि कोई अंश आपके भीतर हमेशा जगता है जो किसी बाहरी जोड़ तोड़ की परवाह नहीं करता। इस गवाही ने केस की पूरी दिशा व दशा बदली। यही सच छत्रपति केस और साध्वी केस में जगता रहा कि वहां कोई कृत्रिमता नही है, संवेदना है। सच्चाई है। आप ने देखा कि कृत्रिमता हारी, नकली संवेदना हारी।

कार्यक्रम में उपस्थित मेहमानों और श्रोताओं का स्वागत संस्था के उपाध्यक्ष गुरबख्श मोंगा ने किया। विख्यात साहित्यकार हरभगवान चावला के चौथे काव्य संग्रह 'जहां कोई सरहद ना हो' का विमोचन उर्मिलेश और आर एस चीमा के हाथों से हुआ। हरभगवान चावला ने कविताओं का पाठ किया। यह पुस्तक उनके मित्र और पूरे देश के लिए राह दिखाने वाले शहीद पत्रकार रामचन्द्र छत्रपति को ही समर्पित है।

सिरसा के जागरूक नागरिक

किसान और प्रतिबद्ध पत्रकार गुरजीत सिंह मान को इस कार्यक्रम में 'विशिष्ट सम्मान' सम्मान से अलंकृत किया गया। गुरजीत मान ने मूल्यों संवेदना और पत्रकारिता के बीच जो संतुलित रिश्ता कायम किया है वह अनुकरणीय है, अनूठा है।

लेखराज ढोट ने छत्रपति और केस के बारे में बोलते हुए भावुक संबोधन में बताया कि किस प्रकार 15 साल तक सभी लोग अदालत के भीतर और बाहर लड़ते रहे। किस प्रकार तमाम लोग छत्रपति की बहादुरी के प्रति नतमस्तक होते हुए सहायता के लिए आगे रहे। समाज को बुरा अनपढ़ जाहिल कहते रहिये बेशक लेकिन समाज मे कमाल के सजग और सहयोग करने वाले लोग भरे पड़े हैं। आर एस चीमा जी को देख लो, अश्वनी बक्शी को देख लो, राजिंदर सच्चर जी को देख लो जिन्होंने छत्रपति के केस के लिए एक पैसा भी नहीं लिया बल्कि आर एस चीमा साहब ने तो प्रतिद्वंदी पार्टी का बड़ा प्रलोभन सरेआम ठुकराया।

अंशुल छत्रपति ने अपने सारगर्भित संबोधन में कहा कि 15 बरस की लड़ाई जब वह खुद मात्र 20 बरस का था और उसका छोटा भाई जिसके खेलने खाने की उम्र थी और परिवार ने इस लड़ाई को शिद्दत से लड़ा और सभी लोगो ने बेहतर सहयोग दिया। अंशुल ने बताया कि उन पर केस, घर और अखबार की तिहरी जिम्मेदारी थी। पूरे परिवार ने आगे बढ़कर हौंसला दिया। माँ जो अपने पति को खो चुकी थी उनके भीतर यकीनन ये डर तो रहा होगा कि इतने बड़े दुश्मन से लड़ने में कोई और नुक्सान न हो जाये लेकिन जब भी मैं केस की बाबत घर से निकलता तो माँ हौसले से मुझे विदा करती रही। पत्नी, बहन भाई के साथ-साथ तमाम अजीज मित्रों और समाज ने बेहतर सहयोग और हौंसला दिया।

उच्च न्यायालय के अधिवक्ता अश्वनी बक्शी ने आर एस चीमा और उर्मिलेश के बारे में विस्तार से परिचित करवाते हुए समाज मे दिए गए इनके योगदान पर प्रकाश डाला और केस के तथ्यों पर प्रकाश डालते हुए न्यायिक प्रक्रिया पर संतोष जताया और कहा कि इस पूरे समय मे प्रत्येक राजनीतिक दल ने निराश किया। उन्होंने अंशुल की बात को आगे बढ़ाते हुए कहा कि कभी हम भगत सिंह की माँ की बात करते थे जो जेल में उनसे मिलने गयी और रोई नहीं बल्कि बेटे की कुर्बानी पर फ़ख्र करके हौसला दे कर आई। आज छत्रपति जी की पत्नी को देख लीजिए। जिनके चेहरे पर डर नही है। फ़ख्र है, संतोष है, निडरता है।

कार्यक्रम में आए अतिथियों का धन्यवाद करते हुए संस्था के प्रधान परमानंद शास्त्री ने संस्था के अब तक के सफर पर संतोष जताते हुए बताया कि जब छत्रपति से जुड़े मामले पर चहुँओर अंधकार-सा दिखने लगा तो उस दौर में छत्रपति के विचार को जिंदा रखने के लिए 2010 से इस संस्था ने बीड़ा उठाया कि हम हर साल छत्रपति की शहादत के दिन उनकी स्मृति को ताज़ा करने के लिए 'छत्रपति स्मृति समारोह' का आयोजन करेंगे। देश में जो लोग अभिव्यक्ति की आज़ादी के लिए लड़ रहे है उन्हें 'छत्रपति सम्मान' प्रदान किया जाएगा। छत्रपति की आवाज को ज़िंदा रखने और जन-जन तक पहुंचाने की अपनी ज़िम्मेदारी का निर्वहन करेंगे। हमें खुशी है कि आज 'छत्रपति सम्मान' प्रतिष्ठित सम्मान के रूप में स्थापित हो चुका है। हर साल छत्रपति की शहादत को नमन करते हुए एक सार्थक विमर्श खड़ा करने का प्रयास किया जाता है।

इससे पूर्व सर्वश्री पदमश्री गुरदयाल सिंह उपन्यासकार, अजमेर सिंह औलख प्रसिद्ध नाटककार , कुलदीप नैयर विख्यात पत्रकार, प्रो जगमोहन सिंह समाज चिंतक, रवीश कुमार पत्रकार, अभय कुमार दूबे, प्रसिद्ध विचारक एवं प्रभारी सी एस डी एस, ओम थानवी ,पूर्व सम्पादक जनसत्ता को 'छत्रपति सम्मान' प्रदान किया गया है। मेधा पाटेकर, विष्णु नागर, सही राम, योगेंद्र यादव , प्रो चमन लाल आदि विद्वानों ने भी समय-समय पर संवाद संस्था द्वारा आयोजित 'छत्रपति स्मृति समारोह' में अपनी सक्रिय उपस्थिति दर्ज करवाई ।

छत्रपति सम्मान के अंतर्गत उर्मिलेश को दिए जाने वाले प्रशस्तिपत्र का वाचन वीरेंदर भाटिया ने किया। विशेष सम्मान के तहत श्री गुरजीत मान को दिया जाने वाले प्रशस्तिपत्र का वाचन राजेश कासनिया ने किया ।

मंच संचालन संस्था के सचिव प्रो हरविन्दर सिंह ने किया। कार्यक्रम में स्थानीय तथा दूर दराज शहरों के अनेक गणमान्य लेखकों, पत्रकारों ,वकीलों एवं युवाओं ने शिरकत की।

सम्पर्क-93155-23344

देस हरियाणा सृजनशाला काव्य-गोष्ठी

सावित्रीबाई फुले जयंती पर

कुरुक्षेत्र स्थित महात्मा ज्योतिबा फुले सावित्री बाई फुले पुस्तकालय एवं शोधकेन्द्र में 3 जनवरी को देस हरियाणा द्वारा भारत की पहली शिक्षिका एवं समाज सुधारक सावित्रीबाई फुले जयंती की जयंती मनाई गई। सृजनकर्मियों ने सावित्री फुले की रचनाओं का पाठ करके व उन चर्चा करके उन्हें श्रद्धांजलि दी। बैठक की अध्यक्षता वरिष्ठ साहित्यकार ओम प्रकाश करुणेश, हरफाल गाफिल व सैनी सभा के प्रधान गुरनाम सैनी ने संयुक्त रूप से की। देस हरियाणा के सम्पादक डॉ. सुभाष चन्द्र ने कहा कि सावित्री बाई फुले नारी मुक्ति की योद्धा हैं, जिन्होंने सत्य व न्याय के मूल्यों की स्थापना करने के लिए रूढ़िवाद-अंधविश्वास एवं पाखंड का जबरदस्त विरोध किया। दलितों-वंचितों के मानवीय गरिमापूर्ण जीवन के अधिकार के लिए मनुवाद के स्थान पर मानवतावादी चेतना का प्रसार किया। कार्यक्रम में राजीव सान्याल ने क्रांतिकारी कवि अवतार सिंह पाश की कविता गाकर सुनाई। इस मौके पर बलजीत सैनी, सुरेन्द्रपाल सिंह, सुनील थुआ, अरुण कैहरबा, विपुला, गुरनाम कैहरबा, विकास साल्यान, इकबाल, प्रवीण बौद्ध, विजय विद्यार्थी, प्रदीप स्वामी, अविनाश कौर, कपिल बत्रा, प्रियंका, राजेन्द्र देसवाल व नरेश पबनावा सहित अनेक रचनाकार उपस्थित रहे।

अरुण कैहरबा

समाज में विभिन्न क्षेत्रों में काम करने वाले लोग हैं, वो भी जानें कि क्यों उनका मीडिया उनसे अलग होता जा रहा है? क्यों हर शाम देश के सारे बड़े न्यूज़ चैनल्स कुछ-एक परशैपशन्स को भजन मंडली में तब्दील हो जाता है। एक ही तरह की भाषा, एक ही तरह का अभिन्न अलंकार, एक ही व्यक्ति, एक ही सत्ता पर क्यों केंद्रित हो जाता है।

पत्रकारिता की मौजूदा चुनौतियां

□ उर्मिलेश, प्रस्तुति : राजेश कासनिया

(19 नवंबर 2017 को सिरसा में साहित्यिक सामाजिक सरोकारों को समर्पित संस्था संवाद, सिरसा द्वारा शहीद पत्रकार रामचन्द्र छत्रपति की स्मृति में 'छत्रपति सम्मान 2017' के अवसर पर राज्यसभा टीवी के पूर्व संपादक, द वायर के 'मीडिया बोल' कार्यक्रम के चर्चित और प्रतिबद्ध पत्रकार और लेखक उर्मिलेश का वक्तव्य।)

सिरसा भले ही देश का छोटा शहर माना जाए, पर मेरे लिए यह शहर पत्रकारिता के हिसाब से बहुत बड़ा तीर्थ स्थल है। मैं सबसे पहले रामचंद्र छत्रपति की शहादत को नमन करता हूं और इन सभी लोगों को भी सलाम करता हूं, जिन्होंने रामचंद्र छत्रपति की अधूरी लड़ाई को मंजिले-मकसूद तक पहुंचाया।

मैं आज अपनी बात रखूंगा-पत्रकारिता की मौजूदा चुनौतियां विषय पर। मैं चाहता हूं कि समाज में विभिन्न क्षेत्रों में काम करने वाले लोग हैं, वो भी जानें कि क्यों उनका मीडिया उनसे अलग होता जा रहा है? क्यों हर शाम देश के सारे बड़े न्यूज़ चैनल्स कुछ-एक परशैपशन्स को भजन मंडली में तब्दील हो जाता है। एक ही तरह की भाषा, एक ही तरह का अभिन्न अलंकार, एक ही व्यक्ति, एक ही सत्ता पर क्यों केंद्रित हो जाता है।

भारतीय मीडिया विस्तार के हिसाब से बहुत विशाल मीडिया है। 82 हजार से ज्यादा अख़बार हैं अपने देश में, सैंकड़ों न्यूज़ चैनल्स हैं। तो आखिर ऐसा क्यों है? इतना इनवैस्टमैंट है। एक जमाने में अख़बार 10-15 पेज के निकला करते थे, लेकिन अब टाईम्स आफ इंडिया, हिन्दुस्तान टाईम्स जैसे अख़बार दिल्ली में 40-45 पेज के निकलते हैं जो दिवाली, दशहरा, होली आदि के मौके पर बढ़कर सौ-सवा सौ पेज के हो जाते हैं। आजकल एक बड़ा जुमला चला हुआ है कि मीडिया का कार्पोरेटाईजेशन हो गया है, तो हम लोग क्या करें? लेकिन क्या भारत का मीडिया अमेरिका के मीडिया से भी ज्यादा कार्पोरेटाईज है? अमेरिका का मीडिया तो हाईली कार्पोरेटाईज है, लेकिन आज की तारीख में भी अमेरिका का 70-80 प्रतिशत मीडिया डोनाल्ड ट्रंप की तमाम जनविरोधी, तमाम विस्तारवादी, तमाम शोषण-उत्पीड़न व युद्धों को बढ़ावा देने वाली नीतियों के खिलाफ तनकर खड़ा हुआ है। तो आखिर भारत का मीडिया क्यों घुटने टेक देता है? वजह क्या है? तो ये तमाम प्रश्न हैं, जो मुझे लगता है कि समाज के हर तबके को समझना चाहिए। ये ऐसा नहीं है कि पत्रकारों का प्रश्न है। हम सबको सोचना चाहिए।

मैं काफी लंबे समय से पत्रकारिता में हूं। हम देखते हैं कि हमारे यहां डेमोक्रेसी (लोकतंत्र) चाहे जैसी भी हो, हालांकि यह कागज पर ज्यादा है। लेकिन अभी भी हमारे देश में दिल्ली में बैठकर, मुंबई में बैठकर बड़े-बड़े नेताओं, बड़े-बड़े कार्पोरेट के खिलाफ लिखना-बोलना थोड़ा सहज है, अब मुश्किल हो गया है लेकिन एक दौर में बहुत सहज था और अभी भी वो लोग बोल लेते हैं, जोखिम लेते हुए। लेकिन मैंने ये पाया कि अपने जैसे मुल्क में स्थानीय स्तर पर, क्षेत्रीय स्तर पर बड़े माफियाओं, महाबलियों के खिलाफ चाहे वो धर्म के हों, जाति के हों या अपराध के हों, उनके खिलाफ लिखना-बोलना बेहद कठिन काम है। ऐसे आमतौर पर स्थानीय स्तर पर पत्रकारिता यह काम नहीं कर पाती है। ऐसे बहुत कम पत्रकार होते हैं जो प्रतिबद्धता के साथ ये बात कहते हैं।

हमारे यहां कि एक महान परम्परा रही है। इस ट्रेडेशिन को आपके सामने पेश करना चाहूंगा। हमारे देश में आज़ादी की लड़ाई के दौरान जो पहला शहीद हुआ, जिसे भारतीय पत्रकारिता याद नहीं करती है - मौलाना बाकर साहब जो 'दिल्ली-उर्दू' अख़बार के संपादक थे। ये 1857 के आसपास शहीद हुए। लेकिन हम लोग अजीब समाज हैं, डेमोक्रेसी भी हैं, लेकिन हम जाति-धर्म में इस कदर बंटे हुए हैं कि अपने पहले शहीद को ही याद नहीं करते हैं। करतार सिंह सराभा पत्रकारिता के बड़े हस्ताक्षर थे, वो हमारे दूसरे शहीद थे। और तीसरे थे गणेश शंकर विद्यार्थी जिनका नाम हम सब काफी हद तक जानते हैं। कानपुर में 'प्रताप' अख़बार के संपादक थे। और दिलचस्प बात यह है कि गणेश शंकर विद्यार्थी के अखबार में भगत सिंह कॉलम लिखा करते थे। भगत सिंह कैसे लिखना शुरू किया और गणेश शंकर विद्यार्थी से कैसे जुड़े यह अद्भुत कहानी है। भगत सिंह के पीछे ब्रिटिश हुकूमत की पुलिस, इंटैलिजैंस, अफसरशाही व दलालों की एक फौज लगी हुई थी कि कैसे भगत सिंह को गिरफ्तार करवाकर पैसा और अवार्ड ले लिया जाए। उस वक्त गणेश शंकर विद्यार्थी ने उनको अपने घर में, दफ्तर में रखा था, नाम बदलकर। भगत सिंह उन टेबलों पर सोया करते थे अखबार बिछाकर जहां दिन में वो लोग काम किया करते थे और इसी अखबार में बलवंत के नाम से या अन्य कई नामों से

वो अपना लेख लिखा करते थे। इतनी कम उम्र में गणेश शंकर विद्यार्थी के अखबार में जिस तरह के लेखों को भगत सिंह ने लिखा वो चमत्कृत कर देने वाला है। भगत सिंह को तो हम लोग बचपन से ही यह जानते थे कि वह बहुत बड़ा योद्धा था। एक बहुत ही वीर पुरुष था। लेकिन यह नहीं जानते थे कि वो कितना बड़ा दार्शनिक था, कितना बड़ा विचारक था और कितनी कम उम्र में यह हासिल हुआ। तो यह हमारे देश की महान ट्रेडिशन है – गणेश शंकर विद्यार्थी जैसे लोग।

हाल के दिनों में बहुत सारे पत्रकार मारे गए हैं–गौरी लंकेश, रामचंद्र छत्रपति, शांतनु भौमिक, राजदेव रंजन आदि। और भारत दुनिया के उन 16 मुल्कों में शुमार है जो पत्रकारिता के लिए जोखिम वाली जगह। हम अपने–आपको डेमोक्रेसी कहते हैं और खुश होते हैं कि हम विश्व गुरु बनने जा रहे हैं, लेकिन हम मीडिया फ्रीडम या प्रैस की अभिव्यक्ति की आजादी में 180 देशों में हम 136वें स्थान पर हैं।

जब मैं भारत का संविधान खोलता हूं तो उसकी प्रस्तावना में ही हमको बताया जाता है कि हम लोकतंत्र हैं, हम धर्म–निरपेक्ष हैं, हम समाजवादी भी हैं। और ये तीन शब्द उस वक्त मुझको बेहद चिढ़ाते हैं, जब मैं अपने–आपको यूरोप या किसी अन्य महाद्वीप के देशों की डेमोक्रेसी में उपस्थित पाता हूं और लगता है कि हम कैसी डेमोक्रेसी हैं। हम शब्दों में इतने मुग्ध और प्रयोग में इतने सिद्धहस्त हैं कि शब्दों का माला की तरह इस्तेमाल करते हैं, लेकिन अमल के नाम पर कुछ नहीं। हमारे देश के सबसे बड़े प्रदेश (यूपी) का मुख्यमंत्री संविधान के नाम पर शपथ लेकर भी कहता है कि हमारे संविधान का सेक्यूलरिज्म शब्द है वो सबसे बड़ा झूठ है और वो फिर भी मुख्यमंत्री बना रहता है। जैसा हमारा लोकतंत्र है, वैसा ही हमारा समाज और वैसी ही हमारी मीडिया।

हमारे यहां आजादी की लड़ाई में अनेक धाराएं थीं और दुखद ये था कि जो सबसे जनपक्षीय धारा थी, जो वाकई समाज को बदलना चाहती थी, वो सफल नहीं हुई और जो धाराएं सफल हुई, उनमें आजादी के बाद और डिजनरेशन हुआ। ये महज संयोग नहीं है कि आजादी के तत्काल बाद, लोकतंत्र के सूर्योदय में भी जिस तरह के घटनाक्रम हुए उन घटनाक्रमों से एक तरह का खतरा मंडराने लगा था। आज हम जो 2014 के बाद से जो कुछ देख रहे हैं, चाहे वो न्यायपालिका, कार्यपालिका, संसद या फिर मीडिया के स्तर पर ये महज एक संयोग नहीं है। ये अचानक हुई घटना भी नहीं है। एक निरंतरता, एक सिलसिला इसके पीछे है। पहले वो सिलसिला इतना विकृत, इतना जुगुप्सा जगाने वाला, इतना भयावह नहीं था। उसको विकृत होने में, भयावह होने में 65–70 साल लगे हैं, लेकिन गड़बड़ियों की शुरुआत तो पहले ही हो गई थी। आजादी के तत्काल बाद जो पहला संविधान संशोधन हुआ था, वो किस लिए हुआ था? जिन दो मुख्य कारणों से हुआ था उनमें एक बिहार का भूमि सुधार बिल भी था। एक ऐसा प्रदेश जिसमें सबसे पहले लैंड–रिफोर्म बिल इंटरोड्यूस किया गया, वहां लैंड रिफोर्म होने ही नहीं दिया गया और बिहार में आज तक लैंड–रिफोर्म नहीं हुआ और हम कह रहे हैं कि जनतंत्र। यानी आप सामंतवाद बरकरार रखते हुए आप जनतंत्र कायम रखना चाहते हैं।

1953 में दूसरी जो बड़ी घटना घटी, वो जम्मू–कश्मीर में घटी। भारत का पहला राज्य जहां लैंड–रिफोर्म हुआ वो केरल और बंगाल नहीं था। जम्मू–कश्मीर वो प्रदेश था, जहां सबसे पहला लैंड–रिफोर्म हुआ। और वो शेख मोहम्मद अब्दुला की सरकार ने किया और 1953 में ही शेख अब्दुला को गुलबर्ग के गैस्ट हाऊस से गिरफ्तार करके जेल में डाल दिया और सरकार बर्खास्त कर दी गई। ऐसा क्यों हुआ आखिर जबकि उस समय पंडित जवाहर लाल नेहरू जैसा 'डेमोक्रेट' भारत का प्रधानमंत्री था और पंडित नेहरू शेख अब्दुला के करीबी मित्र थे और जिन लोगों की वजह से जम्मू–कश्मीर का विलय भारत में हुआ, वो थे पंडित जवाहर लाल नेहरू, शेख अब्दुला, वी.पी. मेनन और महाराजा हरि सिंह। जिस प्रमुख व्यक्ति के कारण जम्मू कश्मीर का विलय भारत में हुआ उसी व्यक्ति को आप विलय के कुछ ही साल बाद जेल में डाल देते हो। क्योंकि पूरी की पूरी लैंडलार्ड लॉबी जो प्रजा–परिषद के नाम से सामने आ चुकी थी। जिसमें वहां के बड़े लैंड लॉर्ड्स और कंजरवेटिव एलिमेंट (कट्टरपंथी) इन तमाम लोगों ने मिलकर शेख अब्दुला को गिरफ्तार करवा दिया। पंडित नेहरू जैसी बड़ी हस्ती भी किस तरह से दबाव में आई थी, लोकतंत्र के सूर्योदय में ये हैरान करने वाला है।

तीसरी घटना केरल की है। केरल में 1959 में दुनिया की पहली निर्वाचित वामपंथी सरकार बनी थी और उसे अनायास डिसमिस कर दिया गया। क्यों डिसमिस किया गया? जो ताजे रहस्योद्घाटन है, जो आर्काइव्स में पेपर मौजूद है। मैंने केरल के तत्कालीन राज्यपाल का लैटर पढ़ा था जो उन्होंने गृह मंत्री को भेजा था। उस लैटर में लिखा है कि इस सरकार के दो बिल के कारण पूरे केरल में गृह युद्ध जैसी स्थिति हो जाएगी, पूरा केरल तबाह हो जाएगा। वो क्या बताए– पहला लैंड रिफोर्म और दूसरा एज्युकेशन बिल। ई.एस. नम्बूदरीपाद की सरकार ने तय किया कि दो काम जरूर करने हैं – लैंड रिफोर्मस और एज्युकेशन बिल को इंटरोड्यूस करना। एजुकेशन के बिल के जरिए समाज के सभी वर्गों को समान शिक्षा देना और लैंड रिफोर्मस के जरिए बड़े–बड़े लैंड लॉर्डस की जमीनें गरीबों व जोतने वालों में बांटना। जम्मू–कश्मीर में तो कमाल किया था शेख अब्दुला ने। बगैर किसी परवाह किए सारी जमीन बांट दी थी और कंपनशेसन भी नहीं दिया था। ई.एम.एस.नम्बूदरीपाद तो इस बात के लिए भी तैयार थे कि हम कंपनशेसन भी दे देंगे। लेकिन तब भी केरल में ऐसा न हो इसके लिए पूरी की पूरी केंद्र सरकार लग गई। उस समय इंदिरा गांधी कांग्रेस की राष्ट्रीय अध्यक्ष थी और उनके पिता प्रधानमंत्री थे (भारत के महान 'डेमोक्रेट')। और सरकार बर्खास्त कर दी गई।

केरल भारत का पहला राज्य है जिसके सोशल इंडीकेट्र्स नंबर वन है। शिक्षा में सबसे बेहतर स्वास्थ्य में सबसे बेहतर, हयूमन डैवल्पमैंट इंडेक्स में तो केरल यूरोप के कई देशों से मुकाबला करता है। ये अलग बात है कि जिस प्रदेश में मेरा जन्म हुआ, उस प्रदेश का मुख्यमंत्री गया था केरल हाल ही में। उन्होंने कहा कि केरल को उत्तर प्रदेश से सीखना चाहिए कि हमारे यहां स्वास्थ्य सुविधा कितनी अच्छी है। ये अलग बात है कि यूपी के बड़े अस्पतालो में रोज बच्चे मरते हैं, कभी 30 तो कभी 60 और भारत का मीडिया उनके बयान को

बड़ी प्रमुखता से दिखाता है। कमाल का मीडिया है और वहां का मुख्यमंत्री बयान देता है तो अखबार के 28वें पेज पर 8वें कालम में छोटी-सी खबर छपती है और टैलीविजन में तो चलता ही नहीं कि केरल का मुख्यमंत्री कुछ बोलता भी है।

बैंकों का राष्ट्रीयकरण हुआ, कोयले का राष्ट्रीयकरण हुआ। इस दरम्यान भी देखा जाए तो भारतीय मीडिया का बड़ा हिस्सा इन दोनों के खिलाफ खड़ा हो गया। भले ही लोग सत्ता के साथ हों, लेकिन भारतीय मीडिया इसको पसंद नहीं कर रहा है। ये श्रीमती इंदिरा गांधी के समय हुआ था।

इमरजैंसी से पहले बिहार में जे.पी. आंदोलन चल रहा था और गुजरात में नोर्वे-मार्मो आंदोलन। मीडिया काफी सक्रिय था और करप्शन और तानाशाही को अक्सपॉज कर रहा था। लेकिन वो ही मीडिया ईमरजैंसी में आडवानी जी के शब्दों में कहूं तो - 'जब इंडियन प्रैस को कहा गया ईमरजेंसी के झुको तो वो केंचुए की तरह रेंगने लगा और आडवानी जी ने बिल्कुल सही कहा। हम सारे प्रैस वाले केंचुए की तरह रेंगने लगे थे। ये हमने ईमरजेंसी में देखा। कुछ-एक साहसी पत्रकार थे - जो तनकर खड़े थे और ब्लैक कर देते थे अपने सम्पादकीय को। इस देश में मेन स्ट्रीम मीडिया का बड़ा हिस्सा चाहे केंचुआ बना हो, लेकिन एक छोटी-सी धारा रही है जो शहीद होती रही है, जेल जाती रही है, नौकरियों से निकाली जाती रही है, लेकिन वो झंडा उठा ये रहे हैं। आशा का दीप बुझा नहीं है, ये खूबसूरती भारतीय समाज की है।

ईमरजेंसी के बाद पंजाब कवरेज को भी हमने बहुत करीब से देखा है क्योंकि मैं उस वक्त दिल्ली के अखबारों के लिए काम करता था। और मैं पंजाब आकर अमृतसर से लेकर भठिंडा, बरनाला आदि जगहों पर जाता था और खूब लिखता था। मैंने देखा कि हिन्दी पत्रकारिता कैसे हिन्दू पत्रकारिता में बदल है। दिल्ली के अनेक अखबार, हिन्दी के अच्छे-अच्छे सम्पादक शुद्ध हिन्दूवादी हो गए। मैं आतंकवाद को जायज नहीं ठहरा रहा हूं, लेकिन निर्दोष, निरपराध लोगों के मारे जाने पर तो सवाल उठना चाहिए। वो क्यों नहीं उठता है?

जब मंडल आया तो पूरे उत्तर भारत में हंगामा मच गया। समाज आरक्षण के खिलाफ खड़ा हो जाता है, लेकिन कौन समझाएगा कि भारत जैसे समाज में आरक्षण जरूरी है या नहीं ? और कौन ये बताएगा कि अमेरिका जैसे मुल्क में भी आरक्षण है, अपने ढंग का। अमेरिका के मीडिया में भी आरक्षण है। लेकिन भारत के मीडिया में एक भी दलित सम्पादक नहीं है। 1970 के बाद राष्ट्रपति के पद पर दलित बैठ चुके हैं, लेकिन एक भी दलित सम्पादक नहीं बनने दिया गया। ये बात एक भी हिन्दुस्तानी ने नहीं उठायी कि क्यों नहीं दलित संपादक बनता है? पहली दफा इस बात को रोहिन जेफरी ने उठाया, जब हिन्दुस्तान आकर 10 सालों में एक किताब लिखी, 'इंडियाज न्यूज पेपर रिवोल्यूशन'। आज भी मेन स्ट्रीम मीडिया में एक भी दलित संपादक नहीं है।

इसके अलावा मैं एक बात और कहना चाहूंगा। जब मैं इलाहाबाद यूनिवर्सिटी का छात्र था, तब युनिवर्सिटी रोड पर बहुत सारी किताबों की दुकानें थी। उन दुकानों में - मार्क्स, ऐंगल्स, लेनिन, टॉलस्टाय, चेखव, गोर्की, ग्राम्शी, विवेकानंद, परमहंस, गोलवलकर, नेहरू, गांधी सबकी किताबें मिल जाया करती थी। लेकिन आम्बेडकर की एक भी किताब नहीं थी उस वक्त। लेकिन आज आम्बेडकर हमारे देश की महानतम विभूतियों में से एक के रूप में स्थापित हो चुके हैं और जब 'आउटलुक' पत्रिका ने सर्वे कराया तो माना गया कि वो सबसे बड़ी शख्सियत (समाज की और सियासत की) के रूप में लिए जा रहे हैं। लेकिन अम्बेडकर को इस देश के मीडिया ने इग्नोर किया। इसीलिए आम्बेडकर को आजादी की लड़ाई के समय और उसके बाद कोई न कोई पत्रिका निकालनी पड़ी। मेन स्ट्रीम मीडिया उनको जगह नहीं देता था। तो भारतीय मीडिया जब तक कास्ट और रिलीजन, इन दो संरचनाओं को ख़ारिज नहीं करता, तब तक भारत का मीडिया लोकतांत्रिक हो ही नहीं सकता। और भारतीय मीडिया की यही सबसे बड़ी समस्या है।

अयोध्या का कवरेज यदि आप देखें। अयोध्या में जब मंदिर-मस्जिद का विवाद शुरू हुआ, तब मीडिया ने उसे किस तरह कवर किया। उस मस्जिद को भारतीय मीडिया ने मस्जिद कहना बंद कर दिया और विवादित ढांचा कहना शुरू कर दिया। जिस संपादक, जिस अखबार, जिस पत्रकार ने ये शब्द प्रयोग किया होगा। मैं समझता हूं, वो ज़हर से भरा हुआ दिमाग रहा होगा और आपने बताना शुरू किया कि राम यहीं पैदा हुए थे। जब डेमोक्रेसी को मजबूत करने के लिए यूरोप आगे बढ़ा, तो उसने चर्च और स्टेट के बीच सेपरेशन किया। लेकिन हमने आजादी के बाद धर्म और तंत्र में रिश्ता बनाया।

1991-92 में जब इकोनोमिक रिफोर्मस आया, जब सारा मीडिया बिछ गया था और एक जुमला चला कि आर्थिक सुधारों के लिए आम सहमति है। हर अखबार, हर न्यूज चैनल ने कहा। भई! आम सहमति कब बनी थी? 1989 से लेकर आज तक किस पोलिटिकल पार्टी ने अपने मेनीफेस्टो में ये लिखा कि भारत में लिबराइजेशन, स्टेट कंट्रोल्ड खत्म किया जाएगा?

आज जो हालात हैं हमारे देश की उसकी बुनियादी जो वजह है वो यही है कि हमने जाति, धर्म और सम्प्रदाय को अपने जनतंत्र से अलग नहीं किया। जिस तरह से हमने समझा था कि जातियां खत्म होंगी, जातियों का विनाश होगा। आम्बेडकर की बहुत मशहूर किताब है -जाति-उन्मूलन। लेकिन हुआ ये कि हमारे देश में जातियों की जकड़बंदी और तेज होती गई। हमने चाहा कि मठों, डेरों और धर्म के धंधेबाजों की जकड़बंदी का असर कम हो, लेकिन वो बढ़ता गया, क्योंकि अगर शासन, चुने हुए प्रतिनिधि आम लोगों की जुबान नहीं बोलेगा, आम लोगों की बात नहीं करेंगे तो ये छोटे-मोटे मठ, ये छोटे-छोटे डेरे लोगों की भावनाओं का शोषण करते हुए आगे बढ़ते रहेंगे और मीडिया उनके हाथ में खिलौने की तरह हो जाते हैं।

मेरा यह मानना है कि अगर भारत के मीडिया में सिर्फ एक ही वर्ण, एक ही बिरादरी के 90 फीसदी लोग हैं और संपादकों में एक भी व्यक्ति देश की बहुसंख्यक आबादी का नहीं है तो वैसे मीडिया के बारे में आप क्या कल्पना कर सकते हैं। जिस देश के मीडिया में कोई मुकम्मल पारदर्शी पद्धति न हो। एक आदमी ने चाहा और नियुक्तियां हो गई। और इनके अंदर की कहानी तो और भी भयावह है।

संपादक तो छोड़िए, जो सीनियर एंकर है, उनकी तनख्वाह, 5 लाख, 7 लाख, 8

लाख और जो सबसे अधिक गाली-गलौच करता है, जो सबसे ज्यादा चीखता है उसकी तनख्वाह भी लाखों में है और जो सबसे नीचे काम करता है अखबारों में या चैनल में उसकी तनख्वाह 15-20 हजार। ऐसा लगता है कि इस तंत्र ने अपने रखवालों को छोटा-छोटा राज दे रखा है कि तुमको 5 लाख देंगे, तुमको 7 लाख देंगे, तुमको 8 लाख देंगे और तुम हमारे लिए भौंकते रहो।

जो हमारे तंत्र के ताकतवर लोग हैं, उन्होंने मीडिया को अपने लिए मंच के रूप में तब्दील कर लिया है और जब चाहते हैं जैसा चाहते हैं अपना एजेंडा उछालते रहते हैं। भारत का जो तरक्की पंसद खेमा है, उसकी क्या परेशानी है? जिसे प्रगतिशील, जिसे सेक्यूलर, जिसे डेमोक्रेटिक कहते हैं। कभी आपने सोचा है कि आप क्यों सिंकुड़ते गए हैं? क्यों सिमटते गए हैं? आप अच्छे हैं, आप पॉजिटिव हैं और आपके पास सही एजेंडा है, लेकिन क्यों आप फिसल रहे हैं? मुझे लगता है कि इसकी भी शिनाख्त होनी चाहिए। आत्मपरीक्षण, आत्म निरीक्षण होना चाहिए, जो नहीं हुआ। सबसे बड़ी वजह यही है कि आप अच्छे हैं, लेकिन कुछ ही लोगों के बीच जा रहे हैं। भारत में जो बड़ा समाज है, जो उत्पादक समाज है, जो सबाल्टर्न है, उसकी पहुंच से आपका नेतृत्व दूर है। और जो सबसे बुरी सोच के लोग हैं, उन्होंने सबाल्टर्न समाजों में पेनीट्रेशन किया है। धर्म के जरिए, जाति के जरिए, मंदिर-मस्जिद के जरिए।

भारत में इस वक्त करोड़ों बेरोजगार हैं, लेकिन मंदिर लगातार बन रहे हैं। मैं जिस इलाके में रहता हूं वो एनसीआर का इलाका है उत्तर प्रदेश का। वहां 16 हजार मंदिर बने हैं हाल के दिनों में। मैं मंदिरों के खिलाफ नहीं हूं, मंदिर बनें, लेकिन रोजगार कब बनाएंगे, अस्पताल कब बनाएंगे, स्कूल-कालेज कब बनाएंगे? सरकारी स्कूल खत्म हो रहे हैं।

जब मैं पहली बार लंदन गया तो हमें बर्घिंगम के स्कूल में ले जाया गया और बच्चों से इंटरैक्ट करवाया गया। एक बच्चे को खड़ा किया गया (जो पगड़ी बांधे) जो सरदार था। हमने उससे पूछा कि तुम्हारे पिताजी कहां से आये हैं? तो उसने बताया कि पंजाब के जालंधर के इलाके से। उसके पिता एक केबिनेट मंत्री के ड्राइवर थे और उस मंत्री का बेटा भी उसी स्कूल में पढ़ता था, उसकी ही क्लास में। ये उस देश की कहानी मैं बता रहा हूं जहां अब भी राजा-रानी होते हैं। हमारे यहां इतना खूबसूरत संविधान बनने पर भी हमने हर इलाके में राजा-रानी खड़े कर दिए हैं। कोई धर्म का राजा, कोई जाति का राजा तो कोई सम्प्रदाय का राजा है। उनके यहां जनतंत्र जमीन पर है और हमारे यहां कागज पर है और शरीफ लोग अच्छी सोच वाले लोग सब देख रहे हैं। ये सब इस देश की सबसे बड़ी विडम्बना है।

तो मित्रो 'हरि अनंत, हरि कथा अनंता'। अंत में बस यही कहूंगा कि जब तक इस देश में एक वाइबरैंट मीडिया नहीं आयेगा, जब तक सबाल्टर्न सेक्शन जो समाज का है, उत्पीड़ित समाज जो है, वो मीडिया में नहीं आयेगा। तब तक मीडिया का यही एजेंडा रहेगा। तरक्की पसंद लोग अच्छी-अच्छी बातें करके मीडिया में आपको चमत्कृत करते हैं। आपको अच्छा भी लगता है कि मीडिया में ऐसे भी कुछ लोग हैं, लेकिन मीडिया इनक्लुसिव नहीं बनेगा तो जाहिर है वो समाज को वह दिशा नहीं दे पाएगा, जिस दिशा की दरकार है।

सम्पर्क-94681-83394

सबक सिखाने की बात गलत है

□ महात्मा गांधी

किसी संप्रदाय के कुछ लोगों ने अमानवीय कृत्य किये, इसलिए पूरी कौम को ही बदनाम करके क्या मानवता से ही बाहर कर देना चाहिए? दंगा एक प्रकार की बीमारी है, रोग है। सांप्रदायिक दंगों के मूल में भय की मनोदशा छिपी रहती है। नैतिकता विहीन समाचार-पत्र इसका अनुचित उपयोग करते हैं और उसको अधिक उकसाकर सामुदायिक स्तर पर एक पागलपन पैदा कर देते हैं। समाचार-पत्र भविष्यवाणी करते हैं कि दंगा होने वाला है, दिल्ली में लाठियां और छुरियां सभी बिक गई और यह खबर लोगों में असुरक्षा और घबराहट पैदा कर देती है। दूसरा समाचार-पत्र यहां-वहां होने वाले दंगों की खबर छापता है और एक स्थान पर हिंदुओं और दूसरे स्थान पर मुसलमानों का पक्ष लेने का आरोप पुलिस पर लगाता है। इन बातों को पढ़कर साधारण आदमी अस्वस्थ हो जाता है, लेकिन दंगे में भी प्रेम के उदाहरण मिलते हैं। भीषण हत्याकांड के दरम्यान मुसलमानों ने अपनी जान की बाजी लगाकर अपने हिंदू मित्रों को आश्रय दिया और इसी प्रकार हिंदुओं द्वारा अपने मुसलमान मित्रों की रक्षा करने के कई उदाहरण हैं। मनुष्य में रहने वाला दैवीय अंश यदि इस प्रकार यदाकदा प्रकट नहीं होता तो आज तक मानव जाति नष्ट हो गई होती। बदला लेना शांति का या मानवता का मार्ग नहीं है। आपको चांटा मारने वाले व्यक्ति को यदि आप छोड़ देने की उदारता बरतने के लिए तैयार नहीं हैं, तो आप उसको तमाचा लगा सकते हैं। लेकिन मान लो कि असली अपराधी भाग जाए और तमाचा खाने वाला बदला लेने के लिए उसके किसी संबंधी या सहधर्मी को तमाचा मारे तो यह कृत्य, किसी भी मानव को शोभा नहीं देगा। कोई मेरी लड़की को उठा ले जाए तो क्या मैं उसकी या उसके मित्र की लड़की को उठा लाऊं? यह तो धिक्कारने योग्य कृत्य कहा जाएगा। किसी एक स्थान पर हुई घटना के लिए आप दूसरे स्थान पर बदला नहीं ले सकते। आप निर्दोष लोगों का कत्ल करने जैसे अधम स्तर तक नीचे कैसे उतर सकते हैं? कहा जाता है कि सामने वाले को सबक सिखाने के लिए ऐसा किया जाता है लेकिन सबक सिखाने की यह बात ही गलत है। सबक सिखाने में आपका क्या हल होगा, यह कभी सोचा आपने? उस समय आप स्वयं दुष्टता स्वीकार कर लेते हैं और याद रखो कि दुष्ट अपनी दुष्टता के बोझ से ही डूबता है।

कुछ समाचार, एक सवाल

□ राजेंद्र चौधरी

हाल में समाचार पत्रों में दो लेख पढ़े। एक लेख विश्व की दो दिग्गज कंपनियों, गुग्गल साम्राज्य की वेमो और टैक्सी व्यवसाय की उबर, के बीच चल रहे ड्राइवर रहित कारों के आविष्कार पर अदालती केस के बारे में था। विज्ञान के विद्यार्थी और युवा इंजीनियर क्या, आम जनता भी बिना ड्राईवर के अपने आप चलने वाली कारों के ख्वाब से अभीभूत हो उठेगी। इंसान की बुद्धिमत्ता पर दाद देने का मन करता है। पर मेरे मन में एक सवाल भी उठा कि बिना ड्राईवर के चलने वाली कारों की ज़रूरत क्या पड़ गई? क्या ड्राइवरों की कमी पड़ गई है? अगर ड्राइवरों और बेरोजगारों की कमी नहीं है तो फिर बिना ड्राइवर के चलने वाली गाड़ी की ज़रूरत क्या है? या ये खुद गाड़ी चला कर के दफ्तर जाने वाले मध्यम वर्ग की सुविधा के लिए है ताकि वे बिना गाड़ी चलाने का झंझट पाले तरो-ताज़ा दफ्तर पहुँच जाये? पर इस के लिए कार की क्या ज़रूरत है? अगर घर के पास से समय पर बस मिल जाये और बस में सीट मिल जाये, तो भी बिना झंझट पाले तरो-ताज़ा दफ्तर पहुँच सकते हैं? शोधार्थी इस समस्या पर काम क्यों नहीं करते कि बसों से लोग दफ्तर पहुँच जाएँ? सड़कों को बार बार चौड़ा नहीं करना पड़ेगा, प्रदूषण भी ज़्यादा नहीं होगा, तेल डीजल के भंडार भी ज़्यादा साल चल जाएँगे।

या ये बिना ड्राईवर के अपने आप चलने वाली कार ज़्यादा सुरक्षित होगी जिस से सड़क दुर्घटना कम होंगी? पर सड़क दुर्घटना तो यात्राओं को कम कर के भी की जा सकती हैं? अगर लोगों को दूर की यात्रा ही कम करनी पड़े, अपने घर के आस पास ही अच्छी शिक्षा और अच्छा काम मिल जाये, इस पर काम क्यों नहीं होता? वैसे भी हर एक को अच्छी शिक्षा और अच्छा काम मिलना ही चाहिए। कुछ लोग कहेंगे कि इस में खोजने लायक क्या बात है? ये सवाल तो अर्थ नीति का है, इस में वैज्ञानिक क्या करें? फिर वो युवा बुद्धिमान दिमागदार लोग जो नई नई चीज़ बनाने की खोज में लगे रहते, वो इस पर काम पर अपना दिमाग क्यों नहीं लगाते कि जो पहले से बनी पुरानी चीज़ें हैं उन का सदुपयोग क्यों नहीं होता? क्या ये दिमागदार लोगों के लिए छोटा काम है?

वैसे दिल्ली चंडीगढ़ रोड पर जाने का बहुत से लोगों का वास्ता पड़ा होगा। मैं तो इस को 1979 से देखता आ रहा हूँ। कितने रूप बदले हैं इसके, कितनी बार चौड़ी हुई है, कितने फ्लाईओवर बने हैं इस रास्ते पर। मेरा एक दोस्त जो इस रूट पर उसी समय से कार चलाता आ रहा है, बताता है कि बीच बीच में, नई लेन या नया फ्लाईओवर बनने पर साल-दो साल के लिए यात्रा समय में कटौती होती है, पर फिर वही हाल हो जाता है। कहीं और जाम लगने लग जाता है और लगभग उतना ही समय लग जाता है। मैं खुद 1985 में रोहतक में नौकरी करने लगा था और हिसार में मेरे माता-पिता रहते थे। महीने में एक बार जब उन से मिलने जाता था तो 2 घंटे में रोहतक के घर से चल कर बस से हिसार घर पहुँच जाता था। तब सड़क भीड़ी होती थी, बाइपास भी नहीं थे। अब चार लेन की सड़क हो गई है, गावों के बाइपास बन गए हैं पर घर से घर पहुँचने में बस से दो की जगह तीन घंटे लगते हैं। कार में भी दो घंटे तो लगते ही हैं। फिर पिछले तीस साल के विकास ने मुझे क्या दिया? मुझे डर है कि बिना ड्राइवर के चलने वाली कार मेरे इस यात्रा समय को और न बढ़ा दे।

'क्यों देश दुनिया के दिमागदार लोग, प्रतिभाशाली युवा मेरे जैसे बस यात्रियों का समय कम करने में ध्यान नहीं लगाते' का जवाब मिला मुझे उसी दिन उसी अखबार में छपे एक प्रसिद्ध स्तम्भ में। इस में चाय के ठेले को नई पीढ़ी द्वारा दिये गए नए स्वरूप का वर्णन था। आम तौर पर ऐसे लेखों में कीमतों का जिक्र नहीं होता (विज्ञापनों में भी कीमतों का आम तौर पर जिक्र नहीं होता, बस इतना होता है कि चीज़ बड़ी अच्छी है)। पर इस लेख में लिखा था कि चाय का यह नया ठेला 'सिर्फ 899 रुपये में चाय और नाश्ता' देता है। 899 रुपये में सिर्फ चाय और नाश्ता! अब समझ में आता है कि 'क्यों देश दुनिया के दिमागदार लोग, प्रतिभाशाली युवा मेरे जैसे बस यात्रियों का समय कम करने में ध्यान नहीं लगाते' दिमागदार लोग तो '899 रुपये में सिर्फ चाय और नाश्ता' करने वालों की सेवा में लगेंगे क्योंकि पैसा तो वहीं है। खैर वो कराएं चाय नाश्ता ऐसे लोगों को, उन्हें तो पैसा कमाना है पर मुझे बहुत सारे पैसे कमा कर 'सिर्फ 899 रुपये में चाय और नाश्ता' करने वालों की बुद्धिमत्ता पर तरस आया। अरे भाई, चाय नाश्ता तो आज भी भरपेट और स्वादिष्ट 20-50 रुपये में हो जाता है? फिर इतनी कोचिंग क्लास लगा कर, कोटा जा कर, पढ़ाई कर के किया क्या? बिना ड्राइवर के चलने वाली कार बनाई और फिर '899 रुपये में चाय और नाश्ता' किया?

एक तीसरी खबर भी है, पर कुछ पुरानी है। परमार्थ के काम में लगी एक युवा और उसकी 'बिना मुनाफे की संस्था' पाँच सितारा होटलों में हर ग्राहक के प्रयोग के बाद फेंक दिये जाने वाले साबुन को इकट्ठा कर के, आधुनिक वैज्ञानिक तरीके से सफाई कर फिर से पिघला कर पुनः प्रयोग लायक बनाती है। फिर उसे झुग्गी झोंपड़ी में रहने वाले गरीब लोगों में साफ सफाई सुनिश्चित

करने के लिए मुफ्त में बाँट देती है। पाँच सितारा होटल भी इस परमार्थ के काम में सहयोग देते हैं और हर ग्राहक के प्रयोग के बाद बदल दिये जाने वाले साबुन को कचरे में फेंकने के स्थान पर परमार्थ में इस परमार्थ करने वाली संस्था को इकट्ठा कर के सौंप देते हैं। पर एक बार के प्रयोग के बाद साबुन को फेंकना ही क्यों? हमारे घर में तो अब भी मेहमान को नया साबुन नहीं देते, वो हमारे वाले साबुन से ही नहा लेते हैं।

इन सवालों, मसलन मेरे रोहतक से हिसार जाने के यात्रा समय में लगने वाले 2 घंटे के 3 घंटे बनने के कई कारण गिनाए जा सकते हैं। सब से पहले ध्यान में आयेगा, बढ़ती हुई जनसंख्या। परन्तु 'सिर्फ 899 रुपये में चाय और नाश्ता'और परमार्थ की खबर किसी अन्य दिशा की ओर भी इशारा करती है। किसी अन्य कारण की ओर भी इंगित करती है। क्या देश के युवा और दिमागदार लोग इस ओर भी देखेंगे?

सम्पर्क : 9416182061

•

दिव्य भसीन कोचर की कविता

अच्छी लड़कियां

खिड़की से झांकती लड़कियां
देखती है हंसती खिलखिलाती
लड़कियों को
चीखती चिल्लाती लड़कियों को
भीड़ के आगे चलती
आंदोलन करती लड़कियों को
जोर जोर आवाज़ देकर
उन्हें बुलाती लड़कियों को
सब देख वो कर लेती हैं बुंद
सब खिड़कियां
उन्हें सिखाया गया है
बस मुस्कुराना
धीमे-धीमे बोलना
सिर झुकाकर चलनाा
क्योंकि...वे अच्छी लड़कियां हैं

सुशांत सुप्रिय की कविताएं

दीवार

बर्लिन की दीवार
कब की तोड़ी जा चुकी थी
लेकिन मेरा पड़ोसी फिर भी
अपने घर की चारदीवारी
डेढ़ हाथ ऊँची कर रहा था

पता चला कि
वह उस ऊँची दीवार पर
कांच के टुकड़े बिछाएगा
और फिर उस दीवार पर
कँटीली तारें भी लगाएगा

मैं नहीं जानता
उसके दिमाग़ में
दीवार ऊँची करने का ख़याल
क्यों और कैसे आया

हां , एक बार उसने
मेरे लॉन में उगे पेड़ की
वे टहनियां ज़रूर काट डाली थीं
जो उसके लॉन के ऊपर फैल गई थीं

पर उस पेड़ की छाया
इस घटना के बाद भी
बराबर उसके लॉन में पड़ती रही
एक ही आकाश
इस घटना के बाद भी
दोनो घरों के ऊपर बना रहा
धूप इस घटना के बाद भी
दो फांकों में नहीं बँटी
और हवाएँ
इस घटना के बाद भी
बिना रोक-टोक
दोनों घरों के लॉन में
आती-जाती रहीं

फिर सुनने में आया
कि मेरे पड़ोसी ने शेयर-बाज़ार में
बहुत पैसा कमाया है
कि अब वह पहले से ऊँची कुर्सी पर
बैठने लगा है
कि उसकी नाक
अब पहले से कुछ ज़्यादा खड़ी हो गयी है

मैं उसे किसी दिन
बधाई दे आने की बात
सोच ही रहा था
कि उसने अपनी चारदीवारी
डेढ़ हाथ ऊँची करनी शुरू कर दी

उन्हीं दिनों
रेडियो टी. वी. और
समाचार-पत्रों ने बताया
कि बर्लिन की दीवार
तोड़ने की बीसवीं वर्षगांठ
मनाई जा रही है ...

याद नहीं आता
कहां और कब पढ़ा था
कि जब दीवार
आदमी से ऊँची हो जाए
तो समझो
आदमी बेहद बौना हो गया है

कल रात सपने में

गांधारी ने इंकार कर दिया
आंखों पर पट्टी बांधने से

एकलव्य ने नहीं काटा
अपना अँगूठा द्रोण के लिए

सीता ने मना कर दिया
अग्नि-परीक्षा देने से

द्रौपदी ने नहीं लगने दिया
स्वयं को जुए में दांव पर

पुरु ने नहीं दी
ययाति को अपनी युवावस्था

कल रात
इतिहास और 'मिथिहास' की
कई ग़लतियां सुधरीं
मेरे सपने में

सम्पर्क : 5001, गौड़ ग्रीन सिटी , वैभव खंड , इंदिरापुरम, गाजियाबाद -201014 (उ.प्र.)

'कृषि संकट और किसान आन्दोलन' अंक

□ विकास शर्मा

आज जब कि अखबारों के स्थानीय पृष्ठ पे खेती से जुड़े मुद्दों के नाम पे अधिकारियों की मंडी के निरीक्षण की तस्वीरें, प्रादेशिक स्तर पे भारतीय किसान यूनियन के धरने की कोई-कोई खबर और राष्ट्रीय स्तर पे किसानों को ले के राजनीतिक पार्टियों की तू तू मैं मैं से ज्यादा कुछ रह नहीं गया, ऐसे में देस हरियाणा का 'कृषि संकट और किसान आन्दोलन' पे अंक निकालना, इस आवश्यक विमर्श को अपने भरे पूरे रूप में ज्यों का त्यों सामने रख देने जैसा लगा।

हमेशा की तरह सुभाष चंद्र जी ने अपने सादे शब्दों में बड़ी समस्याओं को उकेरा है। हमारे आस पास के उठने वाले आंदोलनों के मूल कारणों पे आपने बात की। यदि इन मूल बातों को ठीक से समाज पहचान ले तो फिर उसके ये आन्दोलन अपने सीमित नहीं, विस्तृत उद्देश्यों की ओर बढ़ सकते हैं और ऐसी व्यवस्था की मांग में परिणत हो सकते हैं जहां एक वर्ग का विकास किसी दूसरे वर्ग को उसके हक़ से वंचित करने में नहीं बल्कि साथ-साथ इस चुनौती से पार पाने में है।

'कंपनियों के लाभ और किसानों के कर्ज़' विषय पे कृष्ण कुमार जी का सम्पादकीय आज की खेती किसानी के हाल पे एक सफल विहंगम दृष्टिपात रहा है। दो पृष्ठों के अपने इस लेख में कितने ही ऐसे बिंदु उठा दिए कि जहां कुछ देर को पढ़ते पढ़ते ठहर जाना पड़ता है। वे लिखते हैं - ' हम अपनी पारंपरिक समझ, जैव विविधता व ज्ञान की स्वदेशी पद्धतियों पे विश्वास खोते चले गए और पंगु हो गए' सच में ऐसे ही हालात हैं हमारे। धोबी के गधे की तरह न तो घर के रहे न ही घाट के हो पाए। आगे लिखा गया है- ' मीडिया के लिए किसानों की आत्महत्या में कोई ग्लैमर नहीं' वाह निर्यातोन्मुख फसलों की बात हो, हरित क्रांति के मौजूदा स्वरुप की चर्चा हो या फिर मीडिया और अर्थ तंत्र में किसान के हाशिये पे धकेल दिए जाने का मुद्दा, सबको पूरी शिद्दत के साथ हम पाठकों तक पहुंचाने का काम किया गया है।

तारा पांचाल की कहानी 'फूली' प्रेमचंद का सा शब्द संसार रच गई। दूध गांवों में अर्थव्यवस्था की धूरी होता है। पर गांवों में आज भी पशुपालन पुराने ठोर पे ही चल रहा है, सरकार की योजनाएँ यहां तक आते आते अपना स्वरूप ही खो देती हैं। बाकी हरियाणा का तो नहीं पता पर हमारे यहां तो किसान अपने ही खर्च से छोटे सरकारी पशु चिकित्सक को बुलाते हैं। बड़े पशु चिकित्सक हमने आज तक नहीं देखे गांवों में कोई इलाज करते या किसानों के बीच बैठके बात करते। हां अपनी निजी प्रैक्टिस में महँगे कुत्तों के इलाज में ये भरपूर रुचि रखते जरूर दिखते हैं।

विद्यासागर नौटियाल की कहानी 'दूध का स्वाद' भी ऐसी ही सच्ची तस्वीर है गांवों के परिदृश्य की।

अमनदीप वशिष्ठ हमेशा अध्ययनशील और चिंतनशील रहते हैं, ज्ञान सिंह जी पे उनका लेख इस कृषि चिन्तक को हमारी स्मृतियों में अंकित कर गया। बहुत संभव था कि इस व्यक्तित्व को हम ऐसे न याद रख पाते।

योगेन्द्र यादव से सुरेन्द्र पाल सिंह की बातचीत पढ़ी। अनेक ऐसे योगेन्द्र यादवों की आज जरूरत है। राजनीति में जब से किसान पृष्ठभूमि से लोगों का आना बंद हुआ है, तब से किसान की हालत खराब होती गई है। आज किसान चिंता और चिंतन का तो विषय हो सकता है पर किसानों के बीच रहके, उनके सुख-दु:ख का सहभागी होते हुए उन्हें संगठित करके आगे ले जाने वाले लोग अब नहीं दिखते।

सुधीर डांगी का लेख 'सरकार से किसान को अपनापन नहीं मिलता' अपने शीर्षक में ही बहुत कुछ कह जाता है।

बढती पैदावार और घटती आमदनी' के अंतर्गत आंकड़ों के साथ डा. बलजीत सिंह ने समझाया कि किस तरह से किसानों के लिए हालात बद से बदतर हुए हैं। कृषि विश्वविद्यालयों, शोध केन्द्रों में बढ़ती रिक्ति संख्या के साथ ये संस्थान कोई नई तकनीक या उपज के विकास की बजाए अपने अस्तित्व के लिए भी जूझते दिख रहे हैं। ये रिक्ति संख्या आज हर विभाग में बढती जा रही है और यहीं से सरकार फिर निजीकरण की तरफ़ बढती है। निजीकरण से सरकार को तो राहत हो जाती है पर इसके बेलगाम दंशों को निरीह नागरिकों को ही भुगतना पड़ता है।

किसान की त्रासदी का एक और आयाम सतीश त्यागी के लेख 'किसान संघर्ष से जन्मी सत्ताओं ने ही किसानों को दुत्कारा' में सामने आया। सरकारों ने कभी कृषि के खतरों को ठीक से समझा ही नहीं। इससे अधिक हताशा की क्या बात हो सकती है कि किसानों के नाम पे होने वाली तथाकथित राजनीति तक अब दम तोड़ चुकी है।

ललित यादव का लेख हरियाणा में अन्नदाता पर आफ़त' से पता चलता है कि किसानों की बहुत सी समस्याएँ तो हमारी ही पैदा की हैं। किसान को खलिहान में कभी देखें, वो एक एक दाने को चुनता है और यहां हजारों टन अनाज सिर्फ भण्डारण के कुप्रबंधन की भेंट चढ़ जाता है। क्यों ऐसे में जिम्मेदारियां तय नहीं की जाती ? अनाज का ख़राब होना कुप्रबंधन ही नहीं भ्रष्टाचार का भी पता देता है।

कमलेश चौधरी का लेख 'हरित क्रांति और हरियाणा का विकास' में अन्य बातों के साथ इस बात को भी रेखांकित किया कि मूल्य तय करते समय किसान की लागत व मेहनत मिलाकर ही मूल्य तय किया जाना चाहिए।

बदलते हालात- पिछड़ती कृषि लेख में डॉ जोगिन्द्र सिंह जी से पता चला कि एक जौहल कमेटी भी हुई है जिसने खेत को खाली रखने के लिए किसान को भारी मुआवज़ा देने की भी सिफ़ारिश की। सुरेन्द्र कुमार का लेख 'हरियाणा में खेती किसानी - विमर्श' को पढ़ के एहसास जगता है कि किसान एक अभिनेता की तरह है इस बाज़ारी

मंच में। उसे कैसे भी खड़े रह के अपना किरदार करना है। आलोचक समालोचक क्या राय रखते हैं, उसके खेल को किस कीमत पे बेचा जाता है वो इस सब से परे अपने आप को किसी तरह खड़ा कर पा रहा है। डा. करुणेश जी ने ग्रामीण बुझारतों से हमारा परिचय कराया तो जाना कि ये हमारी सामाजिक ताने-बाने का कैसा मौलिक चित्रण हुआ करती थी। इसी कड़ी की और बुझारतों की प्रतीक्षा रहेगी। अन्य रचनाकारों ने भी जो लिखा वो भी हमारे चिंतन में कुछ नए आयाम जोड़ते है। ढंग से नहीं लिख पा रहा, उसकी वजह ये प्रतिक्रिया के लेख का अधूरे होना है। इसे पूरा नहीं कर पाया काफी दिन से यूं ही रह गया। अब जितना भी है वो आपको भेजता हूं।

गांव इशरगढ़, कुरुक्षेत्र, मो. 9466341200

हरियाणवी बोली की विविधता

□ अफराज

मैं 'देस हरियाणा' का गत वर्षों से नियमित पाठक हूँ,नए प्रकाशित अंको में उठाए गए रचनात्मक कदम सराहनीय हैं यह पत्र श्री राजेन्द्र सिंह द्वारा चिनवा अचेबे के उपन्यास 'थिंग्स फॉल अपार्ट' के एक अंश को बहुत खूबसूरती से हरियाणवी भाषा मे अनुवाद के बारे में है; अविकसित देशों के देहातों की मुश्किलें और व्यवहार लगभग एक समान ही होते हैं, प्रस्तुत कहानी 'लेणे के देणे' से नाइजीरियन सामान्य जनजीवन की अभिव्यक्ति हरियाणवी देहात से मिलती जुलती प्रतीत होती है। कहानी का बहुत ही खूबसूरत और रचनात्मक तरीके से अनुवाद किया गया है, मुख्यत: कछुए और पक्षियों की बोली के लहजे में फर्क है, कछुए की बोली में 'बांगरु' स्पर्श है वहीं चिड़िया के संवादों में 'कौरवी' । यह अनुवादन कि खूबसूरती है जब हमें अलग प्रजातियों के संवादों से हरियाणवी बोली की विविधताओं को दिखा रहे हैं। अंत में सम्पादक और अनुवादक को 'सात समंदर पार से' स्तम्भ के लिए ढेरों शुभकामनाएं।

जिला जींद, हरियाणा मो. 9802100109

देस हरियाणा अंक-14

□ हरपाल शर्मा

'देस हरियाणा' पत्रिका के सम्पादक डा. सुभाष, संपादकीय के बहाने अपने चिर-परिचित चुटीले अंदाज में हरियाणा के सांस्कृतिक परिवेश को रेखांकित करते कहते हैं- 'पिछले दस-बारह सालों से 'हरियाणा नं.-1' की छवि गढ़ने के लिए हजारों करोड़ रुपए खर्च करके काफी गर्दो-गुबार उड़ाई हुई है। स्वर्ण जयंती के कार्यक्रमों की श्रृंखला को भी इस कड़ी में रखा जा सकता है। हजारों करोड़ के खर्च व इतनी ऊर्जा का हरियाणवी समाज को कोई वास्तविक लाभ भी हुआ है या ये कुरड़ी पे कारपेट ही साबित हुआ है। इसका अनुमान लगाना तो अपने-आप में ही एक मेगा प्रोजैक्ट होगा।'

एक और महत्वपूर्ण बात जो बिना कहे भी इससे पूर्व अंकों में परिलक्षित होती है उसे सम्पादकीय में आधिकारिक रूप से कहा गया है। पत्रिका को निकालने के पीछे निश्चित तौर पर कोई दृष्टि तो नजर होती है, जो पत्रिका की सामग्री चयन से लेकर उसे आकार देने का पाठक वर्ग तक तय करती है। असल में यह दृष्टि ही इस समस्त उपक्रम को परस्पर एकमएक करती है। 'देस हरियाणा' के पास भी एक जनपक्षीय दृष्टि तो है, लेकिन किसी किस्म की वैचारिक संकीर्णता व दुराग्रह नहीं है- हमारे लिए न तो कोई विषय अछूत है और न ही कोई विधा या लेखक, जनपक्षीय रचनाओं का 'देस हरियाणा' में हमेशा स्वागत है।

लैंगिक विषमता के चलते पैदा हुई समस्या के कारण जहां हरियाणा के ग्रामीण समाज के नौजवान बिना शादी किए जीवन बिताने पर मजबूर हैं। वहीं इस समस्या के चलते वे लड़कियां खरीद कर लाने के लिए विवश हैं, को भैत्तर हजार की भोड़िया में डा. नवरत्न पांडे ने इस विषय को इससे उत्पन्न विकारों सहित बड़ी खूबी से उकेरा है। कहानी में हरियाणवी समाज में मौजूद कहानीपन अपनी पूरी ठसक के साथ मौजूद है।

हमारे समय के साहित्यकार उपन्यास लेखन से खुद को दूर रखे हुए हैं। ऐसे में रत्न कुमार सांभरिया ने 'सांप' उपन्यास के माध्यम से सांपों से जुड़ी जनजातियों के जीवन व्यवहारों और उनमें व्याप्त मान-सम्मान के प्रति उनकी सजगता और कठिन हालातों में जीने के बावजूद उनके स्वाभिमान को बयां किया है। प्रस्तुत उपन्यास अंश में सम्पूर्ण उपन्यास के विवरणों के बीज मौजूद हैं। अपनी सभी भावनाओं सहित, कथानक अपने-आप में भाषाई आकर्षण और कथ्य में यथार्थपरकता के चलते पाठक को बांधे रख पाने में समर्थ दिखाई देता है।

छोटी सी लघुकथा 'मैं लड़की हूं न' में कृष्ण चंद्र महादेविया ने परिस्थितिजन्य एक ही वाक्य में लड़की होने का दर्द बयान कर दिया है। ओम नागर की तीन कविताओं में आज के किसान की आधुनिक तकनीक और कीटनाशक व महंगी आधुनिक खाद डालने के नतीजों के तौर पर आर्थिक व मानवीय सेहत में हुए नुकसान को महसूस किया है। किसान जीवन पर लिखी ये तीन कविताएं किसान के दु:खों का दस्तावेज ही हैं।

कमलेश भारतीय की 'तीन दृश्य : एक चेहरा' कहानी का विषय आज के संवेदनहीन होते जाते मीडिया के बारे में है। उसकी अवसरवादिता और रोबेटिक व्यवहार ने जहां मुश्किलों से घिरे आम आदमी को निराश किया है, वहीं राजनीति को भी और अधिक प्रदूषित होते जाने दिया गया है। आखिरी संवाद में-ईमानदारी की तरह मां भी मर गई जनाब। अब तो बेइमानी सामने है, उसे गुलाब भेंट करने जा रहा हूं। सारे अर्थ खुलने लगते हैं।

बीच बहस में 'सांस्कृतिक शून्यता में क्षणित राहत' और 'समानान्तर सत्ता के द्वीप' शीर्षक के तहत चर्चा में आज के आधुनिक डेरों और उनके बाबाओं व धर्मगुरुओं के गोरखधंधे की अच्छी तरह से खबर ली गई है। आज की भ्रष्ट होती राजनीति को इन डेरों में जाकर शीश झुकाना पड़ता है, बदले में वहां से आशीर्वाद के रूप में अपने अनुयायियों का वोट देने का आश्वासन फतवों के रूप में प्राप्त होता है।

डा. सेवा सिंह 'भक्ति और आंदोलन' लेख के माध्यम से नयी और ताजा विचारोत्तेजक स्थापनाएं पेश की हैं, जिनमें उन्होंने हिन्दू साहूकारों के वर्चस्व में, उत्पादनशील श्रेणियों पर नियंत्रण बनाए रखने के उद्देश्य से भक्ति आंदोलन का उद्भव और विकास हुआ है।

युवा कलम के तहत दिनेश हरमन की ग़ज़लें ली गई हैं, जिनमें अभिव्यक्त होने के वलवले पूरे दमखम के साथ मौजूद हैं। यह आज के हर नौजवान की आवाज़ है, जिसे दबाया नहीं जा सकता

कभी दरों से कभी खिड़कियों से बोलेंगे,
सड़क पे रोकेंगे तो हम घरों से बोलेंगे।

कविताओं में हमारे तरक्की पसंद लेखक और कवि बंधुओं यथा श्री विनोद सिल्ला, महेंद्र सिंह, राज कुमार जैन ने अपनी रचनाओं में हमारे आज को चित्रित किया है।

'जज्बे की पाठशाला' एक ऐसा अनुभव है जिसे पढ़ते हुए प्रभावित हुए बिना नहीं रहा जाता। हमें बड़ी शिद्दत से अपनी कमजोरियों और समाज के प्रति कुछ नहीं कर पाने का मलाल होता है और हम प्राण-पण से चाहने लगते हैं कि हम भी किसी के साथ मिलकर ऐसे ही बेसहारा बचपन की किसी भी रूप में मदद करें। नरेश कुमार हमारे सब पाठकों की ओर से बधाई के पात्र हैं। कार्यशाला के बच्चों द्वारा लिखा गया पत्र कार्यशाला में होने वाली गतिविधियों के बारे कोई संदेह नहीं रहने देता।

डायरी कॉलम के तहत आई 'मां' नाम से कामरेड पृथ्वी सिंह गोरखपुरिया की यादें और उनकी समाज के प्रति दबे-कुचले किसान, मजदूरों के लिए प्रतिबद्धता हमारे समाज में व्याप्त अंधविश्वासों के बावजूद सदियों से चला आ रहा हमारा मजबूत भाईचारे का इतिहास हमें एक नये साहस से भर देता है।

खास रचनाकार के तहत 'देस हरियाणा' में जिस रचनाकार का जिक्र किया गया है, वह निहायत एक शर्मिला सा आम आदमी का प्रतिनिधि पात्र ही था। जब तक वह जीवन रूपी कहानी की किताब में रहा, प्राण-पण से हमारे मध्यम और निम्न मध्यम वर्ग को उसकी कमजोरियों और संभावनाओं के साथ उकेरता रहा और साथ ही साथ स्वयं भी अपनी लिखी रचनाओं में दौड़ता, भागता, हांफता, थकान से बोझिल हो जगह-जगह बैठता और फिर-फिर उठकर चलता पड़ता रहा। उसने बिना किसी छोटे-बड़े स्वार्थ की ओर देखे, अपना-अपना सा सफर और लेखन का भी जारी रखा।

डा. सुभाष चंद्र, डा. राजवीर पराशर और डा. रविन्द्र गासो तारा के जीवन और लेखन से अंतर्गत और गहराई के साथ जुड़े रहे और इन्होंने विस्तार के साथ इस पर लिखा भी है।

'बस उड़ती जाऊं' राजेश कुमार कश्यप, एक उभरते रचनाकार। महिलाओं के बारे में एक नारा न होकर उसे एक सम्पूर्ण मानव का दर्जा दिलाने पर कटिबद्ध। 'थर्डजैंडर की स्थिति में बदलाव की जरूरत' साहित्य में कुछ ऐसे मुकाम भी मौजूद हैं, जिनसे हम नजर बचाकर गुजर जाना श्रेयस्कर समझते हैं। वे हैं यौन संबंध और थर्डजैंडर। सपना ने इस हिचकिचाहट पर कलम चलाना जरूरी समझा है। स्वागत है! अगर हम इन पहलुओं को ढांप कर रखेंगे तो इनमें सड़ांध उठना लाज़मी है, जो सभ्य समाजों के लिए कभी भी फायदेमंद नहीं होती।

इतिहास के झरोखे से-औरंगजेब और हिन्दू मंदिर शीर्षक से यह लेख खोजपरक, चुनौतीपूर्ण व समसामयिक है, जिसकी आज सख्त जरूरत है। इसमें जो कुछ भी और जितना भी कहा गया है वह ऐतिहासिक दस्तावेजों, साक्ष्यों पर आधारित है और हमारे अवचेतन में पड़ी मुस्लिम राजों, महाराजों, नवाबों, बादशाहों के बारे तथाकथित गलत धारणाएं दम तोड़ने लगती हैं। आज भी ऐसी शक्तियां हमारे समाज में मौजूद हैं, जो इन्हीं विकृतियों और गलत जानकारियों का फायदा उठाकर हमें विभाजित करने का घिनौना खेल खेल रही हैं।

'कृषि संकट को समझने के लिए' शीर्षक से प्रवीन कुमार ने कृषि और कृषक समाज के व्याप्त सफर को पहले खुद समझा है और फिर सबके लिए प्रेषित किया है। यह एक शोधपरक निष्कर्षों पर आधारित एक दस्तावेज है, जिस पर अगर हमारा शासन-प्रशासन गौर करे तो हम इस संकट से निजात पा सकते हैं।

किश गुप्ता हमें बताती है अमीर खान की फिल्म 'सीक्रेट सुपर स्टार' के बारे में। ये छोटा सा लेख हमें इस फिल्म की सारी कहानी बता पाने में समर्थ है और हमारा समाज धीरे-धीरे ही सही औरत-मर्दों के रिश्तों में बनावटी की तरफ बढ़ रहा है।

'सात समंदर पार से' राजेंद्र सिंह ने नाइजीरियन उपन्यासकार चिनवा अचेबे की कहानी का हरियाणवी में 'लेणे के देणे' शीर्षक से अनुवाद किया है। इस लोककथा में प्रयुक्त पात्रों के नाम भी यदि हरियाणवी में दिए होते तो पहचानना मुश्किल हो जाता कि यह एक नाइजेरियन लोक कथा है। हरियाणवी में ऐसा अनुवाद अब तक देखने में नहीं आया है। हम उम्मीद करेंगे कि राजेंद्र सिंह जी इसी जुनून के साथ आगे भी हमें हरियाणवी में विश्व साहित्य से रूबरू करवाते रहेंगे।

'लोकधारा' के तहत जय सिंह जी अपनी रागनी में दलितों के जीवन स्तर और उनके दु:खों और अपमानजनक स्थितियों का चित्रण करते हैं, जबकि रामेश्वर दास आज के विकास को रेखांकित करते हुए मानव मूल्यों को हमारे जीवन व्यवहारों से लगातार नदारद होते जाने पर चिंता प्रकट करते हैं और विकास को अपर्याप्त बताते हैं।

'जाट कहै सुण जाटणी' उपन्यास अंश में हरियाणवी लहजा, जहां किसी भी गंभीर मुद्दे को हवा में उठा देने की कुव्वत रहती है, मुख्य रूप से उभर कर आया है। उपन्यास का ताना, बाना हरियाणवी लोक से ओतप्रोत लगता है। प्रदीप नील वशिष्ट का यह प्रयास सराहनीय कहा जाएगा।

सत्यवीर नाहड़िया ने बड़े चुटीले अंदाज में ग़ज़ल का नया ही हरियाणवी संस्करण पेश किया है, जिसमें आज के समाज में व्याप्त दिखावा और संकटग्रस्त किसान की हालत पर फोकस किया गया है। शंकर लाल यादव जी ने कुछ खास किस्म की लोककथाओं (हरियाणवी) का संकलन किया है, जिसमें पारम्परिक हरियाणवी समाज ही नहीं, बल्कि हिन्दी बैल्ट में खासकर गांवों में बनिए और ब्राह्मण की उपस्थिति को दर्शाया गया है। बेहतर होता कि जाति की बजाए संकेतकों में भी ये बात कही जा सकती थी, जिससे पहले से विद्यमान जाति की कडुवाहटें कुछ कम हो पाती।

सम्पर्क-94163-21293

हरियाणा सृजन उत्सव-2018

23-24-25 फरवरी, 2018

सभागार,राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय, कुरुक्षेत्र

उदघाटन उदबोधन - सुरजीत पातर, प्रख्यात पंजाबी कवि
समापन उदबोधन - उर्मिलेश, प्रख्यात पत्रकार राज्य सभा

परिसंवाद

विषय : पत्र-पत्रिकाएं : साहित्यिक सरोकार व प्रसार
आलोक श्रीवास्तव (अहा जिंदगी), विभास वर्मा (हंस पत्रिका), डा. अरूण कुमार (संपादक- युवा संवाद), पल्लव (संपादक-बनास जन), अमित मनोज (संपादक-रेत पथ), देश निर्मोही (संपादक-पल-प्रतिपल), अजेय कुमार (उदभावना)

विषय : दलित जब लिखता है
मलखान सिंह, रत्नकुमार सांभरिया, मुकेश मानस, कौशल पंवार

विषय: स्त्री सृजन के संकल्प, सरोकार व उपलब्धियां
शुभा, विपिन चौधरी, डा. नवदीप, मोनिका भारद्वाज

विषय : सृजन की राह मं लघु कथा
रामकुमार आत्रेय, कमलेश भारतीय, अशोक भाटिया, धर्मेंद्र कंवारी, राधेशयाम भारतीय

परिसंवाद

विषय : हरियाणा के दर्शकों की अभिरूचियां
यशपाल शर्मा, अश्विनी चौधरी, रमणीक मोहन

विषय : सृजन की चुनौतियां : किया क्या जाए
योगेंद्र यादव, टी आर कुण्डू,

विषय : हरियाणा की संस्कृति के विविध रंग
प्रदीप कासनी, सिद्दीक मेव, सुधीर शर्मा, हरविंद्र सिंह, सत्यवीर नाहड़िया

संवाद

25 साल की रंग-सृजन के अनुभव -मंजुल भारद्वाज
शब्दकोश रचना अनुभव - प्रो. अभय मोर्य
हिंदी ई-बुक्स: नीलाभ श्रीवास्तव
रचना प्रक्रिया व यात्रा : निंदर घुगियाणवी

राष्ट्रीय कवि सम्मेलन

मदन कश्यप, ज्ञानप्रकाश विवेक, राजेंद्र गौतम, दिनेश दधीची, हरभगवान चावला, जयपाल, मंगतराम शास्त्री, दामिनी यादव, अल्पना सुहासिनी, मनोज छाबड़ा, दिनेश हरमन, सुशीला बहबलपुर, ओमप्रकाश करूणेश

सांस्कृतिक प्रस्तुति : नाटक, लोकगीत

देस हरियाणा सृजनशाला
जन नाट्य मंच, कुरुक्षेत्र एक्शन थियेटर, रोहतक
त्यागी आर्ट ग्रुप, करनाल अभिनव टोली, रोहतक